CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धीरेन्द्रनाथ मजुमदार
तथा
गोपाल शरण

प्रागितिहास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रागितिहास

लेखक
धीरेन्द्रनाथ मजुमदार
तथा
गोपाल शरण

एशिया पब्लिशिंग हाउस
बम्बई — कलकत्ता — नयी दिल्ली — मद्रास
लखनऊ — लण्डन — न्यूयार्क

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

© धीरेन्द्रनाथ मजुमदार
तथा
गोपाल शरण
१९६४

4648.

State Museum Library
Lucknow

श्री व्रजरत्न मूंधड़ा द्वारा बिनानी प्रिण्टर्स प्राइवेट लिमिटेड
३८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता-१ से मुद्रित और पी. एस. जयसिंघे
द्वारा एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई से प्रकाशित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

यह खेद का विषय है कि यह पुस्तक मेरे गुरु और इसके सहलेखक प्रो० धीरेन्द्रनाथ मजुमदार के जीवनकाल में प्रकाशित नहीं हो सकी।

उत्तर प्रदेश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में स्नातकपूर्व पाठन हिन्दी माध्यम द्वारा होता है। लखनऊ इसका अपवाद नहीं है। अनेक विद्यार्थी अंग्रेजी की पुस्तकें समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं। दुर्भाग्यवश नृतत्त्व ऐसे कुछ विषयों में हिन्दी में पठनीय पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। १९५८ ई० में प्रोफ़ेसर मजुमदार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस कठिनाई को दूर करने में लखनऊ विश्वविद्यालय के नृतत्त्व विभाग का योगदान होना चाहिये। अपने सहयोगियों की सहायता से उन्होंने एक योजना तैयार की जिसके अनुसार नृतत्त्व के विभिन्न अंगों पर मौलिक लेखों वाली एक हिन्दी पुस्तक लिखी जाने वाली थी। कुछ समय के बाद यह अनुभव हुआ कि केवल एक पुस्तक से विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकती हैं। इसलिये नृतत्त्व के विभिन्न अंगों पर कई पुस्तकों की नवीन योजना बनी। डॉ० मजुमदार ने अपने साथ 'आदि मानव' पर एक पुस्तक लिखने का मुझे निमंत्रण देकर मेरा बहुत सम्मान किया। उनके दुःखद और अचानक देहावसान के समय (३१ मई, १९६०) पुस्तक की पांडुलिपि प्रेस में भेजे जाने के लिये तैयार थी। मैंने पांडुलिपि को एक बार फिर पढ़ा लेकिन कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया।

हिन्दी में प्रागितिहास जैसे विषय पर मौलिक पुस्तक लिखने का यह प्रथम प्रयास है। कोई पारिभाषिक शब्दावली उपलब्ध नहीं है। हमें अनेक नये शब्दों की रचना करनी पड़ी। हम आशा करते हैं कि नृतत्त्वविद तथा हिन्दी के विद्वान दोनों से हमें पारिभाषिक शब्दावली एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव प्राप्त होंगे।

प्रेस के लिये पांडुलिपि तैयार करने में कई मित्रों ने सहायता दी। सर्वश्री उमाशंकर मिश्र, राजेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव एवं सुभाषचन्द्र रस्तोगी उल्लेखनीय हैं। हमारे छात्र और मित्र श्री बनवीर सिंह विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। प्रो० मजुमदार के छात्र और मेरे मित्र श्री सूरज प्रताप सिंह अच्छे कलाकार होने के साथ नृतत्त्व के विद्यार्थी रहे हैं। उनके बनाये चित्र पुस्तक को और उपयोगी बनायेंगे इसमें, हमें सन्देह नहीं है। हम उन्हें भी धन्यवाद देते हैं। श्री धरणी सेन का मैं बहुत आभारी हूँ।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक द्वारा हम नृतत्त्व और हिन्दी दोनों की सेवा कर सकने में समर्थ होंगे।

गोपाल शरण

कैम्ब्रिज (मेसाच्यूसेट्स)
३१ मई, १९६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १

प्रागितिहास की विषय-वस्तु

प्रागितिहास (प्रीहिस्ट्री) क्या है ?

आधुनिक विज्ञानों की श्रेणी में नृतत्त्व अपेक्षाकृत नवागन्तुक है। किन्तु मानव के वर्तमान एवं पूर्ववर्त्ती आकार-प्रकारों, आचार-विचारों, क्रिया-कलापों तथा सभी प्रकार के अनुभवों के सम्यक् समन्वित अध्ययन के सफल प्रयत्न से इसने विज्ञानों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। नृतत्त्व (ऐन्थ्रोपॉलॉजी) के प्रमुख अंग—जैविक नृतत्त्व, सामाजिक-सांस्कृतिक नृतत्त्व, नृतात्त्विक भाषाविद्या (लिंग्विस्टिक्स्) तथा प्रागितिहास—अपने अध्ययन क्षेत्रों और पद्धतियों में, साधारणतः, एक दूसरे से असम्बद्ध प्रतीत होते हैं। कदाचित् इसी कारण कई नृतत्त्वविद् (ऐन्थ्रोपॉलॉजिस्ट्) भी नृतत्त्व को एक समन्वित विषय न मान कर कई विषयों का बेमेल जमघट मानते हैं। यह सच है कि नृतत्त्व को आधुनिक विज्ञान-श्रेणियों में से किसी एक में रखना सम्भव नहीं है; क्योंकि एक ओर जहाँ यह विषय सामाजिक विज्ञानों की श्रेणी में रखने योग्य प्रतीत होता है वहीं दूसरी ओर भौतिक और जैविक विज्ञानों की परिधियाँ भी इससे अछूती नहीं हैं। मानव-अनुभव एक और अविभाज्य है। मानव के क्रिया-कलापों एवं कृतियों का कृत्रिम श्रेणी-विभाग उपादेय नहीं होगा। मानव—आदि एवं आधुनिक—के क्रिया-कलापों एवं कृतियों तथा अनुभवों का सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन नृतत्त्व का चरम उद्देश्य है। इसीलिये जहाँ जैविक नृतत्त्व मानव की कहानी के जैविक अंश का चित्रण करता है वहाँ उसका सामाजिक-सांस्कृतिक अर्द्धांश चित्रित करना सामाजिक-सांस्कृतिक नृतत्त्व का काम है। प्रागितिहास नृतत्त्व का वह अंग है जो उत्पत्ति के अध्ययन में रुचि रखता है। आदि मानव की कृतियों के अध्ययन द्वारा यह जैविक और सांस्कृतिक नृतत्त्व के अटूट सम्बन्ध एवं सम्बद्ध पार्थक्य को पूर्ण रूप से स्थापित करता है। साथ ही वह यह भी निरूपित करता है कि मानव-जीवन श्रेणियों और विभागों में नहीं रहा करता है। समग्रता और बारंबारता इसके प्रमुख गुण हैं। इस प्रकार प्रागितिहास नृतत्त्व की समन्वितता को पुष्ट करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक काल से पहले की मानव-कथा का अध्ययन करने के फलस्वरूप ही इसका प्रागितिहास (प्राक्-इतिहास) नामकरण किया गया होगा। कदाचित् इस नाम को ध्यान में रख कर ही कुछ उत्साही विद्वान[1] एक ऐसे वृहत्तर इतिहास की कल्पना करने में नहीं चूके हैं जिसका पूर्वांश वे प्रागितिहास को मानते हैं। किन्तु ये विद्वान भी यह स्वीकार करते हैं कि उनके वृहत्तर इतिहास के पूर्वांश (प्रागितिहास) की समस्या एवं अध्ययन-पद्धति उत्तरांश से सर्वथा भिन्न हैं। दोनों की साक्षियों और अध्ययन सामग्रियों की भिन्नताएँ दोनों को एक दूसरे से स्वतंत्र बनाती हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी कालक्रमिक (क्रोनॉलाजिकल) अध्ययन में एक उपयुक्त समय-मापक (टाइम-स्केल) का होना अत्यावश्यक है। काल-विभाजन के अनुसार मानव-कथा का नब्बे प्रतिशत से अधिक भाग प्रागैतिहासिक है। दूसरे रूप में हम प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक अवधियों की सापेक्षिता इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। मानव की उत्पत्ति काल से अब तक के उसके चौबीस घंटे के जीवन में से पौने चौबीस घंटे से भी अधिक प्रागैतिहासिक रहा है और लिखित प्रमाणों की सर्वप्रथम उपलब्धि से लेकर आज तक (ऐतिहासिक काल) की हमारी सम्पूर्ण प्रगति पन्द्रह मिनट के भीतर हुई है। मिनटों की अवधि के अध्ययन के निमित्त सेकेण्ड समुचित इकाई है; किन्तु चौबीस घंटे की लम्बी अवधि के अध्ययन के लिए वह सर्वथा अनुपयुक्त है। दूसरे शब्दों में ऐतिहासिक कालक्रम (क्रोनॉलजी) प्रागितिहास के काम नहीं आ सकता है। भूतत्त्व का भी अपना कालक्रम है। इसके सम्बन्ध में भी उपर्युक्त तर्क लागू होता है। लेकिन उल्टे रूप में। भूतत्त्व का कालक्रम इतना वृहत् है कि उसमें लाखों वर्षों के हेर-फेर से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। प्रागितिहास के लिए यह भी अनुपयुक्त है। पुरातत्त्व का अपना कोई काल-मापक नहीं है। ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक काल के अध्ययन के अनुसार पुरातत्त्व ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक हो सकता है। अधिकांश विद्वान्[2] इसे एक पद्धति मात्र मानते हैं और इसे एक विषय की संज्ञा प्रदान करने के लिए तैयार नहीं हैं।

ऐतिहासिक पद्धति में शिलालेख, सिक्कों आदि का प्राप्य सामग्री के

---

१. एड्रियन कोट्स (१९५१), प्रिल्यूड टु हिस्ट्री, मेथुएन ऐण्ड कं०, लंदन, पृष्ठ १-२६
२. ग्रेहम क्लार्क (१९५४), द स्टडी ऑव् प्रीहिस्ट्री, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, पृष्ठ ७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आयु-निर्धारण में उपयोग अन्य लिखित प्रमाणों से तुलना करके किया जाता है। ऐसी पद्धति की उपयोगिता इसी प्रकार के प्रमाणों की उपलब्धि पर निर्भर होने के कारण सीमित है। ज्यों-ज्यों हम भूतकाल की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों ऐतिहासिक प्रमाण न्यून होते जाते हैं और साथ ही ऐतिहासिक पद्धति भी क्रमशः अधिक अनुपयुक्त होती जाती है। स्तरीकरण (स्ट्रैटिफ़िकेशन) का अध्ययन प्रागैतिहासिक पद्धति की धुरी है। इसी कारण प्रागितिहास प्राकृतिक विज्ञानों में भूतत्त्व पर विशेष रूप से निर्भर करता है। भूकालक्रमिकी (जियोक्रोनॉलॉजी), पुराजलवायुविद्या (पैलियो क्लाइमेटॉलॉजी) की सहायता से एक के ऊपर एक बननेवाले स्तरों का सापेक्षिक आयु-निर्धारण-मापदंड प्रस्तुत करता है। यह साधारण ज्ञान की बात है कि यदि एक स्थान पर सामग्री के क्रमशः एकत्र होने के कारण एक स्तर-श्रृंखला का निर्माण, बिना किसी अन्य व्यवधान के, हुआ हो तो सबसे नीचे वाला स्तर सबसे पुराना होगा और उसके ऊपर वाले स्तर क्रमशः नये होंगे। इसे अध्यारोहण विधि (लॉ ऑव् सुपरपोज़िशन) कहते हैं। प्रागैतिहासिक सामग्री के प्रकार (टाइपॉलॉजी) और निर्माण-वैशिष्ट्य (टेक्नॉलॉजी) के अध्ययन का भी कम महत्व नहीं है। इसे प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व की संज्ञा प्रदान की जाती है। पहले के अनेक विद्वान इसमें ही प्रागितिहास की समाप्ति मान लिया करते थे। प्रस्तर उपकरणों और अन्य प्रागैतिहासिक अवशेषों के आयु-निर्धारण की समुचित पृष्ठभूमि के निर्माण के लिये उनकी दशा और ऊपरी सतह पर परिलक्षित रासायनिक परिवर्तनों और उन अवशेषों के साथ, उसी या अन्य स्तर में, पायी गई संबंधित सामग्रियों का अध्ययन भी आवश्यक है।

ऊपर की पंक्तियों में प्रागैतिहासिक अध्ययन में उपकरण तथा अन्य अवशेषों के प्रकार एवं निर्माण-वैशिष्ट्य और स्तरीकरण का महत्त्व बतलाया गया है। साधारणतः ये आज भी प्रागितिहास की विषय-वस्तु का अधिकांश निर्माण करती हैं, सर्वांश नहीं। प्रागितिहास मानव-संस्कृति की उत्पत्ति और उसके उद्विकास के अध्ययन में रुचि रखता है। यदि यह कहें कि इसका अध्ययन करना प्रागितिहास का चरम उद्देश्य है और यही उसे उसका स्वरूप प्रदान करता है तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस क्षेत्र में स्वर्गीय प्रोफ़ेसर चाइल्ड का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने प्रागितिहास को आर्थिक मोड़ देकर उसे आदि मानव के जीवन की शारीर (एनॉटॉमी)—उपकरण-प्रकार एवं निर्माण-वैशिष्ट्य—के साथ ही साथ दैहिकी (फ़िज़ि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यॉलॉजी)--आर्थिक-सांस्कृतिक जीवन--का भी अध्ययनकर्त्ता बनने में सहायता दी। प्रोफ़ेसर चाइल्ड के मतानुसार प्रागैतिहासिक काल में दो महान् क्रांतियाँ--प्रथम नवपाषाणयुगीन और द्वितीय कांस्य युगीन--हुई थीं जिन्होंने तत्कालीन जीवन-धारा ही परिवर्तित कर दी होगी। उनके प्रागैतिहासिक क्रांतियों के दृष्टिकोण ने प्रागितिहास के अध्ययन में महान् क्रांति उत्पन्न कर दी और उसे नृतत्त्व के अन्य भागों के अपेक्षाकृत और अधिक निकट ला दिया। संक्षेप में, प्रागितिहास नृतत्त्व का वह अंग है जो मानव के सांस्कृतिक उद्विकास में रुचि रखता है। उस सुदूर अतीत से, जब मानव अपनी वानरीय परंपरा से पृथक् एक नवीन प्राणी के रूप में सर्वप्रथम उद्भूत हुआ होगा, लेकर तब तक की मानव-कथा प्रागितिहास की विषय-वस्तु है जब से उसके अध्ययन के प्रमुख आधार लिखित प्रमाण हो जाते हैं[३], अर्थात् जब से ऐतिहासिक काल आरम्भ हो जाता है।

भौतात्त्विक समय-सारणी और जीवन-विकास

यह स्वाभाविक ही है कि आदि-मानव की कथा के अध्ययन की प्रस्तावना पशु-जगत् में मानव-स्थान रूपी **वंशावली** के मूल्यांकन के रूप में लिखी जाय। निम्नलिखित वर्णन का प्रमुख उद्देश्य **जैविक उद्विकास** (बायोलॉजिकल इवोल्यूशन) का विवरण देना नहीं है। इसलिए हम विभिन्न **भौतात्त्विक कल्पों** (जियॉलॉजिकल एराज़्) और **कालों** (पीरिएड्स्) में पाये गये मुख्य-मुख्य जीवन-प्रकारों का वर्णन करेंगे न कि विभिन्न जीवन-प्रकारों के भौतात्त्विक युगों का।

यद्यपि इस संबंध में विद्वान् एकमत नहीं हैं फिर भी यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी का अपना पृथक् अस्तित्व लगभग २०० करोड़ वर्ष पूर्व हुआ होगा। भूतत्त्व में पृथ्वी के इतिहास को कई विभागों और उपविभागों में बाँटा जाता है। यह काम **स्तरीय भूतत्त्व** (स्ट्रैटिग्रैफ़िकल जियॉलॉजी) का है। भूतत्त्व के **चट्टानविद्या** (पेट्रॉलॉजी) और **जीवाश्म विज्ञान** (पैलियॉण्टॉलॉजी) आदि अंगों द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर स्तरीय भूतत्त्व उस प्रदेश का भौगिक भूगोल समझाने की चेष्टा करता है जहाँ चट्टानों का निर्माण हो रहा हो। वह यह भी जानने को उत्सुक रहता है कि स्तर

३. एम० सी० बर्किट (१९५५) द ओल्ड स्टोन एज, तृतीय संस्करण, बोज़ ऐण्ड बोज़ पब्लिशर्स लि०, लंदन, पृष्ठ १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवधान रहित बन रहे हैं अथवा नहीं। संक्षेप में स्तरीय भूतत्त्व हमें भूमि के जीवन-वृत्तान्त में घटनाओं का क्रम बतलाता है।

पृथ्वी के लगभग २०० करोड़ वर्ष के जीवन को कई भौतात्त्विक **कल्पों** (एराज़्) और अनेक **कालों** (पीरिएड्स्) में विभाजित किया जाता है। यह स्मरणीय है कि इन कल्पों और कालों की अवधि बराबर नहीं है। अभी तक कोई भी ऐसी पद्धति ज्ञात नहीं हो सकी है जिससे भौतात्त्विक समय का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सके। **खगोलविद्या-संबंधी** (ऐस्ट्रॉनामिकल), **रेडियो-सक्रियता** (रेडियो-ऐक्टिविटी) आदि कई आधुनिक पद्धतियों द्वारा **भौतात्त्विक कालक्रम** (जियॉलॉजिकल क्रॉनॉलॉजी) का अब पहले की अपेक्षा अधिक ठीक पता चल सकता है। किंतु भौतात्त्विक पद्धति (मेथड्) वह सरलतम पद्धति है जो चट्टानों के आयु-निर्धारण में उपयोग की गई थी। भौतात्त्विक समय का कल्पों (एराज़्) और कालों (पीरिएड्स्) में विभाजन का प्रमुख आधार भी यही रही होगी। इस पद्धति में नदियों और समुद्रों में जमा होने वाली बालू एवं धूलि-कणों की तलछट की वार्षिक मात्रा की माप द्वारा उसके जमा होने की दर और समय मालूम किया जाता है। यह मान लिया जाता है कि पिछले भौतात्त्विक कालों में भी तलछट के जमा होने की दर यही रही होगी।

भौतात्त्विक कल्प पाँच हैं: आदि कल्प (आर्कियोज़ोइक्), प्रादि कल्प (प्रोटेरोज़ोइक्), पुराकल्प या प्राथमिक (पैलियोज़ोइक् या प्राइमरी), मध्यकल्प या द्वितीयक (मेसॉज़ोइक् या सेकण्डरी), नवकल्प (सेनोज़ोइक्)। पिछले तीन भौतात्त्विक कल्पों को भौतात्त्विक कालों में निम्न प्रकार बाँटा जाता है। **पुराकल्प (पैलियोजोइक्)**: त्रिखण्ड-काल (कैम्ब्रिअन); अवरप्रवालादि-काल (ऑर्डोविन्सिअन); प्रवालादि-काल (सिल्यूरिअन); मत्स्य-काल (डिवॉनिअन); अंगार-काल (कॉर्बोनिफ़ेरस्); गिरिकाल (पर्मिअन)। **मध्यकल्प (मेसोजोइक्)**: रक्ताश्मकाल (ट्रॉएसिक्); महासरट-काल (जुरासिक्); खटी-काल (क्रिटेशियस्)। **नवकल्प (सेनोजोइक्)** के दो उपविभाग हैं—तृतीयक (टर्शिअरी) और तुरीय (क्वाटर्नरी)। तृतीयक (टर्शिअरी): आद्यनूतन काल (ईओसीन); आदिनूतन काल (ओलिगोसीन); मध्यनूतन काल (माइओसीन) और अतिनूतन काल (प्लाइओसीन्)। तुरीय (**क्वाटर्नरी**): प्रातिनूतन काल (प्लाइस्टोसीन्) और आधुनिक (होलोसीन)।

आदिकल्प (आर्कियोज़ोइक्) में जीवन की विद्यमानता की असंदिग्ध साक्षियाँ नहीं पाई गई हैं। अधिक से अधिक इसे एककोषीय अथवा कीट-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डिंब (लार्वल)-जीवन काल कहा जा सकता है। ऐसा अनुमान है कि प्रादि कल्प (प्रोटेरोज़ोइक्) में मोलस्क जैसे आदिम समुद्रीय अमेरुदण्डी (प्रिमिटिव मेरीन इन्वर्टिब्रेट्स्) का उद्भव हुआ होगा। पुराकल्प (पैलियो-ज़ोइक्) के आरंभ में पूर्ववर्त्ती कल्प से अधिक विकसित समुद्रीय अमेरुदण्डी जीवों का प्राधान्य था। किन्तु जहाँ इस कल्प के मध्य में प्रथम मेरुदण्डी जीवों (मछलियों) और प्रथम पौधों का आगमन हुआ वहाँ इसके अंत तक मेढक-परिवार (ऐम्फ़ीबियन्स्) के जीव प्रमुख हो चुके थे। मध्यकल्प (मेसोज़ोइक्) अपने विविध प्रकार के विशालकाय सरीसृपों (रेप्टाइल्स्) के लिए प्रसिद्ध है। इनमें दाँत वाले पक्षी और उड़ने वाले सरीसृप भी थे। फूल और आवरण-रहित बीज वाले पौधे भी सर्वप्रथम इसी कल्प में पाये गये थे। इन विशालकाय सरीसृपों ने तत्कालीन वातावरण से ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लिया था कि मध्यकल्प (मेसोज़ोइक्) की समाप्ति के साथ ही उनकी भी समाप्ति हो गई।

नवकल्प (सेनोज़ोइक्) आधुनिक वनस्पति-जीवन और स्तनपायी पशुओं का युग कहा जा सकता है। इसमें स्तनपायी पशु-जीवन का आरम्भ होकर मानव में समाप्ति हुई। आद्यनूतन (ईओसीन) में विकसित स्तनपायी पशु पाये गये, आदिनूतन (ओलिगोसीन) के साथ पुरुषाभ वानर (ऐन्थ्र ॉपॉएड् एप्)-जीवन आरम्भ हुआ और मध्यनूतन (माइओसीन) में तत्कालीन वनस्पति और स्तनपायी पशु-जीवन अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा। पुराने प्रागितिहासज्ञों के मतानुसार मानव-वानर का मानव में परिवर्तन प्रातिनूतन (प्लाइओसीन्) काल में हुआ। यह मत अब मान्य नहीं है। फिर भी आदिनूतन (प्लाइओसीन्) का प्रागैतिहासिक दृष्टिकोण से अपना महत्त्व है क्योंकि इसी काल में एक या कई प्रकार के वानरों (एप्स्) से कई प्रकार के मानव-सम प्रकारों (होमिनिड्स्) का प्रस्फुटन हुआ होगा। वर्त्तमान मान्य मतानुसार 'उपकरण-निर्माता मानव' का सर्व प्रथम उद्भव प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में हुआ। ऑस्बोर्न के कथनानुसार प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) बुद्धि, उद्योग और कला का उषःकाल था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन-विकास

प्रमुख विभाग	भौतात्त्विक युग	आरंभ हुआ (लगभग)	अवधि	मुख्य जीवन प्रकार
चतुर्थक (क्वाटर्नरी)	नूतन कल्प (सेनोज़ोइक)	८ करोड़ वर्ष पूर्व	अब तक चल रहा है	मानव का अभ्युदय
तृतीयक (टर्शिअरी)				स्तन्य पशुयुग
माध्यमिक (सेकेण्डरी)	मध्य कल्प (मेसॉज़ोइक)	२० करोड़ वर्ष पूर्व	१२ करोड़ वर्ष	सरीसृप युग
प्राथमिक (प्राइमरी)	पुराकल्प (पैलियोज़ोइक)	५० करोड़ वर्ष पूर्व	३० करोड़ वर्ष	मत्स्य युग
प्राक्-प्राथमिक (प्री-प्राइमरी)	प्रादिकल्प (प्रोटेरोज़ोइक)	१००करोड़ वर्ष पूर्व	५० करोड़ वर्ष	आदिम समुद्रीय अमेरुदंडी पशुयुग
	आदि कल्प (आर्कियो-ज़ोइक)	१५० करोड़ वर्ष पूर्व	५० करोड़ वर्ष	लार्वा (कीट-डिंब)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

प्रातिनूतन काल और महान् हिम-युग

हिमावर्तन और हिमप्रत्यावर्तन

जलवायु के दृष्टिकोण से प्रातिनूतन (प्लाईस्टोसीन्) अत्यधिक अस्थिर भौतात्त्विक कालों में से एक है। किंतु एक शताब्दी पूर्व तक इस संबंध में लगभग कुछ भी पता नहीं था। कवि और प्रकृतिज्ञ शिंपर (Schimper) पहले व्यक्ति थे, जिन्हें (भौतात्त्विक भाषा में) हाल में हिम-युग की विद्यमानता का भान हुआ। उनकी प्रेरणा और शार्पेण्टियर (Charpentier) की सहायता से अगासिज़ (Agassiz) ने वैज्ञानिक जगत् को यह बताया कि निकट भूतकाल में (भौतात्त्विक शब्दावली में) पृथ्वी पर बहुत ठंडी जलवायु थी। प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में पृथ्वी का अधिकांश भाग हिमाच्छादित रहा था। ऐसी वैज्ञानिक धारणा सर्व प्रथम १८३७ ई० और १८४० ई० के बीच में व्यक्त की गई। इसे **एक-हिमावर्तनवाद** (मॉनोग्लेशियलिज़्म्) कहते हैं। १९५४ ई० में मॉर्लो (Morlot) को शीत जलवायु में जमा हुए दो स्तरों के बीच वाले एक स्तर में समशीतोष्ण जलवायु में उगने वाले पौधों के जीवाश्मित (फ़ॉसिलाइज़्ड) अवशेष मिले। तब से पूरे प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में एक हिम-युग (आइस् एज्) के स्थान पर दो ठंडे अंशों (हिमावर्तनों या ग्लेशियल्स्) और उन्हें पृथक् करने वाले एक गर्म अंश (हिमप्रत्यावर्तन या इण्टरग्लेशियल्) की विद्यमानता मानी जाने लगी। इसे **द्वि-हिमावर्तनवाद** (बाइग्लेशियलिज़्म्) कहते हैं। मॉर्लो स्वयं तीन हिमावर्तन (ग्लेशियल्स्) और उनके बीच होने वाले दो हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्स्) कालों के पक्षपाती थे। ब्रिटिश भूतत्त्वविद् (जियॉलॉजिस्ट्) जेम्स गीकी (James Geikie) ने प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में छः हिमावर्तनों (ग्लेशियल्स्) और उनके बीच पाँच हिमाप्रत्यावर्तनों (इण्टरग्लेशियल्स्) के अपने मत द्वारा **बहुहिमावर्तनवाद** (मल्टीग्लेशियलिज़्म्) के सिद्धान्त को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। किंतु इस तर्क-वितर्क के परिणामस्वरूप वैज्ञानिक जगत् ने एक अविभक्त महान् हिम-युग (ग्रेट् आइस् एज्) के स्थान पर एक से अधिक **हिमावर्तन** कालों (ग्लेशियल् पीरियड्स्) और दो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमावर्तन कालों के बीच में एक **हिमप्रत्यावर्तन** काल (इण्टरग्लेशियल् पीरिएड्) होने की बात को मान लिया।

१९०९ ई० में दो यूरोपीय वैज्ञानिकों पेंक और ब्रक्नर (Penck and Bruckner) को अपने अनुसंधानों में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में आल्पीय (एल्पाइन्) प्रदेश में चार हिमावर्तनों (ग्लेशियल्स्) की और उनके बीच तीन हिमप्रत्यावर्तनों (इण्टरग्लेशियल्स्) के होने की स्तरीय (स्ट्रैटिग्रैफ़िकल्) साक्षियाँ मिलीं। आल्प्स् पर्वत के उत्तर में डेन्यूब नदी की घाटी की ओर बहने वाली चार छोटी-छोटी नदियों के नाम पर उन्होंने इन चार आल्पीय हिमावर्तनों (एल्पाइन् ग्लेशियल्स्) को क्रमशः **गुंज़** (Gunz), **मिण्डेल** (Mindel), **रिस्** (Riss) और **वुर्म्** (Wurm) नाम दिये। इनके बीच वाले तीन हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्स्) क्रमशः गुंज़-मिण्डेल् (Gunz-Mindel) मिण्डेल्-रिस् (Mindel-Riss) और रिस्-वुर्म (Riss-Wurm) कहलाये। प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की सभी स्तरीय प्रणालियों (स्ट्रैटिग्रैफ़िकल् सिस्टम्स्) में पेंक और ब्रक्नर की प्रणाली सर्वोत्कृष्ट मानी गई है—केवल आल्पीय प्रदेश के लिये ही नहीं वरन् विश्व के उन सभी भागों के लिये जो प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में हिमायित थे।

ऊपर यह स्पष्ट किया गया है कि बहुहिमावर्तनवाद का आधार दो ठंडे अंशों को पृथक् करनेवाले एक गर्म अंश का होना है। वहीं यह भी बतलाया जा चुका है कि उस गर्म अंश को हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) और ठंडे अंश को हिमावर्तन (ग्लेशियल्) कहते हैं। यह देखा गया है कि कभी-कभी एक ही हिमावर्तन (ग्लेशियल्) के दो ठंडे भागों के बीच में समशीतोष्ण जलवायु वाला एक भाग होता है। चूंकि वह हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) के बराबर अवधि का नहीं होता है और न ही वह दो हिमावर्तनों को पृथक् करता है इसी कारण ज्वाएनर (Zeuner) इसे **लघुहिमप्रत्यावर्तन** (इण्टरस्टेडिएल्) की संज्ञा प्रदान करते हैं। पेंक और ब्रक्नर को अपने अनुसंधानों के आधार पर वुर्म् (चतुर्थ) के अविभाज्य हिमावर्तन (ग्लेशियल्) न होने का भान हुआ था। उन्होंने बुल (Buhl), श्नीज़ (Gschnitz) एवं डॉन् (Daun) नामक तीन लघुहिमावर्तनों और लॉफ़ेन् (Laufen) और एकेन् (Achen) नामक दो लघुहिमप्रत्यावर्तनों (इण्टरस्टडिएल्स्) में वुर्म् हिमावर्तन (ग्लेशियल्) के बाँटे जाने की कल्पना अवश्य की थी, किन्तु कुछ स्तरीय कठिनाइयों के कारण अपने जीवन काल में वे इसका असंदिग्ध निरूपण नहीं कर सके। उनके देहावसान के पश्चात् किये गये शोधों के अनुसार अंतिम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आल्पीय हिमावर्तन (वुर्म् ग्लेशियल्) में तीन लघुहिमावर्तन (वुर्म १, वुर्म् २, और वुर्म् ३) होने के प्रमाण मिले हैं जिन्हें दो लघुहिमप्रत्यावर्तन (इण्टरस्टेडिएल्स्) अलग करते हैं। कालांतर में एबर्ल (Eberl) ने यह प्रदर्शित किया कि द्वितीय (मिण्डेल्) तथा तृतीय (रिस्) आल्पीय हिमावर्तनों (ग्लेशियल्स्) में भी दो लघुहिमावर्तन और एक मध्यवर्त्ती लघुहिमप्रत्यावर्तन हुए थे।

यह स्मरणीय है कि सभी हिमप्रत्यावर्तनों (इण्टरग्लेशियल्स्) की अवधियाँ बराबर नहीं थीं। ऐसा अनुमान है कि पहले (गुंज़-मिण्डेल्) और तीसरे (रिस्-वुर्म्) दोनों हिमप्रत्यावर्तनों (इण्टरग्लेशियल्स्) की पृथक्-पृथक् अवधियाँ लगभग ६०,००० वर्ष थीं। पेंक के गणनानुसार दूसरा (मिण्डेल्-रिस्) हिमप्रत्यावर्तन २,४०,००० वर्ष के लगभग रहा होगा, जबकि प्रकाश-प्रसरण वक्र (रेडिएशन् कर्व) के आधार पर इसकी अवधि १,९०,००० वर्ष आँकी गई है। किसी भी प्रकार दूसरा हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) पहले और तीसरे हिमप्रत्यावर्तनों से तीन या चार गुना बड़ा था। इसीलिये इसे महाहिमप्रत्यावर्तन भी कहा जाता है। अवधि की ही तरह विभिन्न हिम-प्रत्यावर्तनों की जलवायु भी भिन्न-भिन्न थीं। ऐसा माना जाता है कि मिण्डेल्-रिस् (महा)हिमप्रत्यावर्तन गुंज़-मिण्डेल् या रिस्-वुर्म् हिमप्रत्यावर्तनों से कुछ अधिक गर्म था।

वृष्ट्यावर्तन और वृष्टिप्रत्यावर्तन

चाहे जिस कारण भी हो प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में महान् विश्वव्यापी जलवायु-परिवर्तन हुए थे और उनका प्रभाव सार्वदेशिक था। यह साधारण-ज्ञान की बात है कि यह प्रभाव भिन्न-भिन्न जलवायु-मण्डलों और विभिन्न भौगोलिक कटिबंधों में एक ही समान नहीं हुआ होगा। यदि औसत तापक्रम में कमी के साथ ही आर्द्रता की मात्रा बढ़ जाय तो इसके परिणाम-स्वरूप उन प्रदेशों में वर्फ़ की चादरें बिछ जायँगी जो इसके लिए उपयुक्त हैं, जैसे वर्तमान समशीतोष्ण यूरोप। दूसरे शब्दों में, इन प्रदेशों में हिमायन (ग्लेसिएशन्स्) हो जायँगे। यह स्मरण रखने की बात है कि प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में हिमायित--आल्पीय, उत्तरी अमरीकी और स्कैण्डीनेवियाई--प्रदेश वर्त्तमान समशीतोष्ण या शीत जलवायु-कटिबंधों में स्थित हैं। उपर्युक्त औसत-तापक्रम-निम्नता एवं आर्द्रता-वृद्धि पर भी उष्णकटिबंधी अफ़्रीका या भूमध्यसागर-तटीय यूरोप में हिमायन नहीं होगा। हाँ, थोड़ी अधिक वर्षा अवश्य हो जायगी। हिमनदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ग्लेशियर) के आगे बढ़ने के स्थान पर यहाँ अधिक नदियाँ और झीलें बन जायँगी। अतः इन प्रदेशों में हिमावर्तन नहीं, बल्कि वृष्ट्यावर्तन, होगा। संक्षेप में उष्ण कटिबंध में **वृष्ट्यावर्तन** (प्लूवियल्) के आगमन का अर्थ है साधारण निम्न औसत तापक्रम, वृष्टि की अधिकता अतः अधिक नदियाँ एवं झीलें और इसके फलस्वरूप अधिक वन्य प्रदेश। इसके ठीक विपरीत अवस्था में औसत तापक्रम की वृद्धि और आर्द्रता की न्यूनता के कारण जमी हुई बर्फ़ पिघलने से नदियाँ और झीलें बढ़ जायँगी। इसलिये उन समशीतोष्ण कटिबंधी प्रदेशों में जो पहले हिमायित थे, अब हिम-प्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) काल होगा। उष्ण कटिबंधी तथा उष्णाधीन कटिबंधी (सब्-ट्रापिकल्) प्रदेशों में इस परिवर्तन के साथ शुष्क जलवायु का आगमन होगा। नदियाँ और झीलें सूख जायँगी और उनकी संख्या भी कम हो जायगी और जंगलों का अभाव हो जायगा। इन प्रदेशों में शुष्कता आ जायगी। अधिक पारिभाषिक शब्दावली में इन स्थानों में **वृष्टिप्रत्यावर्तन** (इण्टरप्लूवियल्) होगा।

उपर्युक्त वर्णन से पाठक को हिमावर्तन (ग्लेशियल्) और वृष्ट्यावर्तन (प्लूवियल्) तथा हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) और वृष्टिप्रत्यावर्तन (इण्टरप्लूवियल्) की समकालीनता स्वयंसिद्ध-सी प्रतीत हो सकती है। वास्तव में यह विषय अत्यन्त विवादग्रस्त है। सुप्रसिद्ध भूकालक्रमिकी विशेषज्ञ (जियॉक्रॉनालॉजिस्ट्) प्रोफ़ेसर ज़्वाएनर (F.E. Zeuner) तो इनकी समकालीनता के मत को केवल निराधार ही नहीं बल्कि सर्वथा ग़लत मानते हैं। वे उस मत के विरोधी हैं जो समशीतोष्ण कटिबन्धी मण्डलों में हुए कुछ बड़े हिमावर्तनों (ग्लेशियल्स्) के समान उष्णकटिबन्धी मण्डलों में भी कुछ बड़े वृष्ट्यावर्तनों (प्लूवियल्स्) का पोषक है। उनके अनुसार उष्ण कटिबंधी अफ़्रीका में पिछले ६,००,००० वर्षों में लगभग २८ वृष्ट्यावर्तन होने की साक्षियाँ मिली हैं। शीत एवं समशीतोष्ण कटिबंधी और उष्णकटिबंधी मण्डलों के सूर्य-प्रकाश-प्रसरण-वक्र (सोलर् रेडियेशन् कर्व) की तुलना पर उन्हें हिमावर्तन (ग्लेशियल्) और वृष्ट्यावर्तन (प्लूवियल्) की केवल आकस्मिक अनुरूपता ही मिलती है। अतः यदि सूर्य प्रकाश प्रसरण के आधार पर समशीतोष्ण हिमावर्तनों (टेम्परेट् ग्लेशियल्स्) और उष्ण कटिबंधी वृष्ट्यावर्तनों (ट्रॉपिकल् प्लूवियल्स्) की समकालीनता और संबद्धता स्थापित करना संभव नहीं है तब तो उनकी अनुरूपता का अन्य कोई आधार रह ही नहीं जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुप्रसिद्ध प्रागितिहासज्ञ (प्रीहिस्टोरियन्) लीकी (L.S.B. Leakey) के अनुसार प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में जलवायु में सात परिवर्तन हुए जिनके अनुसार समशीतोष्ण यूरोप और तत्समान क्षेत्रों में हिमावर्तन (ग्लेशियल्) और हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) तथा उष्ण अफ़्रीका में वृष्ट्यावर्तन (प्लूवियल्) और वृष्टिप्रत्यावर्तन (इण्टरप्लूवियल्) हुये। इस प्रकार लीकी बड़े वृष्ट्यावर्तन और वृष्टिप्रत्यावर्तन के मतावलंबी प्रतीत होते हैं जिसके विरुद्ध ज़्वाएनर का मत उपरिलिखित है। यही नहीं, लीकी तो आल्पीय हिमावर्तनों और अफ़्रीकी वृष्ट्यावर्तनों को कोषबद्ध कर उनकी संवद्धता और समकालीनता प्रदर्शित करते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में हिमावर्तनों (ग्लेशियल्स्) और हिमप्रत्यावर्तनों (इण्टरग्लेशियल्स्) के होने की साक्षियाँ और प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जा सके थे। यह तो हम देख ही चुके हैं कि प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के प्रमुख जलवायु-अस्थिरताओं का प्रभाव विश्वव्यापी हुआ था। इन जलवायु-परिवर्तनों ने पृथ्वी की सतह पर अपनी छाप डाल दी थी। आज ये चिन्ह ही हमें उन परिवर्तनों की पहचान बताते हैं। वर्त्तमान् जलवायु वाले क्षेत्रों में कुछ ऐसी सामग्रियाँ जमा मिल जाती हैं जो साधारणतः उससे भिन्न जलवायु में पायी जाती हैं। ये ही अवशेष उस क्षेत्र की पिछली जलवायु के सूचक बन जाते हैं। ठंड से जमी भूमि (फ़्रॉस्ट् स्वाएल्), रासायनिक परिवर्तनों से निर्मित भूमि, समुद्र-सतह की अस्थिरता आदि प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के कई स्तरीय नियम हैं; किन्तु इन सब में मोरेन और नदी-सोपान (रिवर टिरेसेज़्) विशेष उल्लेखनीय हैं अतः हम नीचे की पंक्तियों में उन्हीं का वर्णन करेंगे।

मोरेन

हिमनदी (ग्लेशियर्) अपने नाम को सार्थक करती है। इसका आकार और इसकी स्थिति इसको स्थिर नहीं रहने देते हैं क्योंकि प्रतिवर्ष हिमपात द्वारा एकत्रित बर्फ़ जहाँ इसकी जीवन-सामग्री प्रदान करता है वहाँ पिघलने और वाष्पीकरण से वह तत्त्व क्षय भी होता रहता है। इसीलिये हिमनदी (ग्लेशियर्) तुल्यभारता (इक्वीलिब्रिअम्) में नहीं आ पाती है: या तो वह पास की घाटियों में आगे बढ़ती है या अपने स्थान से पीछे हटती है। बहते पानी की तरह आगे बढ़ता हुआ हिम भी पदार्थों के परिवहन (ट्रान्स्पोर्टेशन्) की सामर्थ्य रखता है; किन्तु दोनों में एक मौलिक भेद है। घनत्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कम होने के कारण बहते हुए जल में बहुत छोटे-छोटे कण ही खड़े रह सकते हैं। भारी पदार्थ या तो नीचे तलहटी में बैठ जाते हैं या किनारे पर जमा हो जाते हैं। इसके विपरीत हिमनदी (ग्लेशियर्) में चट्टानों के बड़े-बड़े टुकड़ों को भी धारण करने और अपने साथ ले जाने की सामर्थ्य होती है। जब हिमनदी आगे बढ़ती है तो उसके दबाव से घाटियाँ चिकनी हो जाती हैं। हिमनदी की उपस्थिति के कारण भीषण शीत में उन घाटियों की निकटवर्ती चट्टानें चटक कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। चट्टान के ये टुकड़े या तो हिमनदी (ग्लेशियर्) के बग़ल में गिरते हैं या उसके ऊपरी सतह पर पड़े रहते हैं। चट्टानों के ये टुकड़े या अन्य अवशेष--चाहे हिमनदी के ऊपरी सतह पर हों या उसके नीचे--उसी गति से आगे बढ़ते हैं जिस गति से हिमनदी। चूँकि चट्टान उपर्युक्त प्रकार से टूटते रहते हैं और अन्य प्रकार के अवशेष भी मिलते रहते हैं अतः हिमनदी के उद्गम-स्थल से उसके गन्तव्य स्थान तक उनकी असंदिग्ध विद्यमानता हिमनदी के आगे बढ़ने के मार्ग का निर्देशक होती है। इन सभी अवशेषों को मोरेन (Moraine) कहते हैं। मोरेन विभिन्न प्रकार के असंबद्ध टुकड़ों का ढेर है। किन्तु सभी प्रकार के पत्थर के घिसे टुकड़ों के संचय को मोरेन की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। केवल पत्थर के घिसे टुकड़ों के वही ढेर जिन्हें हिमनदियाँ (ग्लेशियर्स) अपने ऊपर धारण करती हैं, अपने साथ आगे ले जाती हैं, अपने मार्ग में ही जमा करती जाती हैं या अपने गन्तव्य स्थान तक ले जाकर जमा करती हैं, उन्हें मोरेन कहा जाता है।

आगे बढ़ती हुई हिमनदी (ग्लेशियर्) के ऊपर से लुढ़क कर गिरने वाले टुकड़ों आदि से उसके किनारे बनी हुई मोरेन-शृंखला को **पार्श्व-(लैटरल्) मोरेन** कहते हैं। कभी-कभी जब दो घाटियाँ एक तीसरी घाटी में प्रवेश करती हैं तो उनमें से होकर आने वाली पृथक्-पृथक् हिमनदियों के संगम पर उनके एक ओर के पार्श्व-मोरेन **मध्य** (मीडियल्) **मोरेन** बन जाते हैं। हिमनदी के पृथ्वी पर घर्षण के कारण जो सामग्री बनती है उसे भूमि (ग्राउण्ड्) या आधार (बॉटम्) मोरेन कहते हैं। ये हिमनदी का मार्ग प्रशस्त करते हैं और उसे आगे बढ़ने में सहायता देते हैं। आगे बढ़ते-बढ़ते हिमनदी (ग्लेशियर्) एक स्थान पर, प्रायः घाटियों के नीचे, आकर रुक जाती है। तापक्रम-वृद्धि और जलवायु-सम्बन्धी अन्य शक्तियों के सन्तुलन के कारण यह आगे नहीं बढ़ सकेगी। कदाचित् हिमनदी अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गई है। अब यह पिघलने लगती है। इसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ आये हुए चट्टानों के टुकड़े, अन्य पत्थर-खण्ड, कीचड़ और बालू आदि जमा होने लगते हैं। हिमनदी से पिघले एकत्रित जल में वे बैठने लगते हैं और तैरती हुई हिमनदी के हिलकोरों से वे और दब जाते हैं। घिसे पत्थर के टुकड़ों और पंक के इस प्रकार दबे और मुड़े हुए ढेर को **अंत** (एण्ड्) **मोरेन** या **मोरेन-मेखला** (मोरेन गर्डिल) कहा जाता है। यह अंत मोरेन बर्फ़ के पिघलने से हिमनदी के पीछे हट जाने के बाद भी लगभग स्थायी रूप से उसी स्थान पर पड़ा रहता है। अतः जहाँ विद्यमान रहने पर पार्श्व (लैटरल्), भूमि और मध्य मोरेन हिमनदी द्वारा अवलम्बित मार्ग बतलाते हैं, वहाँ अंत मोरेन उसकी यात्रा के अंत के प्रमाण द्वारा उसके होने की असंदिग्ध साक्षी प्रदान करता है।

नदी-सोपान

साधारण बहती नदी कुछ शक्ति-प्रदर्शन करती है और उसके परिणाम-स्वरूप कटाव के रूप में कुछ काम करती है। किन्तु नदी-सोपान बनने के लिए नदी के इस साधारण बहाव में बाधा पड़ कर नदी की तलहटी का गहरा होना या पंक-बालू आदि का जमा होना आवश्यक है। काफ़ी ढालवें पथ में बहने वाली नदी अपनी तलहटी को गहरा करने तथा किनारों के काटने के दोनों काम एक साथ करती है। नदी का यह काम उसमें जल की मात्रा और प्रवाह की गति पर निर्भर करता है। किसी भी नदी की गति उसके प्रवाह मार्ग के ढलान पर आधारित रहती है और नदी द्वारा काम की मात्रा उसमें परिवर्तन के अनुसार बढ़ या घट सकती है। इसी प्रकार यदि जल की मात्रा अपरिवर्तित रहे तो काम की मात्रा नदी में जल की मात्रा के अनुसार बढ़ या घट जायगी।

हिमायित क्षेत्रों में जब हिमायन होगा तब उसके सीमा-पार (पेरी-ग्लेशियल्) क्षेत्रों में यद्यपि भूमि बर्फ़ से ढँकी नहीं रहती किन्तु, जलवायु अत्यन्त शीतल (महाद्वीपीय) होती है। आर्द्रता के हिम के रूप में बँध जाने के कारण इन सीमा-पार (पेरीग्लेशियल्) क्षेत्रों में नदियों का जल घट जाता है। इसके फलस्वरूप उनकी कटान-शक्ति कम हो जाती है और उस समय तक उनके साथ बहती आने वाली सामग्रियाँ जमा होने लगती हैं। इसके विपरीत जलवायु बदलने पर बर्फ़ पिघलने से नदियों में जल की मात्रा बढ़ जाती है। इस कारण उनकी कटान-शक्ति और साथ सामग्री बहाने की सामर्थ्य भी बढ़ जाती है। इसे कटान-काल कहा जा सकता है। किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि इस सम जलवायु में नदी किनारों और तलहटी दोनों को काटती रही थी इसलिये इस बार बग़ल की कटान पिछली जलवायु में जमा हुए स्तर-शिखर के कुछ नीचे से आरम्भ हुई। इस प्रकार दो जलवायु परिवर्तनों के तुल्य दो नदी-सोपान बने। ठंडी जलवायु में बना हुआ सोपान चूँकि जमा होने की प्रक्रिया से बनता है इसलिए उसे **उच्चयन-निर्मित सोपान** (ऐग्रेडेश्नल् टिरेस्) कहा जाता है। सम जलवायु में बना हुआ नदी-सोपान **कटान-निर्मित सोपान** (इरोश्नल् या डिग्रेडेश्नल् टिरेस्) कहलाता है क्योंकि वह कटान से बनता है।

स्तरीय भूगोल (स्ट्रैटिग्रैफ़िकल् जियॉलॉजी) में विभिन्न स्तरों का आयु-निर्धारण अध्यारोहण विधि (लॉ ऑव् सुपरपोज़िशन्) के आधार पर किया जाता है और नदी-निर्मित सोपानों के लिए भी उसी का उपयोग करने की उत्सुकता स्वाभाविक है। किंतु सूक्ष्म विश्लेषण में जब एक सोपान के स्थान पर पूरी सोपान-प्रणाली को ध्यान में रखा जाय तो यह पता चलेगा कि यद्यपि सामग्री का बार-बार जमा होना महत्त्वपूर्ण है फिर भी सोपान के बनने का मुख्य कारण जमा होना ही नहीं वरन् कटान भी है। इसलिये नदी-सोपान-प्रणाली के आयु-निर्धारण में अध्यारोहण विधि के ठीक उल्टा नियम लागू होता है। दूसरे शब्दों में सबसे ऊपर वाला सोपान सबसे पुराना होता है और उसके नीचे वाले क्रमशः उससे कम पुराने या अधिक परवर्त्ती होते जाते हैं। बर्किट (M.C. Burkitt) ने उस स्थान की भूमि की भीतरी बनावट के परीक्षण को आवश्यक बताया है जहाँ नदी-सोपान बने होते हैं। जब सतह के नीचे की भूमि भी सोपान-प्रकार की हो तभी अध्यारोहण विधि के विपरीत नियम घटित होगा। U–आकार की आधार-भूमि पर बनी हुई सोपान-प्रणाली उस घाटी के क्रमशः भरने से बनती है जहाँ वह प्रणाली निर्मित हुई है। चूंकि सबसे नीचे वाले सोपान का निर्माण सबसे पहले लाई हुई सामग्री द्वारा हुआ होगा इसलिये वह सबसे पुराना होगा और सबसे ऊपर वाला सोपान सबसे नया होगा क्योंकि नदी उसको बनाने वाली सामग्री सबसे बाद में लाई होगी।

ज्वाएनर इन नदी-सोपानों को 'जलवायु-सोपान' कहते हैं क्योंकि जलवायु की अस्थिरताओं के कारण ही इनका निर्माण होता है। नदी-सोपान प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल के सापेक्षिक कालक्रम (रिलेटिव् क्रॉनॉलॉजी) निर्धारण और हिमावर्तन-हिमप्रत्यावर्तनों (ग्लेशियल्–इण्टर्ग्लेशियल्स्) के होने की उत्कृष्ट साक्षी हैं। कई हिमाच्छादित क्षेत्रों में तो हिमनदियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ग्लेशियर्स्) इन सीमापार (पेरीग्लेशियल्) की नदियों के उद्गम तक बढ़ आई थीं। अनेक स्थानों पर उच्चयन-निर्मित (ऐग्रेडश्नल्) सोपानों के साथ मोरेन और वार्व पंक (वार्ड् क्ले) जमा होते पाये गये हैं। इस प्रकार के ये नदी-सोपान प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) स्तरीकरण (स्ट्रैटिफ़िकेशन्) के महत्त्वपूर्ण निर्देशक बन जाते हैं।

प्रातिनूतन स्तनपायी पशु-जीवन

अवधि कम होने के कारण प्रांगिक उद्विकास (ऑर्गैनिक् इवोल्यूशन्), के दृष्टिकोण से प्रातिनूतन का अधिक महत्त्व नहीं है। हाँ, मानव के सांस्कृतिक एवं जैविक उद्विकास अवश्य इसके अपवाद हैं। किंतु इस भौतात्विक काल में जलवायु में इतने शीघ्र एवं महान् परिवर्तन हुए थे कि तत्कालीन पशुओं का जलवायु-संबंधी अनुकूलीकरण का अध्ययन अपना विशेष स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल का उसके पूर्ववर्त्ती भौतात्त्विक काल से पृथक्करण और उसकी परिभाषा के मुख्य आधार भी तत्कालीन पशु ही हैं। अतिनूतन (प्लाइओसीन्) काल के यूरोपीय स्तनपायी पशुओं में से अधिकांश दक्षिण एशिया से और कुछ उत्तरी अमरीका तक से आये हुए थे। कई प्रकार के गैंडे (Rhinoceroses), अनेक तत्कालीन एशियाई हाथियाँ (Mastodons), श्यामनेत्र वाले (Gazells) और साधारण मृग (Antelopes) तथा आदिम घोड़े आदि विशिष्ट एशियाई तत्त्व थे। बिल्ली परिवार (Felines) के मांस-भक्षियों में लकड़बग्घा (Hyaenas), जंगली भालू (Dog Bears या Hyaenarctos) और कृपाण-दंती चीते Sabre-tooth tigers) विशेष उल्लेखनीय हैं। जंगलों में धुरीय (Axis deer) और बहुशृंगी (Polycladine deer) हरिण, जंगली सूअर (Sus arvernenas) तथा लोमड़ियाँ और नदियों में दरियाई घोड़े (Hippopotami) थे। ऑस्बर्न (Osborn) के मतानुसार उन प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) अफ़्रीकी-एशियाई स्तनपायी पशु-समूह के पशुओं के अनेक पूर्वज अतिनूतन (प्लाइओसीन्) काल में ही यूरोपवासी बन गये थे। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि साधारण हरिण, श्यामनेत्री हरिण तथा हिप्पेरियन घोड़े जैसे अफ़्रीकी मरुस्थलीय पशु अतिनूतन (प्लाइओसीन्) काल की समाप्ति के पूर्व ही यूरोप से अदृश्य हो चुके थे।

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) कालीन पशुओं को जलवायु-परिवर्तन के अनुरूप 'गर्म' और 'ठंडे' वर्गों में विभाजित करने का प्रयत्न काफ़ी पुराना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा विभाजन करनेवाले यह भूल गये कि पशुवृन्द किसी एक विशेष वातावरण के शायद ही कभी इतने अभ्यस्त बनते हैं कि अपने पड़ोसी क्षेत्रों के निवासी मित्रों से उनका कोई संपर्क ही न रह जाय। वास्तविकता तो यह है कि स्टेपी और वन्य प्रदेशों के पशु एक दूसरे से प्रायः मिला करते हैं। यह देखा गया है कि हिमप्रत्यावर्तन कालीन वन्य पशु खुले मैदानों के पशुओं के संपर्क में आते हैं और वन्य पशु टुण्ड्रा पशुओं के मिलने के कारण उन पर हावी हो जाते हैं और धीरे-धीरे वन्य प्रकार समाप्त हो जाता है। 'गर्म' और 'ठंडा' वर्गों के स्थान पर प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के प्रमुख स्तनपायी पशुओं के ऑस्बर्न तथा ज्वाएनर ने पृथक्-पृथक् निम्नलिखित श्रेणी-विभाग किये हैं:

ऑस्बर्न (**Osborn**)	ज्वाएनर (**ZEUNER**)
टुण्ड्रा अथवा वनस्पतिहीन भूमि (Tundra or Barren Ground) कस्तूरी-वृषभ (Musk ox); ऊनावृत्त महाकुंजर (Woolly mammoth); ऊनावृत्त गैंडा (Woolly rhinoceros); ध्रुवीय लोमड़ी (Arctic fox); ध्रुवीय खरगोश (Arctic hare); नेवला (Ermine)	**(१) टुण्ड्रा (Tundra)** लोमड़ी (Volpes lagopus); खरगोश (Lepus timidus L.); ऊनावृत्त गैंडा (Woolly rhinoceros या Tichorhinus antiquitatis); टुंड्रावासी बारहसिंघा (Reindeer या Rangifer tarandus); कस्तूरी-वृषभ (Musk-ox या Ovibos moschatus); ऊनावृत्त महाकुंजर (Woolly mammoth या Elephas primigenius) **(२) उपध्रुवीय वन (Subarctic Forest)** भूरा भालू (Ursus arctos); लाल हिरण (Red deer या Stag या Cervus elaphus); अमरीकी हिरण (Moose या Alces alces); जंगली बारहसिंघा (Rangifer tarandus); जंगली गाय-बैल (Wild cattle या Bos primigenius)
यूरेशियाई वन्य तथा चरागाह पशुवर्ग (Eurasiatic forest and Meadow Fauna) लाल हिरण (Stag); जंगली साँड़ (Bison); जंगली गाय-बैल (Wild cattle); हरिणी (Roe-deer); जंगली सूअर; भेड़िया; भूरा भालू; महामृग (Giant	**(३) समशीतोष्ण वन (Temperate Forest)** भूरा भालू (Ursus arctos); दरियाई घोड़ा (Hippopotamus); चौड़ी नासिका वाला गैंडा (Broad-nosed या Merck's

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऑसबर्न (**Osborn**)	ज्वाएनर (**ZEUNER**)
deer या Megaceros); वृहत् ऊदबिलाव (Giant beaver); गुफ़ावासी भालू (Cave-bear); घोड़ा	rhinoceros या Dicerorhinus merckii); लाल हिरण (Cervus elaphus); जंगली गाय-बैल (Bos primigenius); जंगली साँड़ (Bison bonasus); सीधी दाँत वाला या विशाल हाथी (Elephas antiquus)
अफ्रेशियाई पशुवर्ग (African-Asian Fauna) हाथी; गैंडा (Rhinoceros); दरियाई घोड़ा (Hippopotamus); शेर; लकड़बग्घा तेंदुआ (Hyaena); सियार (Jackal)	**(४) उष्ण महाद्वीपीय वन-स्टेपी (Warm Continental Forest Steppe)** (३) तथा (५) का सम्मिश्रण **(५) उष्ण महाद्वीपीय स्टेपी (Warm Continental Steppe)** पुच्छहीन ख़रगोश (Tailless hare या Lagomys); स्टेपी घोड़ा Equus przewalskii); अन्य घोड़े (Equus hemionus) सैगा बारहसिंघा (Saiga antelope या tartarica)
स्टेपी पशुवर्ग (Steppe Fauna) सैगा बारहसिंघा; जंगली गधा; स्टेपी (जंगली) घोड़ा (Equus przewalskii); छोट पुच्छहीन ख़रगोश (Dwarf pikas या Tailless hares); कुतरने वाल पशु (Rodents, particularly jerboa)	**(६) लोएस् स्टेपी (Loess-Steppe)** (५) के पशुवर्गों के अतिरिक्त ध्रवीय लोमड़ी (Vulpes lagopus); ख़रगोश Lepus timidus L.); ऊनावृत्त गैंडा (Woolly rhinoceros या Tichorhinus antiquitatis); बारहसिंघा (Rangifer tarandus); प्रथम जंगली साँड़ (Bison priscus); कस्तूरी-वृषभ (Ovibos moschatus); ऊनावृत्त महा-कुंजर (Elephas primigenius)
आल्पीय पशुवर्ग (Alpine Fauna) वन्य मृग (Chamois); जंगली बकरा (Ibex); टर्मिगन पक्षी (Ptarmigan); अर्गाली भेंड़ (Argali sheep)	निम्नलिखित किसी क्षेत्र विशेष को प्राधान्य नहीं देते। गुफ़ावासी भालू (Ursus spelaeus); गुफ़ावासी शेर (Felis leo spelaea); तेंदुआ (Hyaena spp.); महामृग (Giant deer या Megaceros)

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) पशुवर्ग का विवरण देने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उस काल का आरम्भ कब हुआ था। दूसरे शब्दों में अतिनूतन (प्लाइओसीन्) और प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की विभाजक सीमा-रेखा खींचना आवश्यक है। प्रोफ़ेसर ज्वायनर भी यह स्वीकार करते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं कि भौतात्त्विक निर्माण प्रक्रियाओं (जियॉलॉजिकल् बिल्डिंग् प्रॉसेसेज़्) के आधार पर दोनों को पृथक् करना संभव नहीं है ; फिर भी वे दोनों के 'स्वाभाविक विभाजन' के पक्षपाती हैं। इसके अतिरिक्त वे सीमारेखा को उन सार्वदेशिक साक्षियों के सहारे खींचना चाहते हैं जो मान्य स्तरण-प्रणाली (सिस्टम् ऑव् स्ट्रैटिग्राफ़ी) में उथल-पुथल न मचा दें। ज्वाएनर समुद्रीय चूर्णप्रावाराः (मेरीन मोलस्क) पर आधारित पृथक्करण को 'रूढ़िगत' और स्थलीय (टेरस्ट्रियल्) पशु हाथी (Elephas), घोड़ा (Equus) और गाय-बैल (Bos) के आधार को स्थानीय मानते हैं। अमरीकी भूतत्त्वविद् फ़्लिण्ट (Flint) जलवायु को ही अतिनूतन (प्लाइओसीन्) से प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) को अलग करने का प्रमुख आधार मानते हैं। ज्वाएनर के मतानुसार जलवायु को आधार मान कर हिमायन (ग्लेसियेशन्) के आरंभ के साथ ही प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) का आरंभ माना जा सकता है क्योंकि इसे हिम-युग कहा भी जाता है। किंतु इसमें एक कठिनाई यह है कि कई प्राक्-गुंज़ लघुहिमावर्तनों का पता चला है। १९३० ई० में एबर्ल (Eberl) ने इन सब ठंडे अंशों को प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में सम्मिलित कर इस काल का आरंभ ८,००,००० वर्ष पूर्व माना था। सूर्य प्रकाश-प्रसरण वक्र (सोलर् रेडियेशन् कर्व) के ही आधार पर ज्वाएनर ने १९३५ ई० और १९३८ ई० में तत्कालीन मान्यता के अनुसार उच्च अतिनूतन (प्लाइओसीन्) के विलाफ़्रेञ्चिअन (Villafranchian) और कैलेब्रिअन् (Calabrian) पशुवर्गों तथा अन्य संक्रामक पशुओं को प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में सम्मिलित किया और उसका आरंभ १०,००,००० वर्ष पूर्व निर्धारित किया था। १९४५ ई० के बाद से उन्होंने अपना उपर्युक्त मत त्याग दिया है और अब वे आल्पीय गुंज़ हिमावर्तन तथा उसके समवर्त्ती हिमावर्तनों के आरंभ के साथ प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) का आरंभ संबंधित करते हैं।

१९११ ई० में हॉग (Haug) ने जीवाश्मित पशु-साक्षियों के आधार पर अति-प्रातिनूतन (प्लाइओ-प्लाइस्टोसीन्) को विभाजित करना अधिक उचित समझा। उनका मत था कि किसी भी स्तर में हाथी (Elephas), घोड़ा (Equus) तथा गाय-बैल (Bos) परिवारों के आदिम से आदिम सदस्यों का अकेले या एक साथ विद्यमान होना उस स्तर विशेष के प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में निर्मित होने का प्रतीक है। १९३४ ई० में लीकी ने, अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक एडम्स् ऐन्सेस्टर्स् (Adam's Ancestors) के प्रथम संस्करण में, प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की हॉग की परिभाषा मान लेने का अनुरोध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया था। १९४८ ई० में लंदन में हुए अंतर्राष्ट्रीय भौतात्त्विक काँग्रेस में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की परिभाषा पर विचार किया गया था। यह आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अति-प्रातिनूतन (प्लाइओ-प्लाइस्टोसीन्) सीमारेखा को समुद्रीय पशुवर्गों के परिवर्तनों पर आधारित करना चाहिये क्योंकि जिन स्तरों में जीवाश्म (फ़ॉसिल्) पाये जाते हैं उनके मूल्यांकन की यह शास्त्रीय पद्धति है। इटली इसके लिये सर्वोत्क्रष्ट क्षेत्र माना गया। आयोग के मतानुसार प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के निम्नतम सोपान के प्रथम चरण का निर्माण इटली में कैलेब्रिअन (Calabrian) (समुद्रीय) रचना तथा तदनुरूप स्थलीय (महाद्वीपीय) विलाफ्रैञ्चिअन (Villafranchian) द्वारा होता है। प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की सभी वर्त्तमान परिभाषाओं में यह परिभाषा सर्वोत्क्रष्ट है। भारत के लिए यह सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि १९३९ ई० में डी टेरा (De Terra) और टिल्हर्ड डी चार्डिन (Teilhard de Chardin) ने हाथी (Elephas), घोड़ा (Equus) तथा गाय-बैल (Bos) के प्रथम आगमन के साथ ही प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) का आरंभ संबद्ध किया था।

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल का प्रस्तर-उपकरण-निर्माता मानव अधिकतर शिकार पर निर्भर करने वाला मांसभक्षी था। उसकी कला-कृतियों एवं अन्य क्रिया-कलापों को ठीक से समझने के लिये उसके सहवासी और समवर्त्ती स्तनपायी पशुओं के संबंध में जानना आवश्यक है। क्योंकि जो पशु पहले उसके भोजन, बर्तन और वस्त्र के लिय काम आते थे वही कालांतर में तत्कालीन मानव के ललित-कला-वृत्तियों एवं दर्शन की अभि-व्यक्ति के माध्यम बन गये। उस समय यूरोप में आस्ट्रिया तथा दक्षिण अमरीका को छोड़ कर विश्व के लगभग अन्य सभी भागों और सभी जल-वायु-क्षेत्रों के पशु विद्यमान थे। कदाचित् आद्यनूतन (ईओसीन्) काल से ही इन विभिन्न क्षेत्रों के पशु उन क्षेत्रों में उद्विकसित हो रहे थे और अतिनूतन (प्लाइओसीन्) काल के आगमन तक अपने विभिन्न निवास-स्थानों से पूर्णतया अनुकूलित हो चुके थे। प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में पशुओं का पारिवारिक उद्विकास हुआ। किंतु उसकी अवधि कम होने के कारण तत्कालीन पशुवर्गों के अध्ययन में दो अन्य तथ्यों का, पशुओं के पारिवारिक उद्विकास की अपेक्षा, महत्त्व अधिक है। प्रथम, पूरब से नवा-गन्तुक पशुओं का हज़ारों-लाखों वर्षों में मन्थर गति से आगमन तथा द्वितीय, वातावरणों के परिवर्तन के साथ-साथ तत्क्षेत्रीय संपूर्ण पशुवर्ग का अपेक्षाकृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक शीघ्र आगमन। अगले चार्ट में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के विभिन्न हिमावर्तन--हिमप्रत्यावर्तन (ग्लेशिअल्-इण्टरग्लेशिअल्) उपकालों के विशिष्ट पशुवर्गों को, ऑस्बर्न और ज्वाएनर के आधार पर, प्रदर्शित किया जायगा।

५६५८

प्रातिनूतन पशुवर्ग

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के उपविभाग	हिमावर्तन (ग्लेशिअल्) तथा हिमप्रत्यावर्तन (इण्टर ग्लेशिअल्)	विशिष्ट पशुवर्ग	निरूपण
उच्च	अंतिम (अल्टिमेट) हिमावर्तन	जंगली गाय-बैल (Bos primigenius); प्रथम साँड (Bison priscus); जंगली बकरा (Ibex priscus); विभिन्न ख़रगोश (Varying hare या Lepus timidus); ध्रुवीय लोमड़ी (Vulpes lagopus); भेड़िया (Canis suessi); भूरा भालू (Ursus arctos); गुफ़ा-सिंह (Felis leo spelaea); गुफ़ा-लकड़बग्घा (Hyaena crocuta spelaea); गुफ़ा-तेंदुआ (Felis pardus spelaea); गुफ़ा-भालू (Ursus spelaea); लाल हरिण (Cervus elaphus); वृहत् हरिण (Megaceros)); स्टेपी घोड़ा (Equus caballus perzewalskii); कस्तूरी वृषभ (Ovibos moschatus); ऊनावृत्त गैंडा (Tichorhinus antiquitatis); ऊनावृत्त महाकुञ्जर (Elephas primigenius); बारहसिंघा (Rangifer tarandus).	उच्च प्रातिनूतन (अपर् प्लाइस्टोसीन्) की मुख्य पहचान ठंडे पशु वर्गों की विद्यमानता है। पूर्ववर्त्ती हिमावर्तनों (ग्लेशियल्स्) में वे पशु—जैसे ध्रुवीय लोमड़ी, विभिन्न ख़रगोश, ऊनावृत्त गैंडा, बारहसिंघा, कस्तूरी वृषभ, महाकुंजर आदि—जो कम संख्या में थे अब उनका आधिक्य हो गया।
	अंतिम (अल्टिमेट) हिमप्रत्यावर्तन	जंगली गाय-बैल (Bos primigenius); प्रथम साँड (Bison priscus); ऊदबिलाव (Castor fiber); भूरा भालू (Ursus arctos); शेर (Felis leo antiqua); चितकबरा लकड़बग्घा (Spotted Hyaena या H. crocuta); भेड़िया (Canis suessi); हरिणी (Roe-deer या Cervus capre olus); वृहत् हरिण (Megaceros); लाल हरिण (Cervus elaphus); दरियाई घोड़ा (Hippo-	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

		potamus); सीधी दाँत वाला हाथी (Elephas antiquus); चौड़ी नासिका वाला गैंडा (Dicerorhinus merckii); दक्षिणी महाकुंजर (Elephas meridionalis trogontherii).	
मध्य	उपांतिम (पेनल्टिमेट) हिमावर्तन	जंगली गाय-बैल (Aurochs); प्रथम साँड (Bison priscus); लाल हरिण (Cervus elaphus); वृहत् हरिण (Megaceros); आधुनिक घोड़ा (Equus caballus); बारहसिंघा (Rangifer tarandus); कस्तूरी वृषभ (Ovibos moschatus); ऊनावृत्त गैंडा (Tichorhinus antiquitatis); ऊनावृत्त महाकुंजर (Elephas primigenius) क्रमशः दक्षिणी महाकुंजर (Elephas trogontherii) का स्थान ग्रहण करने लगा	मध्य प्रातिनूतन (मिडिल् प्लाइस्टोसीन्) में टुण्ड्रा और लोएस् स्टेपी पशु-वर्ग तत्त्वों की न्यूनता थी। निम्न प्रातिनूतन (लोअर् प्लाइस्टोसीन्) के पुराने पशु भी समाप्तप्राय ही थे।
	उपांतिम (पेनल्टिमेट) हिमप्रत्यावर्तन	जंगली गाय-बैल (Bos primigenius); प्रथम साँड (Bison priscus); वृहत् हरिण (Trogontherii cuvieri); आदिम भालू (Ursus arvenensis); कृपाण-दंती चीता (Sabre-tooth tiger या Machairodus) समाप्तप्राय, अफ्रीकी शेर (Felis leo) का अपेक्षाकृत आधिक्य; वनों में बड़ी नासिका वाला गैंडा (Dicerorhinus merckii); चारागाहों में Dicerorhinus hemitoechus; लाल हरिण (Cervus elaphus); विशाल आधुनिक प्रकार के घोड़े (Equus caballus mosbachensis); सीधी दाँत वाला हाथी (Straight-tusked elephant या Elephas antiquus); एकाध वृहत् दक्षिणी महा कुंजर (E. trogontherii)	
निम्न	प्रागुपांतिम (ऐण्टीपेनल्टिमेट) हिमावर्तन	प्रथम साँड (Bison priscus); वृहत् हरिण (Megaceros verticornis); लकड़बग्घा (Hyaena privirostris)); लाल हरिण (Cervus elaphus); बारहसिंघा; भालू (Ursus	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के उपविभाग	हिमावर्तन (ग्लेशिअल्) तथा हिमप्रत्यावर्तन (इण्टर ग्लेशिअल्)	विशिष्ट पशुवर्ग	निरूपण
		deningeri); वृहत् ऊदबिलाव (Trogontherium); कृपाण-दन्ती चीता (Machairodus); गैंडा (Dicerorhinus ctruscus); विशाल दक्षिणी महाकुंजर (Great southern mammoth या Elephas trogontherii); कस्तूरी वृषभ (Musk-ox या Ovibos moschatus)	निम्न प्रातिनूतन (लोअर् प्लाइस्टोसीन्) का आरंभ हाथी, घोड़ा तथा गाय-बैल के आधुनिक प्रकारों के आगमन से हुआ। इसके समाप्त होते-होते यूरोप के ज़ेब्री घोड़ों (Zebrine horses) की नस्ल भी मर चुकी थी।
निम्न	प्रागुपांतिम (ऐण्टीपेनल्टिमेट) हिमप्रत्यावर्तन	जंगली गाय-बैल (Bos primigenius); प्रथम साँड (Bison priscus); वृहत् दरियाई घोड़ा (Hippopotamus major); वृहत् ऊदबिलाव (Trogontherium); प्रथम वास्तविक हाथी (Elephas meridionalis); गैंडा (Dicerorhinus etruscus); कृपाण-दंती चीता (Machairodus); वृहत् हरिण (Megaceros); बहुश्रृंगी हरिण (Polycladine deer या Cervus sedgwicki); लाल हरिण (Cervus elaphus)	
	आरंभिक (अर्ली) हिमावर्तन	प्रथम जंगली गाय-बैल (Leptobos etruscus); कृपाण दंती चीता (Sabre-tooth tiger या Machairodus); प्रथम वास्तविक हाथी (Elephus meridionalis) इस हिमावर्तन के अंत तक विशाल दक्षिणी महाकुंजर (E. trogontherii); के समान दाँत होने लगे थे; आदिम घोड़ा (Equus stenonis); गैंडा (Dicerorhinus etruscus); वृहत् ऊदबिलाव (Trogontherium); कई प्रकार के हरिण; लकड़बग्घा (Hyaena perrieri)	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

पुरापाषाण उपकरण-निर्माण प्रविधियाँ

प्रागैतिहासिक काल के आरंभ में, जब मानव उपकरण-निर्माता के रूप में अपने पुरुषाभ वानर (ऐन्थ्रोपॉएड् एप्) पूर्वजों से पृथक् हुआ होगा, संचार (कम्यूनिकेशन्) और परिवहन (ट्रांस्पोर्ट) के साधन अत्यंत दुरूह थे। इस कारण पुरानी दुनिया (ओल्ड वर्ल्ड) के उन विभिन्न क्षेत्रों में जहाँ आदि-मानव की कृतियों के कुछ अनश्वर पादार्थिक अवशेष उपलब्ध होते हैं उनमें प्रसार (डिफ़्यूज़न्) द्वारा पारस्परिक प्रभाव परिलक्षित तो होते हैं, किंतु काफ़ी कम। इसके अतिरिक्त उपकरण-निर्माण के निमित्त आदि-मानव ने लकड़ी, हड्डी आदि कई सामग्रियों का उपयोग किया होगा; किंतु इन सब में पत्थर प्रधान था। यह कहना, कदाचित् अधिक उचित होगा कि आदि-मानव द्वारा उपकरण बनाने के लिए काम में लाये गये पदार्थों में पत्थर सापेक्षिक रूप से अनश्वर है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में कई प्रकार के पत्थर पाये जाते हैं। इनमें फ़्लिंट, चर्ट आदि कुछ पत्थर संमांग (होमॉजीनिअस्) तथा क्वार्ट्ज़् और ग्रेनाइट् जैसे कुछेक भिन्नांग (हेटरॉजीनिअस्) होते हैं। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रख कर तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि प्रस्तर-उपकरण-निर्माण प्रविधियों का सार्वदेशिक अध्ययन संभव ही नहीं है क्योंकि विभिन्न प्रदेशों में मिलने वाले पत्थरों ने वहाँ की प्रविधियों को प्रादेशिक स्वरूप प्रदान किया होगा। यह सच है कि पुरानी दुनिया में ही हमें दो पुरापाषाण उपकरण-परंपराओं का प्रमाण मिलता है। किंतु इसका आधार पत्थरों की आंतरिक समांगता अथवा भिन्नांगता उतना अधिक नहीं है जितना कि उनका बाहरी स्वरूप तथा बनावट है। इसके अतिरिक्त प्राप्त साक्षियों की तुलना से यह पता चलता है कि भिन्न-भिन्न प्रागैतिहासिक संस्कृतियों को उनका स्वरूप प्रदान करने वाले उपकरण-प्रकारों में विश्वव्यापी साम्य तथा स्थायित्व है यद्यपि उपकरण बनाने के लिए कई प्रकार के पत्थरों का उपयोग किया गया था। काफ़ी प्रयोग के बाद लीकी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पत्थर-प्रकारों के कारण बुनियादी (मूलभूत) प्रविधि में चाहे आंशिक परिवर्तन हो जाय कोई विशेष अन्तर संभव नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके पूर्व कि हम विभिन्न प्रविधियों का वर्णन करें यह जान लेना आवश्यक होगा कि उनकी आधार-शिला क्या है। यों तो पत्थर को बीच से तोड़ कर उसके पैने हिस्से को औज़ार की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। किंतु प्रविधियों का उपयोग इसलिये किया जाता है कि पत्थर के उस टुकड़े को जिस पर अथवा जिससे उपकरण बनाना है--इसको **'कोर'** कहते हैं--उसको ठीक से तराशा जाय। तराशने के दो उद्देश्य होते हैं। प्रथम उस 'कोर' में से पत्तर अथवा **'फ़्लेक'** इस उद्देश्य से निकाले जायँ जिससे उस 'कोर' को एक उपकरण-स्वरूप तथा उसके एक भाग को पैनी धार प्रदान किया जा सके। अन्य शब्दों में उद्देश्य 'कोर' से कोर-उपकरण बनाना होता है। ऐसी परिस्थिति में निकाले गये फ़्लेकों को बेकार टुकड़ों की तरह त्याग दिया जाता है। दूसरा उद्देश्य कोर से ऐसे फ्लेकों का निकालना ही होता है जिनको उपकरण की तरह काम में लाया जा सके। दूसरे रूप में हम यह कह सकते हैं कि इस अवस्था में कोर से फ़्लेक-उपकरण बनाना उद्देश्य होता है। इसलिये बचे कोर के टुकड़े अथवा 'कोर' को त्याग दिया जाता है। 'कोर' से फ़्लेक निकालने के पहले 'कोर' का ध्यानपूर्वक परीक्षण कर ऐसे स्थल को ढूँढ़ लेना आवश्यक होता है जहाँ से हथौड़े द्वारा सरलतापूर्वक आघात किया जा सके। ऐसे स्थल को **आघात-स्थल (स्ट्राइकिंग् प्लैट्फ़ार्म)** कहते हैं। दूसरे शब्दों में आघात-स्थल कोर (या पत्थर के टुकड़े) पर खोजा गया, या कभी-कभी **कृत्रिम रूप से बनाया गया वह क्षेत्र** या स्थल है जहाँ से संघात (परकशन्) अथवा निपीड (दवाव या प्रेशर) द्वारा फ़्लेक निकाले जाते हैं। कोर (या पत्थर के टुकड़े) के आघात-स्थल पर उस विंदु या क्षेत्र को जहाँ हथौड़े और कोर का संपर्क स्थापित होता है उसको **संपर्क-विंदु (प्वाइंट् आव् इंपैक्ट्)** कहा जाता है।

संपर्क-विन्दु पर जब हथौड़े और पत्थर के टुकड़े का संपर्क स्थापित होता है तब कुछ बल (फ़ोर्स्) उस पत्थर के टुकड़े के अन्दर प्रवेश करता है। यह पत्थर से फ़्लेक निकालने के रूप में कुछ काम करता है। ठोस पदार्थ के अंदर बल-वंटन का एक सिद्धांत है। किंतु यह सिद्धांत कुछ तथ्यों द्वारा नियंत्रित रूप में ही निरूपित होता है। वे नियंत्रणकारी तथ्य हैं: (१) हथौड़ा किस पदार्थ का बना है?--लकड़ी, हड्डी या पत्थर का; (२) हथौड़े का आकार कैसा है?--नोकीला, बेलनाकार या किसी अन्य प्रकार का है; (३) बल-प्रहार की दिशा क्या है?; (४) बल-प्रहार किया किस ढंग से जाता है?--संघात (परकशन्) या निपीड (प्रेशर्) द्वारा; तथा (५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयोग किये गये बल की मात्रा कितनी है और प्रकार (धीमा या तेज़) कैसा है ? नदी द्वारा चिकनाये हुए पत्थर (पेबुल्) को हथौड़ा बना कर एक आयताकार पत्थर के बीचोबीच उदग्र (वर्टिकल्) प्रहार करने पर कभी-कभी तो प्रत्यक्ष रूप में केवल हथौड़े का निशान भर ही दिखाई पड़ सकता है, यद्यपि अंदर दरारें-सी बन गई होंगी। थोड़े और अधिक ज़ोर से आघात करने पर, यदि पत्थर समांग (होमॉजीनिअस्) हुआ तो, संपर्क-विंदु से एक पूरा संमितीय शंकु (सिमेट्रिकल् कोन) बन जायगा। इसको **संघात का शंकु (कोन आव् परकशन्)** कहते हैं। यदि पत्थर भिन्नांग (हेटरॉजीनिअस्) हुआ तो शीर्ष-स्थान पर एक छोटा पूर्ण शंकु (फ़ुलकोन) बन जायगा; किंतु उसके नीचे से पत्थर कमज़ोर भागों की दरारों पर से बेडौल ढंग से टूट जायगा। उपर्युक्त वर्णन से हम कई निष्कर्ष निकाल सकते हैं। प्रथम, संपर्क-विंदु से बल पत्थर (कोर) के अंदर प्रहार-दिशा की सीध में नहीं बल्कि उससे एक कोण बनाता हुआ प्रवेश करता है। द्वितीय, बल-प्रवेश क्रमवर्द्धमान वृत्तों (एवर् वाइडेनिंग् सर्किल्स्) में होता है, एक सीधी रेखा में नहीं। यही कारण है कि हमें पत्थर पर एक शंकु (कोन) बना मिलता है। तृतीय, बल-प्रवेश का ठोस पदार्थ (पत्थर) के अंदर विद्यमान रोध (रेज़िस्टेन्स्) से प्रत्यक्ष और सीधा संबंध होता है। इस रोध के कारण ही प्रहारोपरांत बल उसी सीध या एक ही सीधी रेखा में नहीं प्रवेश कर पाता है। इसी कारण जहाँ समांग पत्थर में पूरा शंकु बनता है वहाँ भिन्नांग पत्थर शीर्ष-शंकु बनने के बाद बेडौल टूटता है। क ख ग घ एक पत्थर या कोर है। इसमें से प क घ फ फ़्लेक निकालना है। ऊपर के अनुभवों के आधार पर हम प फ की सीध में आघात नहीं करेंगे। आघात की दिशा प फ से कोण बनाती हुई होगी। चूंकि आघात पत्थर के एक किनारे पर किया जायगा इसलिये उसके अंदर संपूर्ण बल नहीं, उसका कुछ अंश ही, प्रवेश कर सकेगा। ऐसी अवस्था में शंकु के दूसरे अर्द्धांश में रोध का अभाव होने के कारण **झटके का प्रभाव** (शैटर् इफ़ेक्ट्) होने की संभावना रहती है जिससे पत्थर बेडौल रूप से टूट सकता है। इस झटके के प्रभाव से बचने के लिये प्रागैतिहासिक उपकरण-निर्माता क घ की ओर पत्थर को किसी लकड़ी या कभी-कभी जाँघ का सहारा दे दिया करते थे। इस प्रकार बल का एक अंश पत्थर में तथा दूसरा लकड़ी या जाँघ में प्रवेश कर जाता है। अतः क ख ग घ में संघात का पूर्ण-शंकु नहीं बनता। चूंकि पत्थर में बल का अर्द्धांश ही प्रवेश कर सका, इसलिये संपर्क-विंदु (प्वाइंट् आव् इंपैक्ट्)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प के नीचे प क घ फ फ़्लेक में एक उठा हुआ अंश या घुंडी बनती है जो शंकु (कोन) के आधा होती है। इसको **संघात का अर्ध-शंकु (सेमी कोन आव् परकशन्)** कहते हैं। प क घ फ फ़्लेक की घुंडी के ठीक बराबर गहरायी का एक गड्ढा प ख ग फ, अर्थात बचे हुए 'कोर', में पाया जाता है। इस गड्ढे में प क घ फ फ़्लेक की घुंडी या अर्ध-शंकु ठीक-ठीक बैठ जायगा। इस गह्वर को **संघात का गड्ढा (निगेटिव् बल्ब आव् परकशन्)** कहते हैं। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियों में बलाघात किया जाय तो संघात का शंकु (कोन आव् परकशन्) सदा कोर या मुख्य पत्थर में और संघात का अर्धशंकु (बल्ब या सेमी कोन आव् परकशन्) सदा फ़्लेक या मुख्य पत्थर से निकले हुए टुकड़े में ही बनेगा। फ़्लेक में संघात के अर्धशंकु से लगा हुआ और उसके ठीक नीचे प्रायः एक छिछला गड्ढा बना मिलता है। इसको **अर्धशंकु का चिह्न (बल्बर् स्कार्)** कहते हैं।

आगामी पंक्तियों में उपकरण-निर्माण प्रविधियों के वर्णन से उनके अत्यन्त सुगम होने की भ्रांति हो सकती है। किंतु वास्तविकता कुछ और ही है। उपकरण-निर्माण में दक्षता-प्राप्ति युगों तक चलती रहने वाली परंपराओं का परिणाम थीं। प्रसिद्ध फ्रांसीसी प्रस्तर-उपकरण-निर्माण-विशेषज्ञ, लियाँ क्यूतियर (Coutier) तथा विश्वविख्यात प्रागितिहासज्ञ लीकी वर्षों के प्रयोग एवं अथक परिश्रम के उपरांत भी इस कौशल का पूर्ण मर्म नहीं जान सके। ऊपर हम यह बतला चुके हैं कि 'कोर' के उस स्थान को, जहाँ फ़्लेक निकालने के लिये आघात देना आरम्भ किया जाता है, **आघात-स्थल (स्ट्राइकिंग् प्लैट्फ़ार्म)** कहते हैं। **आघात-स्थल प्राकृतिक (नैचरल् या अन्फ़ैसेटेड्)** कहा जाता है जब 'कोर' पर किसी पूर्व-स्थित गड्ढे को ही काम में लाया जाता है। किंतु कभी-कभी ऐसी सुविधा नहीं मिलती है। उस दशा में फ़्लेक निकाल कर आघात-स्थल को इस योग्य बनाया जाता है कि वहाँ आघात कर कोर से मनोवांछित फ़्लेक निकाले जा सकें। ऐसे आघात-स्थल को **कृत्रिम (आर्टिफ़िशिअल् या फ़ैसेटेड्) आघात-स्थल** की संज्ञा प्रदान की जाती है। प्राकृतिक आघात-स्थल ढूंढ लेने अथवा कृत्रिम आघात-स्थल बना लेने के बाद प्रागैतिहासिक उपकरण-निर्माता अपना उपकरण बनाना आरम्भ करता होगा। उपकरण को मनचाहा रूप देने के लिये या कभी-कभी पैनी धार बनाने के लिये पत्थर या कोर से बड़े-बड़े फ़्लेक निकालने चाहियें। इसके अतिरिक्त फ़्लेक-उपकरण बनाने के लिये भी बड़े फ़्लेकों का निकालना आवश्यक होगा। इस प्रकार के फ़्लेक निकालने की प्रविधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को **प्राथमिक फ़्लेकीकरण (प्राइमरी फ़्लेकिंग्)** कहा जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि प्राथमिक फ़्लेक निकालने के उद्देश्य से आघात आघात-स्थल बनाने के लिये किये गये संघात-दिशा के समकोण बनाते हुए किया जाता है, तथा कोर की लंबी धुरी उदग्र (वर्टिकल्) रखी जाती है। इसके विपरीत यदि छोट-छोटे फ़्लेक निकालने हों तो दूसरी प्रविधि अपनानी पड़ेगी। स्पष्ट है कि ऐसे फ़्लेक इस उद्देश्य से नहीं निकाले जाते थे कि उनको फ्लेक-उपकरण की तरह इस्तेमाल किया जाय। ये छोटे-छोटे फ़्लेक, फ़्लेक कोर या ब्लेड से उसके किसी अंग को धार प्रदान करने, धारहीन (मंद) करने या कभी-कभी उसको सुघड़ बनाने के उद्देश्य से निकाले जाते थे। इस प्रविधि को **द्वितीयक फ़्लेकीकरण** (सेकण्ड्री फ़्लेकिंग्) अथवा **पुनर्गढ़न प्रविधि** (रीटचिंग्) कहा जाता है। प्राथमिक फ़्लेकीकरण के विपरीत इस प्रविधि द्वारा अपेक्षाकृत छोटे-छोटे फ्लेक निकाले जाते हैं; पत्थर के टुकड़े (कोर) को लंबाई की ओर से उदग्र (वर्टिकल्) नहीं बल्कि क्षैतिज (हॉरिजॉण्टल) अवस्था में रखते हैं, लेकिन इस नियम का एक अपवाद है; बल-प्रहार आघात-स्थल बनाने की तथा प्राथमिक फ़्लेकीकरण दोनों की संघात-दिशाओं से समकोण बनाते हुए दिशा में किया जाता है। यहाँ यह संकेत कर देना आवश्यक है कि जहाँ कुछ प्रविधियाँ केवल प्राथमिक और कुछ केवल द्वितीयक ही होती हैं, ऐसी भी अनेक प्रविधियाँ हैं जो अपेक्षाकृत छोटे हथौड़े तथा कम बल-प्रहार के परिणामस्वरूप द्वितीयक या पुनर्गढ़न प्रविधियाँ हो जाती हैं यद्यपि रहतीं वे प्रमुख रूप से प्राथमिक ही हैं।

साधारणतः उन सभी प्रविधियों में, जिनमें बल-प्रवेश संघात द्वारा कराया जाता है, पत्थर का टुकड़ा स्थिरप्राय रहता है तथा दूसरे हाथ में पकड़ा हुआ हथौड़ा हवा में घूम कर उसके निकट आता है। किन्तु प्रस्तर-उपकरण-निर्माण के आरम्भिक चरण में ही तत्कालीन मानव ने एक भिन्न प्रक्रिया अपनायी थी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस प्रविधि में, चुने गये 'कोर' को स्थिर-हथौड़े से संघात कराया जाता है। इस प्रविधि में प्रागैतिहासिक मानव हथौड़ा निहाईकी तरह अचल रखता होगा और चलायमानता कोर या पत्थर के टुकड़े को ही प्रदान की जाती होगी। सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी प्रागितिहासज्ञ, एबे ब्रीयुल (Abbe Breuil), इस मत के पोषक थे कि कोर को चमड़े के एक लम्बे टुकड़े में बाँध कर तिपाई के सहारे लटकाया जाता रहा होगा। उपकरण बनाने के लिए उसको दीवाल-घड़ी के पेण्डुलम् की तरह झुला कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्दिष्ट स्थान पर स्थित हथौड़े से संपर्क कराया जाता होगा। लीकी का कथन है कि उपर्युक्त प्रक्रिया में अनिश्चितता की मात्रा इतनी अधिक है कि प्रागैतिहासिक मानव पत्थर को हाथ से पकड़ कर ही उसे स्थिर-हथौड़े के पास ले जाता होगा। इस प्रविधि को **स्थिर-हथौड़ा** या **निहाई (ब्लाक्-ऑन्-ब्लाक्, ऐन्विल् या स्विंगिङ-ब्लो) प्रविधि** कहते हैं।

पेकिन मानव अपने उपकरण बनाने के लिए एक ऐसी प्रविधि अपनाया करता था जिसमें फ़्लेक के दोनों किनारों पर एक-एक संघात के अर्धशंकु बने मिलते हैं। ऊपर हमने यह देखा था कि संघात के परिणाम-स्वरूप फ़्लेक में संपर्क-विन्दु के नीचे एक संघात का अर्धशंकु बना मिलता है। किन्तु पेकिन मानव की प्रविधि (टेक्नीक) में कोर पर संघात चलायमान हथौड़े द्वारा ही किया जाया करता होगा। लेकिन शायद दूसरे किनारे को सहायता देने के उद्देश्य से किसी चट्टानादि से टिका जाया करता था। फ़्लेक के एक किनारे पर तो अर्धशंकु प्रत्यक्ष संघात के कारण बनेगा। दूसरे किनारे पर जहाँ 'कोर' टिका रहा था बल उछाल के कारण संघात-दिशा के ठीक विपरीत दिशा में काम करेगा। इस प्रकार निकलने वाले फ़्लेक के दोनों किनारों पर एक-एक संघात के अर्धशंकु बन जायेंगे। यह नहीं भूलना चाहिये कि इस **द्विध्रुवीय (बाइपोलर) प्रविधि** में, निहाई प्रविधि के प्रतिकूल, हथौड़ा स्थिर नहीं रखा जाता था यद्यपि कोर को दूसरी ओर से चट्टानादि पर टिका कर सहारा दे दिया जाया करता था। यहीं यह बतला देना उचित होगा कि बर्किट् के मतानुसार स्थिर-हथौड़ा (स्विंगिङ ब्लो) प्रविधि ही **क्लैक्टोन** (Clacton) **फ़्लेक प्रविधि** है। कदाचित् यह कहना अधिक उचित होगा कि क्लैक्टोन फ़्लेक बनाने के लिये स्थिर-हथौड़ा प्रविधि अपनाई जाती रही होगी। क्लैक्टोन प्रविधि की कुछ अन्य विशेषताओं में अकृत्रिम आघात-स्थल और आघात-स्थल तथा मुख्य फ़्लेक सतह के बीच वृहत् (विषम) कोण—१२० डिग्री के लगभग, का होना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। क्लैक्टोन प्रविधि से भिन्न किन्तु तुलना में उसके निकट एक अन्य प्रविधि द्वारा जो फ़्लेक बनाया जाता था उसे लेवलॉयेज़ (Levallois) फ़्लेक कहा जाता था। इस प्रविधि में कृत्रिम आघात-स्थल अत्यन्त सावधानी से बनाया जाता था। कोर से पृथक् होने के पूर्व ही भावी फ़्लेक का स्वरूप गढ़ लिया जाता था। इस कारण ही इस प्रविधि को **गढ़ा (निर्मित) 'कोर'** अथवा **लेवलॉयेज़ प्रविधि (प्रिपेयर्ड कोर या लेवलॉयेज़ टेक्नीक)** कहा जाता है। विशेष रूप से गढ़े हुए इस 'कोर' को **'कछुवा कोर'** की संज्ञा प्रदान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जाती है। लेवलॉयेज़ फ़्लेक के किनारे काफ़ी पैने होते हैं और उसकी चौड़ाई तथा मुटाई की अपेक्षा लम्बाई बहुत अधिक होती है। कृत्रिम आघात-स्थल एवं गढ़े कोर के अतिरिक्त लेवलॉयेज़ की अन्य विशेषता उसके आघात-स्थल और मुख्य फ़्लेक सतह के बीच ९० डिग्री का कोण बनना भी है। ऐसे सुघड़ उपकरण बनाने के लिए साधारण से अधिक सावधानी की आवश्यकता थी। इसीलिये इसके निर्माणकर्त्ता इसको झटके के प्रभाव से बचाने के लिए 'कछुवा कोर' को संघात करने से पहले चमड़े के टुकड़े में लपेट कर बालू में गाड़ दिया करते थे, ऐसा अनुमान किया जाता है।

प्रस्तर-हथौड़ा (हैमर स्टोन) अथवा स्थिर-हथौड़ा प्रविधियों द्वारा निकाले गये फ़्लेकों के गड्ढे गहरे होते हैं। निम्न पुरापाषाण (लं अर् पैलियॉलिथिक) काल के एश्यूली (Acheulean) कोर-उपकरणों पर छिछले फ़्लेक गड्ढे पाये जाते हैं। उच्च (अपर्) पुरापाषाण काल में यह कार्य दो प्रविधियों––अप्रत्यक्ष संघात एवं निपीड (दबाव)––द्वारा किया जाता था। किन्तु एश्यूली उपकरण बनाने के लिए जो प्रविधि अपनाई जाती होगी उसे **'काष्ठ-हथौड़ा'** या **काष्ठ-प्रविधि (वुडेन हैमर या वुड टेक्नीक)** कहा जाता है क्योंकि लियाँ क्यूतियर ने वैसे उपकरण लकड़ी के बेलनाकार हथौड़े द्वारा बनाये थे। लीकी हथौड़े के पत्थर की अपेक्षा नरम पदार्थ से बने होने को अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। उनका मत है कि यह आवश्यक नहीं कि हथौड़ा लकड़ी का ही हो, हड्डी भी बहुत उपयुक्त पदार्थ है। दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य हथौड़े का आकार है। बेलनाकार होने के कारण संपर्क-विन्दु एक विन्दु अथवा वक्र क्षेत्र नहीं वरन् एक वृत्त-खण्ड (आॅर्क) होता है। चूंकि हथौड़ा क्षैतिज (हॉरिज़ॉण्टल्) अवस्था में ही रखा जा सकता है इसलिए पत्थर के टुकड़े या कोर के एक किनारे पर ही सुगमता से आघात किया जा सकता है, मध्य में नहीं। इन सब नियंत्रणकारी तथ्यों के कारण जो फ़्लेक निकलता है वह पत्थर के हथौड़े से संघात के कारण निकले हुए फ़्लेक की अपेक्षा कहीं अधिक चपटा और सुडौल होता है। इस प्रविधि को **बेलनाकार हथौड़ा प्रविधि (सिलिण्डर हैमर टेक्नीक)** अथवा **नियंत्रित फ़्लेकीकरण** (कण्ट्रोल्ड् फ़्लेकिंग्) भी कहा जाता है।

उच्च पुरापाषाण के प्रमुख उपकरण ब्लेड-उपकरण थे। ब्लेड फ़्लेक का एक विशेष प्रकार होता है। ब्लेड वह फ़्लेक है जिसके दोनों किनारे लगभग एक-दूसरे के समानान्तर होते हैं; उसकी लंबाई, चौड़ाई, विशेष रूप से मुटाई, की अपेक्षा कई गुनी अधिक होती है। ब्लेड बनाने के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़्लेक की अपेक्षा अधिक सावधानी बरतनी पड़ती होगी। इस कारण, बर्किट के मतानुसार, ब्लेड बनाने के लिए चुने गये कोर पर हथौड़े से प्रत्यक्ष आघात नहीं किया जाता होगा। जिस स्थान से फ़्लेक निकालना होता था वहाँ लकड़ी या हड्डी की छेनी का एक सिरा रखा जाता था और संघात उसके दूसरे सिरे पर किया जाता था। संघात की दिशा क्या हो इसका ध्यान रखकर ही छेनी की दिशा निर्धारित की जाती थी। यह स्पष्ट है कि ऐसा फ़्लेकीकरण एक व्यक्ति अकेले बहुत कठिनाई से ही कर पायेगा। इसमें दो व्यक्तियों के परस्पर सहयोग की आवश्यकता होगी जिसमें एक आदमी पत्थर का टुकड़ा पकड़े रहे तथा दूसरा छेनी और हथौड़ा सँभाले। विशेष दक्ष उपकरण-निर्माता दूसरे की सहायता लेने की अपेक्षा पत्थर को दबाने के लिए अपने दोनों पैरों के घुटनों का इस्तेमाल करना अधिक पसन्द कर सकता है। इस प्रविधि को बर्किट **छेनी (पंच) या ब्लेड प्रविधि** कहते हैं। लीकी का यह अनुमान है कि ग्रेवर या ब्यूरीन नामक उच्च पुरापाषाण उपकरण का रुखानीनुमा फल इसी प्रविधि द्वारा बनाया जाता था। ओक्ली (K.P. Oakley) इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सॉल्यूट्री (Solutrean) उपकरणों पर पुनर्गढ़न के निशान छिछले होने पर भी इतने बड़े हैं कि उनके निकालने के लिए **अप्रत्यक्ष संघात (इण्डाइरेक्ट् परकशन्)** या छेनी (पंच) प्रविधि का उपयोग किया जाता होगा। डॉ० लीकी ने ब्लेड बनाने की पद्धति पर नया प्रकाश डाला है। उन्होंने ब्लेड बनाने की प्रविधि (टेक्नीक) को **ब्लेड-फ़्लेक प्रविधि** कहा है। ऊपर से देखने पर यह प्रविधि गढ़े-कोर (प्रिपेयर्ड् कोर) प्रविधि का एक दूसरा प्रतिरूप-सा प्रतीत हो सकती है। किन्तु वास्तविकता कुछ और है। गढ़े-कोर अथवा कछुवा-कोर प्रविधि में बनने वाले उपकरण का स्वरूप उसके बनने के पहले ही गढ़ लिया जाता था। लम्बे-पतले ब्लेड-उपकरण उस प्रकार नहीं बनाये जा सकते हैं। उनका उपकरण-स्वरूप बाद में पुनर्गढ़न या द्वितीयक फ़्लेकीकरण द्वारा प्रदान किया जाता था। ब्लेड-फ़्लेक प्रविधि में कोर-गढ़न नाम से उसको बीच से दो भागों में तोड़ना सम्मिलित किया जा सकता है जिससे समतल आघात-स्थल बन सके। इस काम के लिए पत्थर का काफ़ी बड़ा टुकड़ा लेना पड़ेगा जिसको मुट्ठी में पकड़ कर आर-पार हो जाने योग्य बल से उस रेखा के समकोण बनाती हुई दिशा में आघात करना होगा जहाँ से पत्थर को दो भाग करने की इच्छा है। मुट्ठी की पकड़ के ठीक विपरीत दिशा में काम करने वाला बल तत्क्षण पत्थर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो भाग कर देगा। समतल आघात-स्थल (स्ट्राइकिंग् प्लैटफ़ॉर्म) को अब जाँघ पर सहारा देते हुए थोड़ा तिरछा ऊपर की ओर रखा जाता है। जाँघ से टिकाव के ऊपर संपर्क-विन्दु को लक्षित कर एक छोटे प्रस्तर-हथौड़े से कोर के एक किनारे पर आघात-स्थल से ४५ डिग्री और जिस दिशा से फ़्लेक निकलना है उससे १३५ डिग्री का कोण बनाते हुए हल्का प्रहार किया जाता है। प्रत्येक फ़्लेक निकालने के बाद कोर को उसकी छुरी पर, आघात-स्थल को सदा उसी दिशा में रखते हुए, इस प्रकार घुमा दिया जाता है जिससे आघात सदा किनारे पर ही किया जा सके। कोर में छिछलापन न आने पाये, इसलिये प्रत्येक आघात के बाद उसको पीछे घुमा दिया जाता है। इस प्रकार कोर के चारों ओर से फ़्लेक निकाल लेने के उपरान्त वह कोर असली ब्लेड-फ़्लेक बनाने के लिए गढ़ कर तैयार है। अब पहले निकाले गये दो फ़्लेकों के गड्ढों के बीच में आघात कर मनोवांछित ब्लेड-फ़्लेक बना लिया जाता है। इस ब्लेड-फ़्लेक के मध्य में उन दो फ़्लेक-गड्ढों के दो किनारे दो समानान्तर उभरी रेखाओं के रूप में विद्यमान रहते हैं।

इस अध्याय के आरम्भ में ही हम बतला चुके हैं कि पत्थर के अन्दर बल-वंटन कुछ तथ्यों द्वारा नियंत्रित होता है। ऊपर यह भी प्रदर्शित किया जा चुका है कि अपेक्षाकृत छोटा हथौड़ा लेने और बल की मात्रा कम कर देने पर प्राथमिक प्रविधियाँ ही पुनर्गढ़न के उपयुक्त बन जाती हैं। बल-आघात की दिशा का तो अपना ही महत्त्व है। क ख ग घ पत्थर के संपर्क-विंदु प पर बने तीर की दिशा में आघात करने से प क घ फ फ़्लेक बन जायेगा। मामूली अवस्था में, लीकी के शब्दों में, इसको प्रस्तर हथौड़ा (हैमर स्टोन) प्रविधि कहा जा सकता है। बल-प्रहार की दिशा के अनुसार इसका **अन्तर्मुखी संघात प्रविधि** अथवा **निबंध (फ़्री) फ़्लेकीकरण** नाम बर्किट ने प्रदान किया है। प क घ फ फ़्लेक एक ही प्रहार में बल के एक अंश के पत्थर क ख ग घ को पार कर जाने से बना है। ऐसे निबंध फ़्लेक के **फ़्लेक-चिह्न (फ़्लेक स्कार)** के एक सिरे से दूसरे सिरे तक उँगली फिराने पर किसी रुकावट या अवरोध का सामना नहीं करना पड़ता है। किंतु परिस्थिति इससे सर्वथा भिन्न होगी यदि संपर्क-विंदु च हो तथा आघात-दिशा उस पर संकेत करने वाले तीर के अनुरूप हो। इस अवस्था में पत्थर में प्रवेश करने वाला बलांश च छ की सीध में जायेगा और उसको अधिक रोध का सामना करना पड़ेगा। च छ की दिशा में ही पत्थर को तोड़ सकने का सामर्थ्य न होने के कारण वह बलांश पत्थर के अन्दर छ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक ही प्रवेश कर सकेगा। चूंकि साधारण पत्थर पूर्णतया समांग कदाचित् ही होता है इसलिये छ से, झटके के प्रभाव के कारण पत्थर छ ज की दिशा में कमज़ोर भाग से टूट जाता है जिससे ख च छ ज फ़्लेक बनता है। यह फ़्लेक प क घ फ से बिल्कुल भिन्न होता है। च छ ज फ़्लेक-चिन्ह में यदि हम च से ज तक उँगली फिरायें तो हमारी उँगली को अवरोध का सामना करना पड़ेगा; क्योंकि च छ ज छिछले गड्ढे की तरह नहीं बल्कि सोपान-पद के आकार का होता है। इसीलिये इस प्रविधि को **सोपान-पद फ़्लेकीकरण (स्टेप् फ़्लेकिंग्)** अथवा **अंतर्मुखी संघात (इन्वर्ड्-ब्लो) प्रविधि** कहा जाता है।

कुछ उच्च पुरापाषाण उद्योगों के उपकरण अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक गढ़े गये थे। विशेषज्ञों का यह मत है कि इनको बनाने के लिए जो प्रविधि अपनाई गई थी वह न तो अप्रत्यक्ष-संघात कही जा सकती है और न निपीड (दबाव) प्रविधि। इसमें काफ़ी लंबे किंतु फिर भी पतले, छिछले और समानांतर किनारे वाले फ़्लेक निकाले गये थे। बर्किट इसको **फ़्लूटिंग् प्रविधि** नाम देते हैं। प्रागैतिहासिक मानव ने किस तरह ऐसे सुन्दर फ़्लेक निकाले होंगे यह बतला सकने में वे पूर्ण असमर्थ हैं यह वे भी स्वीकार करते हैं।

अब तक के वर्णन में हमने बल-प्रवेश के पहले पत्थर के टुकड़े और हथौड़े की दो सापेक्षिक स्थितियों का वर्णन किया है। इनमें से एक में हथौड़ा स्थिर और पत्थर का टुकड़ा चलायमान होता है। तथा दूसरे में पत्थर का टुकड़ा स्थिर और हथौड़ा चलायमान। किंतु अब हम जिस प्रविधि का वर्णन करेंगे उसमें कोर और हथौड़े में पहले से ही संपर्क स्थापित रहता है क्योंकि कोर में बल दबाव (निपीड) द्वारा प्रवेश कराया जाता है। इस प्रविधि द्वारा कोर में बहुत कम मात्रा में बल-प्रवेश कराया जा सकता है। अतः छोटे-छोटे फ़्लेक ही निकल सकेंगे। उनके निपीड के अर्धशंकु तथा **अर्धशंकु के चिन्ह (बल्बर् स्कार्)** अपेक्षाकृत छिछले और छोटे होंगे। यह स्पष्ट है कि इस प्रविधि का उपयोग बड़े-बड़े प्राथमिक फ़्लेक निकालने के लिए नहीं किया जा सकेगा। इस प्रविधि से पुनर्गढ़न (रीटचिंग्) और बारीक मीनाकारी ही की जाया करती थी। ऐसे बारीक काम के लिए पत्थर का हथौड़ा सर्वथा अनुपयुक्त होगा। इस कारण लकड़ी, हड्डी या हाथी दाँत आदि के विशेष प्रकार के हथौड़े ही काम में लाये जाते थे। इस प्रविधि से बना हुआ फ़्लेक जैसा दिखाई पड़ता है उसी के आधार पर इसको **'मत्स्य-चोइयाँ' (फ़िश्-स्केल्) फ़्लेकीकरण** भी कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊपर वर्णित पुरापाषाण प्रस्तर-उपकरण-निर्माण प्रविधियों को प्राथमिक और द्वितीयक फ़्लेकीकरण तथा सम्मिलित प्रविधियों में निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है:

प्राथमिक फ़्लेकीकरण	**प्राथमिक एवं पुनर्गढ़न फ़्लेकीकरण**	**द्वितीयक (पुनर्गढ़न) फ़्लेकीकरण**
१. क्लैक्टोन प्रविधि	१. निबंध फ़्लेकीकरण	१. सोपान-पद (संबंध-संघात) प्रविधि
२. लेवलॉयेज़ प्रविधि	२. अप्रत्यक्ष संघात या छेनी (ब्लेड) प्रविधि	२. फ़्लूटिंग् प्रविधि
३. स्थिर-हथौड़ा निहाई प्रविधि	३. बेलनाकार हथौड़ा या काष्ठ प्रविधि या नियंत्रित फ़्लेकीकरण	३. निपीड (दबाव) प्रविधि
४. द्विध्रुवीय प्रविधि		
५. प्रस्तर-हथौड़ा प्रविधि		
६. ब्लेड-फ़्लेक प्रविधि		

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

पुरापाषाण प्रस्तर-उपकरण प्रकार (परिवार)

इस अध्याय में हम उन पुरापाषाण (पैलियॉलिथिक) उपकरणों के प्रकार एवं परिवार-विभाजन के बारे में कुछ कहना चाहेंगे जिनको बनाने वाली प्रविधियों का विस्तृत विवरण पिछले कुछ पृष्ठों में किया गया है। पुरापाषाण के तीन उपविभागों--निम्न (लोअर्), मध्य (मिडिल्) एवं उच्च (अपर्)--का आरंभिक आधार उपकरण-प्रकार को ही बनाया गया था इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु एक उपकरण परिवार केवल एक ही उद्योग या संस्कृति तक ही सीमित या उससे ही सह-संबंधित हो ऐसा नहीं है। अतः उपकरणों का प्रकार-विभाजन उनके 'कोर', फ्लेक अथवा ब्लेड पर बने होने के आधार पर किया जायगा।

कोर-उपकरण

कू-द-पुआँ (*Coup-de-poing*), हैण्डैक्स (Handaxe) अथवा बूशर (*Boucher*) निम्न पुरापाषाण के एबेवीली-एश्यूली (*Abbevillio-Acheulian*) संस्कृति के प्रमुख कोर-उपकरण हैं। 'कोर' को दोनों ओर इस उद्देश्य से गढ़ा जाता है कि बग़ल में, दोनों पृष्ठों के मिलन से, एक तेज़ छोर बन जाय। दोनों पृष्ठों पर गढ़े होने के कारण इसको 'द्वितल-कोर' (कोर बाइफ़ेस) या 'द्वितल' कहा जाता है। प्रो० ब्रैडवुड् (Braidwood) तो केवल इसी नाम (द्वितल-कोर) को ठीक मानते हैं यद्यपि हैण्डैक्स अधिक प्रचलित नाम है। सबसे अधिक आदिम हैण्डैक्स का कार्यांग (वर्किग् एण्ड्) नोकीला-सा होता है। उसका 'बट' या समंत (कार्यांग की विपरीत दिशा में उपकरण का वह अंश जहाँ से उसको हाथ में पकड़ कर इस्तेमाल किया जाता होगा) कम गढ़ा तथा अपेक्षाकृत मोटा होता है। इस उपकरण के उभय-तल एक समान दीखते हैं। बग़ल से देखने पर यह उपकरण शीर्ष (कार्यांग) की ओर क्रमशः नोकीला होता जाता है। इसको **'बादामाकार'** (आमन-शेप्ड्=Almond-shaped या पीयर-शेप्ड्=Pear-shaped अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नोकीला) हैण्डैक्स कहा जाता है। इस तरह के हैण्डैक्स यूरोप के एबेवीली (शेलीय=Chellean) उद्योग में बहुत बनाये गये थे। लीकी का मत है कि शेलीय (एबेवीली) हैण्डैक्स बनाने में स्थिर-हथौड़ा (निहाई) प्रविधि का उपयोग किया गया होगा। नोकीले (बादामाकार) हैण्डैक्सों के बाद यूरोप में कुछ ऐसे द्वितल-कोर (हैण्डैक्स) बनाये गये जो उनसे अपेक्षाकृत अधिक चिपटे होते हैं। यद्यपि ऐसे द्वितल-कोर का कार्यांग निश्चय ही कुछ पतला होता था किंतु उसकी तथा समंत (बट) की मुटाई में कोई विशेष अंतर नहीं होता है। इस हैण्डैक्स के दोनों तल एक-से होते हैं और पूरा उपकरण ही अंडाकार होता है। इस कारण इसको **अंडाकार (ओवेट) हैण्डैक्स** कहा जाता है। एश्यूली (Acheulian) उद्योग में अंडाकार हैण्डैक्स बनाने का कौशल एक नवीन स्तर तक पहुँच गया जब **'एस्' या 'ज़ेड'-ऐंठन** (S-या-Z twist) **वाले अंडाकार हैण्डैक्स** बनने लगे। इस ऐंठन वाले हैण्डैक्स को बग़ल से देखने पर इसका छोर या किनारा बादामाकार (नोकीले) हैण्डैक्स या साधारण अंडाकार हैण्डैक्स की तरह सीधा नहीं वरन् S की तरह ऐंठा लगता है। इसी कारण इसे S--ऐंठन वाला अंडाकार (ओवेट) हैण्डैक्स कहा जाता है।

हैण्डैक्स (कू-द-पुआँ) संस्कृति के विकसित अंश में एक उपकरण बनाया जाने लगा जिसे हैण्डैक्स की श्रेणी में केवल इसीलिये रखा जा सकता है कि वह द्वितल (बाइफ़ेस) है। इसको **'क्लीवर'** (Cleaver) कहा जाता है। हैण्डैक्स के नोकीले अथवा वक्र कार्यांग के स्थान पर क्लीवर का कार्यांग लगभग सीधा होता है और उपकरण की लंबी धुरी से समकोण-सा बनाता है। यह पहला द्वितल-कोर है जिसका कुल्हाड़ी-समान कार्यांग होता है। क्लीवर का यह चपटा, चौड़ा कुल्हाड़ी जैसा कार्यांग दोनों पृष्ठों पर एक-एक बड़े (प्राथमिक) फ़्लेक के इस तरह निकालने से बना है कि उनके फ़्लेक-चिह्न अतिन्यून कोण बनाते हुए एक-दूसरे से मिलते हैं। बर्किट के मतानुसार मुस्तीरी (Mousterian) संस्कृति में छोटे-छोटे कोर-उपकरण बनाये गये थे। इन उपकरणों का निचला भाग पान की तरह भीतर की ओर मुड़ा रहता है। ऊपर से देखने पर पूरा उपकरण समभुज त्रिकोण (Equilateral triangle) के अंदर बने मानव-हृदय-सा लगता है। इसके किनारे सीधे और पैने होते हैं। वे अंतर्निर्देशित आघात (सोपान-पद) प्रविधि द्वारा बनाये गये हैं जिसके छोटे-छोटे फ़्लेक-चिह्न उपकरण के उभय-पृष्ठ पर चारों ओर देखे जा सकते हैं। बट कभी पैना और कभी भुथरा होता है। इसको **हृदयाकार** (कॉर्डिफ़ार्म=Cordiform) **हैण्डैक्स** कहते हैं। इन सबके अतिरिक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एश्यूली संस्कृति के अंत में जब पतले द्वितल-कोरों की आवश्यकता पड़ी तब उन्हें कोर पर बनाने की अपेक्षा फ़्लेक पर गढ़ा जाने लगा।

ब्रैड्वुड् हैण्डैक्स नामकरण को एक च्युति मानते हैं क्योंकि कुल्हाड़ी का फल नोकीला नहीं होता। इसके अतिरिक्त कुल्हाड़ी हैण्डैक्स की तरह अनेकार्थी (मल्टी-पर्पज़) उपकरण नहीं होता। शायद इस नामकरण का कारण यह हो कि हैण्डैक्स उस कुल्हाड़ी का फल-मात्र था जिसका बेंट (हैण्डिल) मानव-हाथ होता होगा। ऐसा अनुमान है कि गोड़ने के साथ ही यह प्रमुख रूप से काटने तथा छीलने (खुरचने) के काम में लाया जाता होगा। वध करने, काटने तथा टुकड़े-टुकड़े करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता होगा। नोकीला (बादामाकार) हैण्डैक्स विशेष रूप से भोंक कर पशुओं की हत्या करने तथा खाल उतारने के पहले छेद करने के काम आता होगा। किंतु पशुओं का खाल खींचने तथा चमड़ा उतारने के लिये सबसे उपयुक्त उपकरण तो क्लीवर ही रहा होगा इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं होना चाहिये। इसकी पैनी और चौड़ी धार काटने के लिये भी काफ़ी अच्छी होती होगी।

डिस्क (Disk) टेढ़े-मेढ़े किनारों वाला कोर-उपकरण है। इसके उभय-पृष्ठ बेतरतीब फ़्लेक निकालने के कारण संमितीय (सिमेट्रिकल) नहीं होते हैं और उनके मिलने से बनने वाले किनारे भी इसी कारण टढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। देखने में ये उपकरण तश्तरी के समान लगते हैं। कदाचित् इसी कारण इनको डिस्क कहा जाता है। साधारणतः इनका आकार गोल, अंडाकार अथवा वर्गाकार होता है।

कोर-स्क्रेपर (Core-scraper) : स्क्रेपर की मुख्य पहचान उसके कार्यांग का उन्नतोदर (कॉन्वेक्स्) होना है; यद्यपि यह सच है कि नतोदर (कॉन्केव्) स्क्रेपर भी होते हैं। स्क्रेपर का कार्यांग उसके एक पृष्ठ के प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न अथवा निचले सतह पर दूसरे पृष्ठ के कई द्वितीयक फ़्लेक-चिह्नों के मिलने से बनता है। साधारणतः स्क्रेपर फ़्लेक या ब्लेड पर बनाये जाते हैं। किंतु कोर-स्क्रेपर भी पाये जाते हैं। इसको बनाने के लिये भी एक पृष्ठ पर के बड़े प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न का दूसरे पृष्ठ के टेढ़े-मेढ़े द्वितीयक फ़्लेक-चिह्नों से मिलन कराया जाता है। देखने में यह उपकरण एक छोटे कोर-सा लगता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पेबुल-उपकरण (चॉपर/चॉपिग्-उपकरण परंपरा)

प्रागैतिहासिक साहित्य में 'पेबुल' उन पत्थरों को कहा जाता है जो जल-घर्षित होते हैं। यह स्पष्ट है कि पत्थर के ये टुकड़े वर्गाकार अथवा आयताकार न होकर वक्राकार होंगे। इन चिकने पेबुल-कोरों पर/से बनाये गये उपकरणों को पेबुल-उपकरण कहा जाता है। डॉ० लीकी पूर्वी अफ़्रीका के प्राक्-शेलीय (प्री-शेलिअन) ओल्डोवान (Oldowan) एवं काफ़ुआन (Kafuan) उपकरणों को पेबुल-उपकरण कहते हैं और उनको अफ़्रीकी शेलीय संस्कृति के उपकरणों का जनक मानते हैं।[1] किंतु पेबुल-उपकरण के नाम से हम जिस उपकरण-परिवार का यहाँ वर्णन करेंगे उसके सदस्य चीन, ब्रह्मा, उत्तरी-पश्चिमी पाकिस्तान एवं भारत, मलाया तथा जावा में पाये जाने वाली 'पूर्वी' परंपरा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। डॉ० मोविअस् (Movius) इसको चॉपर/चॉपिंग्-उपकरण (चॉपिंगुपकरण) परंपरा (Chopper Chopping-tool tradition) कहते हैं और इस 'पूर्वी' परंपरा को पश्चिमी 'हैण्डैक्स' परंपरा से सर्वथा भिन्न और पृथक् मानते हैं।[2]

पेबुल चॉपर (Pebble chopper) / **पेबुल स्क्रेपर** (Pebble scraper) अथवा चिकने पेबुल-कोर अथवा उससे निकले फ़्लेक पर बने ये उपकरण एक ही पृष्ठ पर, प्रायः कार्यांग की ओर, गढ़े हुए होते हैं। गोलाकार, अर्द्ध-अंडाकार या लगभग सीधा कार्यांग (वकिंग् एण्ड्) एक छोर पर अथवा बगल में बना होता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, ये उपकरण कोर एवं फ़्लेक दोनों पर बने होते हैं। कोर पर बने वृहदाकार उपकरण को पेबुल-चॉपर कहते हैं। पेबुल-स्क्रेपर (पार्श्व कार्यांग वाला) छोटा चॉपर कहा जा सकता है, यद्यपि यह प्रायः फ़्लेक पर बना होता है। प्रो० मोविअस् इन दोनों के पृथक्करण का आकार के अतिरिक्त अन्य कोई सूक्ष्म आधार प्रस्तुत नहीं करते हैं और 'वृहत् स्क्रेपर' ही चॉपर है इस पर अधिक ज़ोर देते हैं। पेबुल चॉपर/स्क्रेपर एकतल (यूनिफ़ेस्) होते हैं।

चॉपिंग्-उपकरण (चॉपिंगुपकरण या Chopping-tool) पेबुल कोर पर

---

१. एल० एस० बी० लीकी (१९५३), एडम्स् ऐन्सेस्टर्स (चतुर्थ संस्करण), मेथुएन ऐण्ड कं० लि०, लंदन, पृष्ठ ६६

२. हेलेम् एल० मोविअस्, जूनिअर (१९४८), द लोअर पैलियॉलिथिक कल्चर्स आव् सदर्न ऐण्ड ईस्टर्न एशिया, ट्रॉन्जैक्शन अमेरिकन फिलॉसाफ़िकल सोसायटी, भाग ३८, अंक ४, वाशिंगटन, पृष्ठ ३५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बना यह उपकरण द्वितल (बाइफ़ेस्) होने के कारण चॉपर/स्क्रेपर से भिन्न होता है। जहाँ चॉपर का कार्यांग वक्र अथवा सीधा होता है वहाँ इसका (चॉपिंगुपकरण का) कार्यांग दोनों पृष्ठों पर, क्रम से, एक-के-बाद-एक फ़्लेक निकालने से बना होता है। या यह कहना अधिक उचित होगा कि अधिकांश उपकरणों में उभय-पृष्ठों पर क्रम से एक के बाद एक निकाले गये फ़्लेक-चिह्नों के मिलने के कारण बना चौड़े डब्ल्यू (W) की आकृति का घुमावदार कार्यांग चॉपिंगुपकरण की प्रमुख विशेषता है।

हैण्ड-ऐड्ज (हैण्डैड्ज़ या Hand-adze) सब चॉपिंगुपकरणों तथा अधिकांश चॉपरों की तरह हैण्डैड्ज़ भी कोर उपकरण हैं। चॉपर के समान हैण्डैड्ज़ भी एकतल (यूनिफ़ेस) उपकरण है। इसका एक पृष्ठ या तो चपटा पेबुल होता है अथवा प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न। दूसरे पृष्ठ के एक छोर पर कुछ द्वितीयक फ़्लेकीकरण द्वारा सीधा, कभी-कभी नोकीला या थोड़ा गोलाकर कार्यांग बना होता है। वर्गाकार अथवा आयताकार उपकरण (हैण्डैड्ज़) का कार्यांग उसकी लंबी धुरी से समकोण बनाता है। बग़ल से देखने पर हैण्डैड्ज़ कुल्हाड़ी के द्वि-उन्नतोदर (<) के स्थान पर फावड़े (ऐड्ज़) के सपाट-उन्नतोदर (<) आकृति का दिखाई पड़ता है।

प्रोटो-हैण्डैक्स (Proto-Handaxe) को फ़्लेक पर बना नोकीला अथवा अंडाकार कार्यांग वाला हैण्डैड्ज़ कहा जा सकता है। बग़ल से देखने पर इसका कार्यांग हैण्डैड्ज़ की तरह सपाट-उन्नतोदर (प्लेनो-कॉन्वेक्स्) दिखता है द्वि-उन्नतोदर (बाइ-कान्वेक्स्) नहीं। निचली सतह या मुख्य फ़्लेक सतह पर गढ़न का कोई चिह्न नहीं दीखता और ऊपरी सतह भी आद्योपांत गढ़ित नहीं होता। 'बट' पर अगढ़ित पेबुल (कॉर्टेक्स्=Cortex) का अंश विद्यमान रहता है। डॉ० मोविअस प्रोटो-हैण्डैक्स को हैण्डैड्ज़ से द्वितल-कोर (हैण्डैक्स) तक विकास के बीच की कड़ी मानते हैं।

टिप्पणी : उत्तर-पश्चिमी भारत और पाकिस्तान के सोहन संस्कृति की विशेषता उनके (सपाट-आधार या Flat-based और गोलाकार या Rounded) पेबुल उपकरणों के कारण है। यह बात तो श्री टी० टी० पैटर्सन (T. T. Paterson) ने १९३९ में ही बतलाई थी। उनको 'पेबुल चॉपिंग् और स्क्रेपिंग् उपकरण' (Pebble chopping and scraping tools)[३] भी सबसे

३. हेलमुट डी टेरा तथा टी० टी० पैटर्सन, (१९३९), स्टडीज़ ऑन आइस एज इन इण्डिया ऐंड एसोशियेटेड् ह्यू मन कल्चर्स्, कार्नेगी इन्स्टिटयूट आव् वाशिंगटन, वाशिंगटन, पृष्ठ ३०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले उन्होंने ही कहा था। किंतु इनको चॉपर/चॉपिंगुपकरण 'पूर्वी' परंपरा के रूप में 'पश्चिमी' हैण्डैक्स परंपरा से पृथक् करने का श्रेय डॉ० मोविअस् को है। चॉपर और चॉपिंगुपकरण में विभेद का आधार उन्होंने उनके कार्य को नहीं (क्योंकि वह एक ही था) बल्कि उनके कार्यांग की आकृति तथा उनके क्रमशः एकतल और द्वितल होने को बनाया। उन्होंने (विशेष रूप से जावा के लिये) चॉपर और चॉपिंगुपकरण से क्रमशः नोकीला हैण्डैक्स तथा अंडाकार हैण्डैक्स का विकास-क्रम बतलाया है। चॉपर से नोकीला हैण्डैक्स हैण्डैड्ज़ और तदुपरांत प्रोटो-हैण्डैक्स होकर विकसित हुआ होगा। इसी प्रकार चॉपिंगुपकरण से अण्डाकार हैण्डैक्स तक की कड़ी को अंडाकार द्वितल चॉपिंगुपकरण (Oval Bifacial Chopping tools) बीच से जोड़ता है।[४]

उषः प्रस्तर (इओलिथ=Eolith) वे संदिग्ध पत्थर-उपकरण हैं जो इंग्लैण्ड में मानव द्वारा बनाये हुए सबसे पुराने उपकरण कहे जा सकते हैं। ये उषःप्रस्तर इंग्लैण्ड के पूर्व एंग्लिया (East Anglia) प्रदेश में प्राक्-क्रैग स्तरों (Pre-Crag) में पाये गये थे। ये प्राकृतिक शक्तियों द्वारा फ़्लेकीकृत पत्थरों से इतने मिलते-जुलते हैं कि अनेक विद्वान इन्हें मानव-निर्मित उपकरण मानने के लिये तैयार नहीं हैं। उषःप्रस्तर प्रमुख रूप से फ़्लेक-उपकरण हैं। ये स्क्रेपर या छिद्रक (ऑल=Awl) के रूप में गढ़े गये हैं। कुछ कोर-उपकरण भी पाये गये हैं। क़िंतु इस उद्योग का सबसे विशेष उल्लेखनीय उपकरण 'रोस्ट्रो-कैरिनेट' (Rostro-carinate) कहा जाता है। यह फ़्लिण्ट का एक टुकड़ा होता है जिसकी एक ऊपरी और एक निचली सतह होती है। ऊपरी सतह उठी हुई तथा निचली सपाट होती है। इस कारण बग़ल से देखने पर यह उपकरण सपाटोन्नतोदर (प्लेनो-कॉन्वेक्स्) दीखता है। यह एक एकतल-कोर उपकरण होता है। इसका कार्यांग नोकीला अथवा चंचु-आकार (बीक्-शेप्ड्) होता है। श्री जे० रीड मॉएर (J. Reid Moir) ने यह मत प्रस्तुत किया था कि द्वितल हैण्डैक्स एकतल रोस्ट्रो-कैरिनेट से उद्विकसित हुए थे। किंतु कम से कम पूर्वी अफ़्रीका के लिये डॉ० लीकी तथा दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के लिये डॉ० मोविअस् ने यह प्रदर्शित किया है कि हैण्डैक्स पेबुल-उपकरण से उद्विकसित हुआ होगा। यूरोप के लिये अभी कोई ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिले हैं।

---

४. मोविअस (१९४८), वही, पृष्ठ ३६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ्लेक-उपकरण

क्रोमेरी (Cromerian) **फ़्लेक :** इंग्लैण्ड के नार्फ़ाक (Norfolk) काउण्टी के क्रोमर (Cromer) नामक स्थान पर कोर से बड़ी सावधानी से निकाले गये काफ़ी बड़े फ्लेक पाये गये हैं। इन फ़्लेकों के आघात-स्थल (स्ट्राइकिंग्-प्लैटफ़ार्म) कृत्रिम रूप से तैयार नहीं किये गये हैं। इन पर पुनर्गढ़न के कोई लक्षण दिखालाई नहीं देते हैं फिर भी कार्यांग काफ़ी पैना है। प्राथमिक फ़्लेक (अर्धशंकु वाली) सतह तथा आघात-स्थल के बीच विषम कोण होता है।

पिछले अध्याय में हम क्लैक्टोन प्रविधि का वर्णन कर चुके हैं किंतु **क्लैक्टोन** (Clacton) **फ़्लेक** की पहचान के लिये उसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं को बतलाना आवश्यक होगा। क्लैक्टोन फ्लेक बनाने के पहले आघात-स्थल को कृत्रिम रूप से तैयार नहीं किया जाता। फ़्लेक-कोण, अर्थात् मुख्य फ़्लेक सतह पर आघात-स्थल के झुकाव का कोण, १२० डिग्री के लगभग होता है। क्लैक्टोन फ्लेक निकालने के लिये स्थिर-हथौड़ा (निहाई) प्रविधि अपनाई जाती रही होगी इसका प्रमाण इसका उभरा हुआ बड़ा संघात का अर्धशंकु है।

लेवलायेज़ (Levallois) **फ़्लेक** वह सुडौल फ़्लेक है जो आकार-प्रकार में ब्लेड से मिलते-जुलते होने पर भी ब्लेडों के बनने के बहुत पहले बनाये गये थे। बड़ी सावधानी से गढ़े गये कोर से बनाये जाने के कारण ही इसको बनाने वाली प्रविधि को गढ़ा (निर्मित) कोर (प्रिपेयर्ड कोर) प्रविधि कहा जाता है। इस प्रविधि में बनने वाले उपकरण का स्वरूप उसके कोर से पृथक् होने के पहले ही गढ़ लिया जाता है। इसी प्रकार कृत्रिम आघात-स्थल भी बड़ी सतर्कता से बनाया जाता है जो अर्धशंकु वाली सतह से सम-कोण बनाता हुआ होता है। इस अंडाकार फ़्लेक की निचली सतह पर छोटा, चिपटा संघात का अर्धशंकु देखा जा सकता है। ऊपरी सतह भी अधिक उभरा हुआ नहीं होता है। उस पर प्राथमिक फ़्लेक-चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी इस फ़्लेक के किनारे द्वितीयक (पुनर्गढ़न) प्रविधि द्वारा सावधानी से गढ़े हुए होते हैं।

पार्श्व-स्क्रेपर (**साइड-स्क्रेपर**=Side-scraper) कई प्रकार के होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किंतु यहाँ हम फ़्लेक पर बने उन स्क्रेपरों का वर्णन करेंगे जो यूरोप की मुस्तीरी संस्कृति के प्रमुख उपकरण थे। इसी कारण इसको **मुस्तीरी स्क्रेपर** (Mousterian scarper) भी कहा जाता है। इसका कार्यांग बग़ल (पार्श्व) में होता है इसलिये इसको पार्श्व-स्क्रेपर नाम दिया गया है। मुस्तीरी पार्श्व (फ़्लेक) स्क्रेपर का कार्यांग भी एक तल के प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न से दूसरे तल के द्वितीयक (पुनर्गढ़न) फ़्लेक-चिह्नों के मिलने से बना होता है। मुस्तीरी (पार्श्व) स्क्रेपर की विशेषता यह है कि इसका उन्नतोदर (कॉन्वेक्स्) कार्यांग सोपान-पद (स्टेप) या मत्स्य-चोइयाँ (फ़िश्स्केल्) द्वितीयक (पुनर्गढ़न) फ़्लेक निकालने से बना होता है।

मध्योभार (मध्य-उभार) स्क्रेपर (कील्ड-स्क्रेपर=Keeled scraper) यह उपकरण फ़्लेक या कोर पर बनाया जाता है। इसका कार्यांग कोर या फ़्लेक के चौड़े अंग की ओर बनाया जाता है। इस छोर पर पतले, छिछले, लंबे फ़्लेक-चिह्न क्रम से निकाले गये हैं। वे कोर या फ़्लेक के मध्य के उभार (कील=Keel) पर वे इस तरह आगे बढ़ते हैं कि उपकरण का यह अंश पंखे की आकृति का सा लगता है। यह उपकरण उच्च पुरापाषाण के ग्रवेतीय (Gravettian) उद्योग में **चंच्वाकार ग्रेवर (बीक्ड् ग्रेवर**=Beaked graver) के साथ पाये गये हैं। ऊपर वर्णित सुन्दर फ़्लेक फ़्लूटिंग् प्रविधि से ही निकाले जा सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि मध्योभार स्क्रेपर का कार्यांग फ़्लूटिंग् प्रविधि से बनाया जाता है।

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि पूर्व पुरापाषाण काल में ही एक ऐसा स्क्रेपर इस्तेमाल किया गया था जो बर्किट की परिभाषा के अनुसार स्क्रेपर कहा ही नहीं जा सकता है। साधारण स्क्रेपर के उन्नतोदर (कॉन्वेक्स्) कार्यांग के ठीक विपरीत उपर्युक्त स्क्रेपर के कार्यांग को दंतरित (नॉच्ड्=Notched) कर नतोदर (कॉन्केव्) बनाया जाता है। साधारण (उन्नतोदर) कार्यांग वाला स्क्रेपर, छीलने, खाल उतारने तथा चमड़ा कमाने के काम में लाया जाता होगा, किंतु **नतोदर (कॉन्केव्**= Concave) **स्क्रेपर** लकड़ी के भाले अथवा गदा के मुठिया को साफ़ और चिकना करने के लिये इस्तेमाल किया जाता होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। कदाचित् इसी उद्देश्य से ही फ़्लेक को एक किनारे पर खोखला कर नतोदर स्क्रेपर बना दिया जाया करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़्लेक-ब्लेड उपकरण

इस शीर्षक के अन्तर्गत् हम उन उपकरणों तथा उपकरण-परिवारों का वर्णन करेंगे जो फ़्लेक और ब्लेड दोनों पर अथवा केवल ब्लेड पर बनाये जाते हैं।

अंत-स्क्रेपर (एण्ड्-स्क्रेपर=End-scraper) : इस उपकरण का कार्यांग (वर्किंग्-एण्ड्) बग़ल या पार्श्व में न होकर एक छोर पर या अन्त में होता है। यह फ़्लेक तथा ब्लेड दोनों पर बनाया जाता है। इसका कार्यांग भी उन्नतोदर होता है जो एक तल पर प्राथमिक फ़्लेक-चिन्ह के दूसरे तल के द्वितीयक फ़्लेक-चिन्हों के मिलने से बनता है। कभी-कभी इस फ़्लेक या ब्लेड के दोनों छोरों पर कार्यांग बना पाया जाता है। ऐसे उपकरण को **द्वयंत-स्क्रेपर (डबल्-एण्डेड् स्क्रेपर)** कहते हैं। ऐसा अनुमान है कि ये स्क्रेपर चमड़ा उतारने, पेड़ की छाल उतारने तथा हड्डी या लकड़ी को खोखला करने आदि के काम में लाया जाता होगा।

कभी-कभी अण्डाकार या गोलाकार फ़्लेक को गढ़ कर चारों ओर कार्यांग बनाया जाता है। इसको **गोलाकार स्क्रेपर (राउण्ड-स्क्रेपर=**Round scraper) कहते हैं। एक दूसरे प्रकार का भी स्क्रेपर होता है जिसे **नासिका-स्क्रेपर (नोज़-स्क्रेपर=**Nose-scraper) कहते हैं। साधारणतः तो यह फ़्लेक तथा ब्लेड पर बनाया जाता है; किंतु कुछ 'कोर' पर भी बने होते हैं। इस उपकरण में कोर, फ़्लेक या ब्लेड के एक छोर के दोनों किनारों पर एक-एक खात (नॉच्) इस सावधानी से बनाये जाते हैं कि बीच में एक निकला हुआ कार्यांग बन जाय। उपकरण के उस छोर पर नासिका की तरह उभरे हुए भाग के कारण ही इसको नासिका-स्क्रेपर कहा जाता है।

भुथरा-पृष्ठ ब्लेड (ब्लंटेड्-बैक ब्लेड=Blunted-back blade), **पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड (बैक्ड-ब्लेड्=**Backed blade) या **नाइफ़-ब्लेड** (Knife blade) फ़्लेक अथवा ब्लेड पर बने ये उपकरण चाकू के बेंट रहित फल के समान हैं। इनका कार्याङ्ग बग़ल (पार्श्व) में एक ओर बना होता है। कार्यांग के ठीक पीछे का भाग पुनर्गढ़न द्वारा भुथरा कर दिया जाता है जिससे उपकरण को पकड़ कर काम करते समय उँगली कट न जाय। यों तो ये उपकरण सारे उच्च पुरापाषाण काल में बनते थे किन्तु ऑरिग्नेशी (Aurignacian)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति में इनका बाहुल्य था। निम्न पुरापाषाण (लोअर् पैलियॉलिथिक) काल के हैंडैक्स (द्वितल-कोर) के समान ही पार्श्व पुनर्गढ़ित ब्लेड परिवार के उपकरणों का भी क्रमबद्ध विकास देखा जा सकता है।

ऑदी (Audi) **नाइफ़-ब्लेड या पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड :** यह एक छोटा फ़्लेक उपकरण है। इसकी निचली सतह मुख्य फ़्लेक (या अर्धशंकु) सतह होती है। ऊपरी सतह पर कई प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न होते हैं। इनमें से एक (किनारे पर वाला) फ़्लेक-चिह्न के निचली (मुख्य फ़्लेक) सतह से मिलने से तेज़ पार्श्व कार्यांग बनता है। समंत-अंत (बट-एण्ड्) कार्यांग के ठीक पीछे वाले पार्श्वांग से छोटे-छोटे फ़्लेक निकाल कर भुथरा बनाया जाता है किंतु ये फ़्लेक चिकने अथवा सक्रम नहीं होते। इस उपकरण का भुथरा (पार्श्व) समंत-अंत (बट-एण्ड्) कार्यांग के समानांतर नहीं वरन् टेढ़ा होता है। इस ओर से उपकरण को उंगली में दबा कर काटने आदि के काम में लाया जाता होगा।

शैटेल्पेरॉन् (Chatelperron) **नाइफ़-ब्लेड या पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड :** यह उपकरण ऑदी नाइफ़-ब्लेड के समान ही होता है। यह उससे छोटा होता है और अधिक सावधानी से बनाया होता है। इसके ऊपरी सतह के प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न कम टेढ़े-मेढ़े होते हैं और समंत-अंत (बट-एण्ड्) भी उतना टेढ़ा नहीं होता जितना कि ऑदी पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड का होता है। शैटेल्पेरॉन् पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड का समंत-अंत (बट-एण्ड्) छोटे-छोटे समानांतर फ़्लेक निकाल कर भुथरा किया जाता है।

ग्रैवेत (Gravette) **नाइफ़-ब्लेड या भुथरा-पृष्ठ ब्लेड अथवा पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड** का ऊपर वाला छोर नोकीला या वर्गाकार होता है। इसका समंत-अंत (बट-एण्ड्) इसके कार्यांग के समानांतरप्राय होता है। इसके ऊपरी सतह के फ़्लेक-चिह्न इसका कार्यांग बनाने वाले फ़्लेक-चिह्न के समानांतर और बहुत सुघड़ होते हैं। पूरा उपकरण ऑदी एवं शैटेल्पेरॉन् पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेडों से बहुत छोटा होता है। बर्किट का यह मत है कि इस उपकरण को हाथ की उंगली में दबाने की अपेक्षा लंबाई की ओर से किसी लकड़ी या हड्डी के बेंट में घुसा कर संग्रथित (कम्पोजिट्) उपकरण की तरह इस्तेमाल किया जाता होगा।

अस्त्राग्र (प्वाइंट्स्=Points**)** : ये उपकरण भाले, बर्छी, तीर आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आखेट-अस्त्रों के अग्रभाग के रूप में इस्तेमाल किये जाते होंगे, ऐसा अनुमान है। इसी कारण इनको अस्त्राग्र (प्वाइंट्स्) कहा जाता है।

मुस्तीरी अस्त्राग्र (Mousterian points): अन्य प्रमुख मुस्तीरी उपकरणों के समान ही यह भी फ़्लेक पर बनाया जाता है। इसका समंत-अंत (बट-एण्ड्) अर्धशंकु वाला छोर होता है जहाँ कभी-कभी कृत्रिम आघात-स्थल का अंश दिखाई पड़ता है। निचली सतह मुख्य फ़्लेक सतह होती है। ऊपरी सतह पर प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न देखे जा सकते हैं। इस उपकरण का कार्यांग बनाने के लिये पुनर्गढ़न द्वारा छोटे-छोटे फ़्लेक, अर्धशंकु वाले अंत (समंत-अंत) के ठीक विपरीत दूसरे छोर से, उपकरण के दोनों तलों से, निकाले जाते हैं। कभी-कभी तो इस प्रकार का पुनर्गढ़न पूरे उपकरण पर किया होता है। इससे ऊपरी तल के प्राथमिक फ़्लेक-चिह्न दिखाई पड़ते हैं। मुस्तीरी अस्त्राग्र पर पुनर्गढ़न सोपान-पद (स्टेप) अथवा सबंध (अंतर्निर्देशित-आघात) प्रविधि द्वारा की जाती है। कभी-कभी इन मुस्तीरी अस्त्राग्रों में एक पूँछ भी होती है। ऐसे उपकरणों को पुच्छल मुस्तीरी अस्त्राग्र (Tanged Mousterian point) कहते हैं।

एकस्कंध अस्त्राग्र (सिंगिल् शोल्डर्ड प्वाइंट्=Single shouldered point) यह ब्लेड उपकरण उच्च पुरापाषाण संस्कृतियों में बनाया जाता था। एक लंबा ब्लेड लेकर उसका एक छोर नोकीला कार्यांग के रूप में गढ़ा जाता है। इसके दूसरे छोर पर एक किनारे द्वितीयक फ़्लेकीकरण द्वारा एक खोखला बनाया जाता है जो उपकरण को एक स्कंध का स्वरूप प्रदान करता है। यह उपकरण यूरोप के उच्च पुरापाषाण युगीन ऑरिग्नेशी (Aurignacian) संस्कृति में बनाये गये थे। किंतु उसके परवर्त्ती सॉल्यूत्री (Solutrean) संस्कृति में इनका आधिक्य था। सॉल्यूत्री एकस्कंध अस्त्राग्र की एक विशेषता यह है कि इसका पुनर्गढ़न (रीटचिंग्) निपीड (दबाव) प्रविधि से किया जाता था। कभी-कभी उपकरण के दोनों तलों पर और विशेष रूप से ऊपरी सतह पर आद्योपांत द्वितीयक फ़्लेकीकरण देखा जा सकता है।

फ़ाण्ट रॉबर्ट अस्त्राग्र (Font Robert point) **या द्विस्कंध अस्त्राग्र (डबल् शोल्डर्ड प्वाइंट्**=Double shouldered point): यह ब्लेड उपकरण यूरोपीय ऑरिग्नेशी संस्कृति के अन्तिम चरण में बनाया गया था। उस उपकरण के फ़ाण्ट रॉबर्ट उद्योग में बनाये जाने के कारण ही इसको फ़ाण्ट रॉबर्ट अस्त्राग्र भी कहा जाता है। यह उपकरण सॉल्यूत्री संस्कृति में नहीं बनाया जाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। इसके कार्यांग के नीचे वाले तल पर बारीकी से किये गये पुनर्गढ़न के प्रमाण मिलते हैं। समंत-अंत (बट-एण्ड्) को दोनों किनारों से दो खातले (नॉच) बनाते हुए गढ़ने के कारण दो स्कंध बनते हैं। स्कंध के नीचे वाले लम्बे भाग को लकड़ी आदि से जोड़ कर पूरा अस्त्र बनाया जाता होगा।

लॉरेल लीफ़ अस्त्राग्र (Laurel leaf point) **और विलो लीफ़ अस्त्राग्र** (Willow leaf point) : इनमें से छोटे आकार वाले उपकरण भाले या तीर की नोक का काम देते होंगे। कुछ उपकरण अपेक्षाकृत अधिक लम्बे हैं। उनके सम्बन्ध में प्रो० ब्रैडवुड् की राय है कि वे हाथ में पकड़ कर चाक़ू या कटार की तरह इस्तेमाल किये जाते होंगे।[५] वे ब्लेड, जिन पर ये उपकरण बनाये जाते हैं, संघात द्वारा ही निकाले जाते होंगे। किन्तु उनको उनका अन्तिम स्वरूप आद्योपांत पुनर्गढ़न द्वारा प्रदान किया जाता होगा। इन विशेष सॉल्यूत्री (Solutrean) उपकरणों पर द्वितीयक फ़्लेकीकरण निपीड (दबाव) प्रविधि द्वारा किया गया है। लॉरेल पत्ती की आकृति का और उसी के समान पतला होने के कारण इसको यह नाम दिया गया है। यों तो इसके दोनों छोर नोकीले होते हैं किन्तु कार्यांग कुछ अधिक नोकीला होता है। दोनों तलों पर लम्बे, पतले और समानान्तर किनारे वाले फ़्लेक निकाले जाने के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। प्रायः सभी प्रागितिहासज्ञ, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह मानते हैं कि ये फ़्लेक निपीड (दबाव) प्रविधि से निकाले गये होंगे। किन्तु बृटिश् म्यूज़ियम के श्री केनेथ ओक्ली (Kenneth P. Oakley) का यह मत है कि ये सॉल्यूत्री अस्त्राग्र अप्रत्यक्ष संघात (इन्डाइरेक्ट पर्कशन) द्वारा पुनर्गढ़ित किये जाते होंगे क्योंकि फ़्लिंट पत्थर पर निपीड (दबाव) प्रविधि द्वारा आधे इंच से अधिक लंबे फ़्लेक नहीं निकाले जा सकते हैं।[६] बर्किट् ने विलो लीफ़ अस्त्राग्र के लॉरेल लीफ़ अस्त्राग्र से भिन्नता का आधार उसके केवल एक ही तल पर पुनर्गढ़ित होने को बताया है।[७] इसके अतिरिक्त विलो लीफ़ में इस एक ही पुनर्गढ़ित तल पर भी

---

५. रॉबर्ट जे० ब्रैड्वुड (१९४८), प्रीहिस्टारिक मेन्, शिकागो नैचुरल हिस्ट्री म्यूजियम, शिकागो पृष्ठ ६५.

६. के० पी० ओक्ली, (१९५६), मैन् द टूल मेकर, तृतीय संस्करण, बृटिश म्यूज़ियम, लंदन, पृष्ठ २९.

७. एम० सी० बर्किट, (१९५५), द ओल्ड स्टोन एज, तृतीय संस्करण, बोज़ ऐण्ड् बोज़, लन्दन, पृष्ठ ७४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुनर्गढ़न केवल किनारों पर ही होता है। ब्रैड्वुड् की राय में कुछ विलो लीफ़ अस्त्राग्र एकस्कंध वाले होते हैं और उनके एक पूँछ भी होती है।[८]

ग्रेवर (Graver) या **ब्यूरीन** (Burin) : यह उपकरण साधारणतः फ़्लेक अथवा ब्लेड पर बनाया जाता है। द्वितीयक (सेकेण्ड्री) फ़्लेकीकरण में उपकरण को क्षैतिज (हॉरिज़ाण्टल्) रख कर उदग्र (वर्टिकल्) आघात किया जाता है। पिछले अध्याय में इस नियम के एक अपवाद की चर्चा की गयी थी। ग्रेवर-गढ़न के लिए फ़्लेक या ब्लेड को उदग्र रख कर उदग्र (वर्टिकल्) दिशा में ही लंबाई की ओर आघात किया जाता है। इस आघात के फलस्वरूप एक तिरछा फ़्लेक, फ़्लेक या ब्लेड के शीर्ष-भाग से, निकल जाता है जिसके अर्धशंकु का चिन्ह तक ग्रेवर पर देखा जा सकता है। इस फ़्लेक के निकलने से जो फ़्लेक-चिन्ह बनता है उसे **ग्रेवर-मुख (ग्रेवर फ़ैसेट्**=Graver facet) कहा जाता है। बर्किट् ग्रेवर-मुख को ग्रेवर की मुख्य पहचान मानते हैं।[९] इसके कार्यांग का अर्धांश तो ग्रेवर-मुख बनाता है। इसके दूसरी ओर एक या अधिक मुख बनाये जाते हैं। ग्रेवर या ब्यूरीन के प्रकार-विभाजन (टाइपॉलॉजी) का एक आधार ग्रेवर-मुख (ग्रेवर-फ़ैसेट्) के दूसरी ओर गढ़े गये मुख या द्वितीयक फ़्लेक-चिन्ह हैं। **साधारण (ऑॅडिनरी**=Ordinary) **ग्रेवर** में कार्यांग के दूसरी ओर एक या अधिक स्वच्छ फ़्लेक निकाले जाते हैं। जब ग्रेवर मुख के दूसरी ओर केवल एक फ़्लेक-चिन्ह रहता है तो इस साधारण ग्रेवर को **बेक्-द-फ़्लूत** (Bec-de-flute) कहा जाता है। जब ग्रेवर-मुख के पीछे एक ही समक्षेत्र (प्लेन) में एक से अधिक फ़्लेक निकाल कर कार्यांग बनाया जाता है तो उस साधारण ग्रेवर को **एक-समक्षेत्री (सिंगिल् फ़ैसेटेड्**=Single faceted) साधारण ग्रेवर कहा जाता है। दो ओर से फ़्लेक निकालने पर **द्वि-समक्षेत्री (डबल् फ़ैसेटेड्**=Double facetted) **साधारण ग्रेवर** बनता है। **कोण (ऐंगिल्**=Angle) **ग्रेवर** की मुख्य पहचान ग्रेवर-मुख के दूसरी ओर एक पुनर्गढ़ित मुख की विद्यमानता है। पुनर्गढ़न छोटे-छोटे फ़्लेक निकाल कर किया जाता है। जब यह पुनर्गढ़ित मुख फ़्लेक या ब्लेड की लंबी धुरी से समकोण बनाता है तो उस उपकरण को **अनुप्रस्थ (ट्रान्स्वर्स**=Transverse) **कोण ग्रेवर** कहा जाता है। अनुप्रस्थ कोण ग्रेवर सीधा या नतोदर पुनर्गढ़ित मुख के सीधा या नतोदर होने के अनुसार होता है। इसी तरह **वक्र (ऑब्लीक्**=Oblique) **कोण ग्रेवर** उसे कहा

८. रॉबर्ट जे० ब्रैड्वुड्, (१९४८), वही, पृष्ठ ६५.

९. बर्किट, (१९५५), वही, पृष्ठ ६३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता है जिसका पुनर्गढ़ित मुख उपकरण की लंबी धुरी पर कोण बनाता हुआ झुका होता है। वक्र कोण ग्रेवर अपने पुनर्गढ़ित मुख की आकृति के अनुसार सीधा, नतोदर अथवा उन्नतोदर होता है। कभी-कभी बीच से टूटा हुआ फ़्लेक या ब्लेड अथवा लंबा नोकीला फ़्लेक भी ग्रेवर बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस पर उपकरण का ग्रेवर-मुख एक ही आघात में बनाया जाता है। दूसरे फ़्लेक आदि नहीं निकाले जाते हैं। इस ग्रेवर को **एक-आघात (सिंगिल् ब्लो**=Single blow) ग्रेवर कहा जाता है।

ग्रेवर का दूसरा प्रमुख प्रकार-विभाजन उपकरण के कार्यांग की आकृति और बनावट के अनुसार किया जाता है। ऊपर वर्णित सभी ग्रेवर **पेंचकस (स्क्रू-ड्राइवर**=Screw-driver) **ग्रेवर** प्रकार के उप-प्रकार कहे जा सकते हैं। यह तो स्पष्ट है कि पेंचकस ग्रेवर नाम कार्यांग के पेंचकस की आकृति का होने के कारण है। इसी श्रेणी (कार्यांग के बनावट और आकृति के अनुसार) में ग्रेवर का दूसरा प्रकार **गोल रुख़ानी (गूज या गाउज**=Gouge) की तरह कार्यांग वाला होता है। इस प्रकार से ग्रेवर-मुख बनाने के लिए निकाले गये फ़्लेक के अर्धशंकु का चिन्ह अपेक्षाकृत गहरा होता है। इस अर्धशंकु के चिन्ह (निगेटिव् बल्ब आव् पर्कशन) के एक ओर उस फ़्लेक-चिन्ह की, जिसमें यह अर्धशंकु होता है, ढलान होती है। कार्यांग के किनारे को काटने योग्य तेज़ बनाने के लिए तीन ओर कई फ़्लेक निकाले जाते हैं। सबसे अधिक उल्लेखनीय ग्रेवर वह है जिसका कार्यांग गोल रुख़ानी की आकृति का न होकर चोंच की तरह आगे निकला रहता है। इसका मुख्य ग्रेवर-मुख एक अपेक्षाकृत बड़ा द्वितीयक फ़्लेक-चिन्ह होता है। इसे काफ़ी नीचे तक जाने से रोकने के लिए फ़्लेक या ब्लेड या ब्लेड के एक किनारे पर मध्य में एक खात (नॉच) बना होता है। ग्रेवर-मुख के दूसरी ओर एक ही समक्षेत्र (प्लेन) में कई पतले लंबे, समानान्तर फ़्लेक-चिन्ह देखे जा सकते हैं। ये बड़ी सावधानी से बने होते हैं और उपकरण को बहुत सुन्दर बनाते हैं। विशेषज्ञों का मत है कि इस उपकरण को बनाने के लिए फ़्लूटिंग् प्रविधि का उपयोग किया गया होगा। इस उपकरण को **चञ्चवाकार ग्रेवर (बीक्ड् ग्रेवर**=Beaked graver) कहा जाता है।

कुछ ग्रेवर कोर पर भी बनाये जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

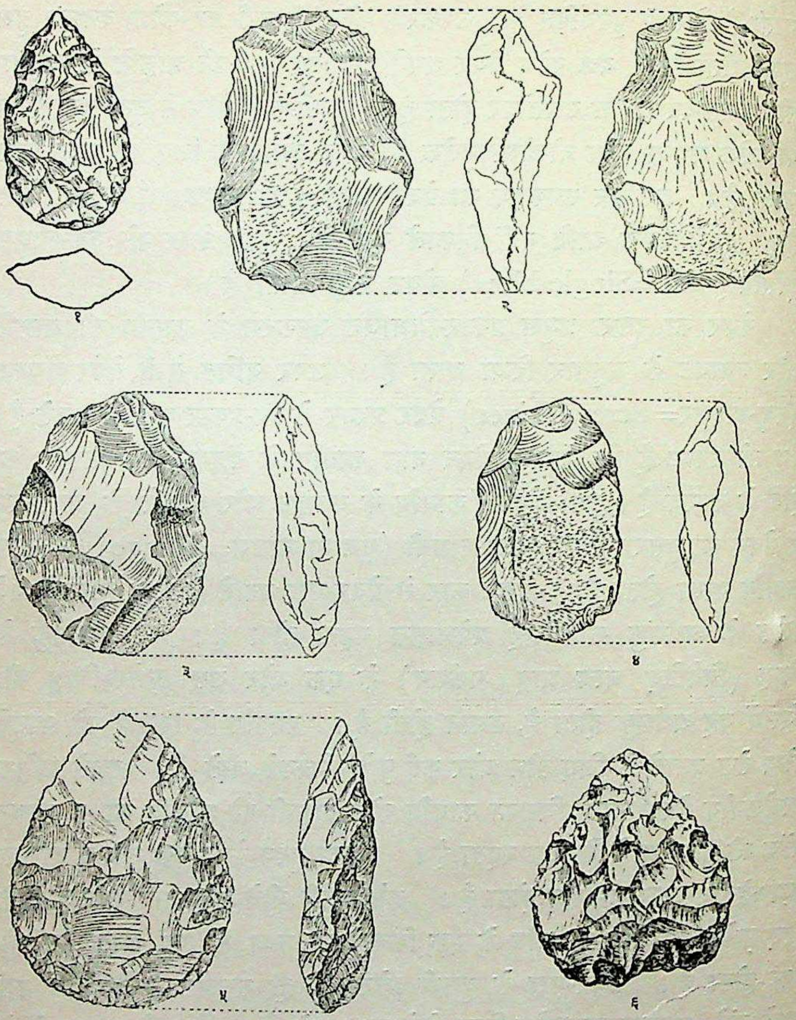

(कृष्णस्वामी, बर्किट तथा लीकी के आधार पर)

चित्र संख्या १ : हैण्डैक्स अथवा द्वितल 'कोर' उपकरण

१. बादामाकार (नोकीला) हैण्डैक्स ; २. क्लीवर ; ३. एवं ४. अण्डाकार हैण्डैक्स ; ५. एस्-ऐंठन वाला बादामाकार हैण्डैक्स ; ६. हृदयाकार हैण्डैक्स ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

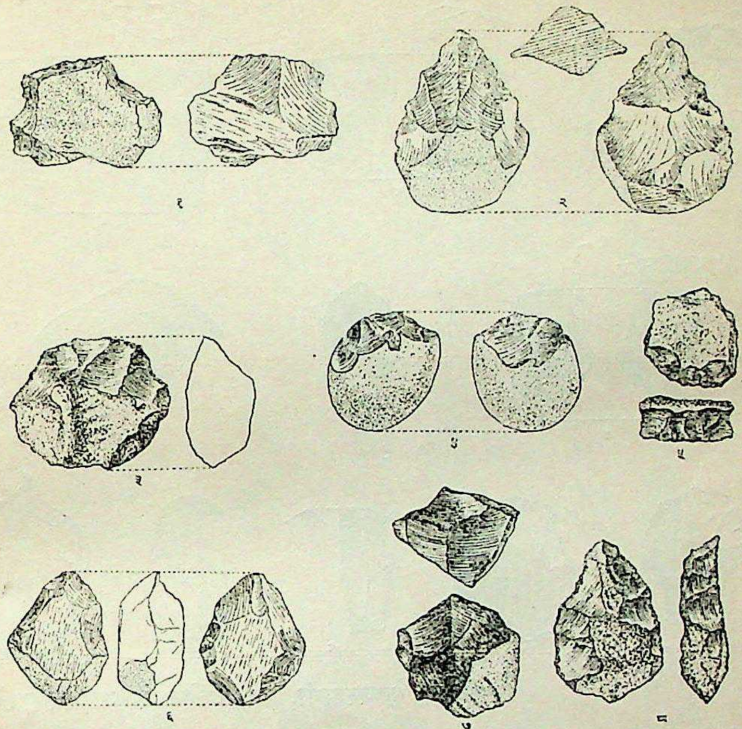

(कृष्णस्वामी तथा मोविअस के आधार पर)

चित्र संख्या २ : 'पेबुल' उपकरण

१. पेबुल चॉपर / स्क्रेपर अथवा चपटा-आधार पेबुल-उपकरण ; २. एवं ३. पेबुल चॉपर/स्क्रेपर ; ४. पेबुल चॉपर अथवा गोलाकार पेबुल-उपकरण ; ५. (पेबुल) हैंण्डैड्ज़ ; ६. तथा ७. पेबुल चॉपिंगुपकरण ; ८. (पेबुल) प्रोटो-हैण्डैक्स ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

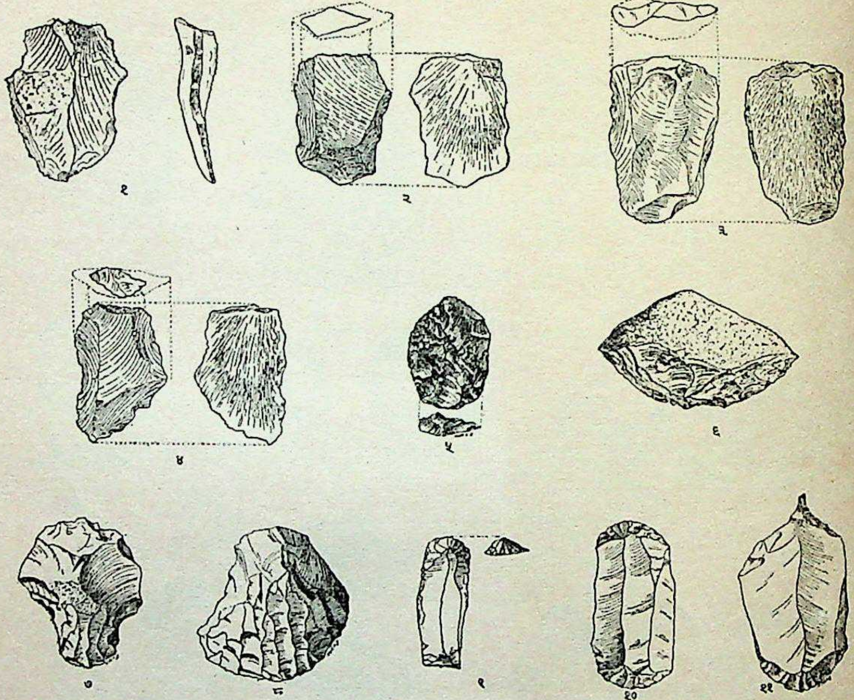

(ओक्ली, कृष्णस्वामी, तथा बर्किट के आधार पर)

चित्र संख्या ३ : फ्लेक उपकरण तथा स्क्रेपर

१. क्लैक्टोन फ़्लेक ; २. आद्य-लेवलाएज़ फ़्लेक ; ३. एवं ४. लेवलाएज़ फ़्लेक ; ५. कृत्रिम आघात-स्थल वाला फ़्लेक ;

६. मुस्तीरी पार्श्व-स्क्रेपर ; ७. नासिका-स्क्रेपर ; ८. मध्योभार स्क्रेपर ; ९. अंत-स्क्रेपर ; १०. द्व्यंत स्क्रेपर ; ११. अंत स्क्रेपर एवं छिद्रक ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

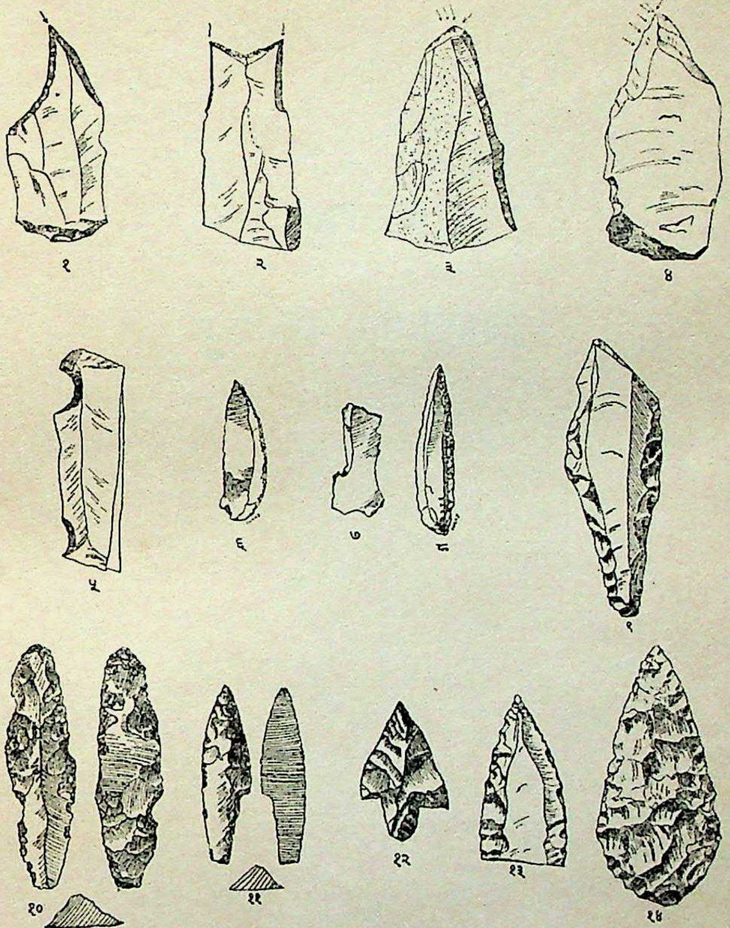

(ओक्ली तथा बर्किट के आधार पर)

चित्र संख्या ४ : ब्यूरीन (ग्रेवर), अस्त्राग्र तथा नाइफ़ ब्लेड

१. वक्रनतोदर कोण ग्रेवर ; २. द्वि-अनुप्रस्थ-नतोदर कोण ग्रेवर ; ३. बहुपहल ग्रेवर ; ४. चंच्वाकार ग्रेवर ; ५. दंतरित ब्लेड ; ६. शैटेल्पेरान् नाइफ ब्लेड ; ७. ग्रैवेत ग्रेवर ; ८. ग्रैवेत नाइफ ब्लेड ; ९. फ़ॉण्ट राबर्ट अस्त्राग्र एवं ग्रेवर ; १०. आद्य-साल्यूत्री अस्त्राग्र ; ११. साल्यूत्री एकस्कंध अस्त्राग्र ; १२. साल्यूत्री तीर-अग्र ; १३. विलोलीफ भाला-अग्र ; १४. लारेल लीफ़ भाला-अग्र ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खण्ड २

यूरोपीय प्रागितिहास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

यूरोपीय पुरापाषाण और आदियुगीन वन्यता (१)

एक शताब्दी पूर्व, १८५९ ई० में, चार्ल्स डार्विन की पुस्तक 'ओरिजिन आव् स्पिशीज़' प्रकाशित हुई थी। उनके प्रांगिक उद्‌विकास (ऑर्गेनिक इवोल्यूशन) के सिद्धान्त ने सभी प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययनों को एक नई गति और एक नई मोड़ दी। प्रागैतिहासिक अध्ययन के इतिहास में १८५९ ई० का अपना ही महत्त्व है। वैसे तो बूशर-द-पर्थे (Boucher-de-Perthes) ने फ़्रांस के मेन्शेकूग् (Menchecourt) नामक स्थान में १८४१ ई० में ही कुछ गढ़े फ़्लिण्ट पाये थे। १८४६–४७ ई० में प्रकाशित अपने दो ग्रन्थों में उन्होंने इन गढ़े फ़्लिण्टों को मानव-निर्मित उपकरण माना। १८५३ ई० में डॉ० रिग्लॉ (Rigolot) ने सेण्ट एश्यूल (St. Acheul) में वैसे ही उपकरण पाये। ये दोनों स्थान फ्रांस में हैं। किन्तु १८५९ ई० में जब जगत्-प्रसिद्ध भूतत्त्वविद डॉ० हग् फ़ाक्नर (Dr. Hugh Falconer), सर जॉसेफ़ प्रेस्विच (Sir Joseph Prestwich) तथा सर जॉन इवान्स (Sir John Evans) ने ब्रिटेन की रॉयल सोसायटी के समक्ष श्री बूशर-द-पर्थे की खोज का महत्त्व स्वीकार किया, तभी सर जॉन इवान्स को यह पता चला कि इङ्गलैण्ड में ही १७९७ ई० में श्री जे० फ्रेअर (J. Frere) ने हॉक्सन (Hoxne) में तथा उनसे भी पहले १६९१ ई० में ग्रेज़ इन्न लेन लंदन में श्री कोन्येर्स (Conyers) ने वैसे ही उपकरण पाये थे।

इन इक्के-दुक्के प्रस्तर-उपकरणों के असंबद्ध परीक्षण के स्थान पर मानव-इतिहास की पृष्ठभूमि (प्रागितिहास) के सम्यक्, संबद्ध, सक्रम एवं सुव्यवस्थित अध्ययन के क्षेत्र में सर जॉन लुबॉक (Sir John Lubbock,), जो बाद में लार्ड एवेबरी (Lord Avebury) के नाम से जाने गये, का योगदान नगण्य नहीं माना जायगा। १८६५ ई० में पाषाण युग को **पुरापाषाण** (Palaeolithic: Palaeo=पुरा ; Lithos=पाषाण या पत्थर) तथा **नवपाषाण** (Neolithic : Neo=नव; Lithos=पाषाण या पत्थर) युगों में विभाजित करने का उनका सफल प्रयत्न इस बात का प्रतीक माना जाना चाहिये कि मानव का अध्ययन करने वाले विषयों में प्रागितिहास भी अपना समुचित स्थान बना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा था। प्रागितिहास के अध्येता फ़्रांसीसी पुरातत्त्वविद् गैब्रिअल द मार्तिले (Gabriel de Mortillet) को नहीं भुला सकेंगे। उन्होंने पुरापाषाण युग की संस्कृति के पाँच स्तम्भ बताये। इन स्तरों (स्तंभों) का नाम उन्होंने उन स्थानों के नाम पर रखा जहाँ इन स्तरों के परिचयात्मक उपकरण पाये गये थे। अध्यारोहण विधि (लॉ आव् सुपर्पोज़िशन्) के अनुसार वे निम्नलिखित क्रम में रखे जा सकते हैं:—

५. **मैग्दलेनी** (Magdalenian) : सुन्दर फ़्लिट-फ़्लेक तथा अस्थि उपकरण जो फ़्रांस के डार्डोन (Dordogne) प्रदेश की 'मैदेलीन (Madeleine) की गुफ़ा' में पाये गये।

४. **सॉल्यूत्री** (Solutrean) : पत्ते की आकृति के उपकरण जो बड़ी सुन्दरता से गढ़े गये हैं। ये फ़्रांस के सा्ल्यूत्र (Solutre) नामक स्थान में पाये गये।

३. **मुस्तीरी** (Mousterian) : एक ही तल पर गढ़े गये फ़्लिण्ट जो मुस्तियर (Moustier) नामक स्थान के चट्टान की खोह (रॉक-शेल्टर) में पाये गये।

२. **एश्यूली** (Acheulean) : सेण्ट एश्यूल (St. Acheul) नामक फ़्रांसीसी स्थान में पाये गये हैण्डैक्स।

१. **शेलीय** (Chellean) : बड़े और आंशिक रूप से गढ़े गये हैण्डैक्स जो फ़्रांस के शेले-सूर-मग्न (Chelles-sur-Mergne) नामक स्थान पर पाये गये। १८७९ ई० में तैयार किया गया यह ढाँचा थोड़े से परिवर्तनों के बाद आज भी सर्वमान्य है। या यह कहना चाहिए कि नब्बे वर्ष के प्रागैतिहासिक शोध (रिसर्च) पर भी इस ढाँचे को, कम से कम यूरोप, पश्चिमी एशिया और अफ़्रीका के लिए अनुपयुक्त नहीं ठहराया जा सका है। इस ढाँचे में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन १९०६ ई० में सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी प्रागितिहासज्ञ एबे ब्रीयुल (Abbe Breuil) ने किया। उन्होंने मुस्तीरी संस्कृति के बाद और सॉल्यूत्री संस्कृति के पहले ऑरिग्नेशी (Aurignacian) संस्कृति की विद्यमानता निश्चित रूप से प्रमाणित की।

उषःप्रस्तर (इओलिथ=Eolith) : उपर्युक्त पुरापाषाणयुगीन संस्कृतियाँ प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में हुई थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में ही ऐसे लोगों का अभाव नहीं था जो शेलीय-पूर्व मानव-गढ़ित उपकरणों की आयु अतिनूतन (प्लाइओसीन्) या कभी-कभी मध्यनूतन (माओसीन्) या आदिनूतन (ओलिगोसीन्) निर्धारित करते थे। १८६७ ई० में ही एबे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्यूर्ज़िओ (Abbe Bourgeois) ने थने (Thenay) नामक गाँव में मिले गढ़े हुए कुछ फ़्लिण्ट के टुकड़ों को उच्च आदिनूतन (अपर् ओलिगोसीन्) काल का बताया। स्पेन में मैड्रिड के निकट कैण्टल (Cantal) से श्री रामेज़् (Rames) ने वैसी ही चीज़ें १८७७ ई० में पाई जिन्हें उन्होंने मध्यनूतन (माओसीन्) कालीन कहा। इसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे प्रसिद्ध तथाकथित उषःप्रस्तर (इओलिथ) उस शताब्दी के अन्तिम वर्ष, अर्थात् १८९९ ई०, में श्री बेञ्जामिन हैरिसन (Benjamin Harrison) ने इङ्गलैण्ड के केण्ट (Kent) काउण्टी के इग्थम (Ightham) नामक स्थान के निकटवर्ती पठारी प्रदेश से खोद कर निकाला। सर जॉसेफ़ प्रेस्विच इनको उषःप्रस्तर मानते थे; किन्तु सर जॉन इवान्स के मतानुसार ये केण्टी पत्थर मानव-गढ़ित नहीं थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शेलीय-पूर्व पत्थरों के मानव-गढ़ित होने के सबसे बड़े समर्थक श्री रयूता (Rutot) थे। १९०२ ई० में उन्होंने शेलीय-पूर्व संस्कृति के आठ उपांग बताये जिनकी शृंखला मध्य आदिनूतन (मिडिल ओलिगोसीन्) से आरंभ होकर प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) तक चलती रही थी। किन्तु बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में तत्कालीन प्रमुख प्रागितिहासिज्ञों में से अधिकांश—जिनमें बूल (Boule) तथा ब्रीयुल (Breuil) भी सम्मिलित थे—इन तथाकथित उषःप्रस्तरों को मानव-गढ़ित मानने के लिए तैयार नहीं थे।

इन शेलीय-पूर्व पत्थरों को मानव-गढ़ित उषःप्रस्तर सिद्ध करने का नया आन्दोलन इङ्गलैण्ड के श्री जे० रीड मॉयर (J. Reid Moir) ने १९१० ई० में आरम्भ किया। उन्हें ईस्ट ऐङ्गलिया (East Anglia) के इप्स्विच (Ipswich) नामक स्थान पर कुछ पत्थर मिले जो शायद छेदने और छीलने के काम में लाये जाते होंगे। इनके अतिरिक्त एक नये प्रकार के फ़्लिण्ट पाये गये। उल्टी नाव की तरह इनका एक तल तो सपाट होता है और दूसरे तल में नाव के पेंदे की तरह मध्योभार (कील=Keel) होता है। इसी कारण सर ई० रे लैङ्केस्टर (Sir E. Ray Lankester) ने इन्हें 'रोस्ट्रो-कैरिनेट' (Rostrocarinate) नाम दिया। वे इन्हें तथा अन्य तथाकथित उषःप्रस्तरों को मानव-निर्मित उपकरण मानते थे। किन्तु सोलास (Sollas) और बूल एवं ब्रीयुल इनको भी प्रकृति फ़्लेकीकृत ही मानते थे। इतने पर भी हतोत्साहित न होकर श्री रीड मॉयर अपना शोध करते रहे। १९१९ ई० में इप्स्विच के पास ही फ़ाक्सहॉल (Foxhall) नामक स्थान पर सोलह फ़ीट की गहराई पर एक स्तर में उन्हें उबालने के बर्तन, जले फ़्लिट, हड्डियाँ, तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़्लिट उपकरण मिले जो छेदने और छीलने के काम में आते होंगे। ब्रीयुल ने इङ्गलैण्ड आकर उन उपकरणों का परीक्षण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे मानव-निर्मित हैं। बर्किट भी उषःप्रस्तर (इग्रालिथ) शब्द उन्हीं पत्थरों के लिए इस्तेमाल करने के पक्ष में हैं जो मानव-निर्मित हों। इंग्लैण्ड के ये उषःप्रस्तर जो, 'रोस्ट्रो-कैरिनेट' के कोर-उपकरण होने पर भी, मुख्यतः फ़्लेक-उपकरण हैं वहाँ पर शेलीय उद्योग से पहले पाये गये हैं। पुराने अनुमान से वे अतिनूतन (प्लाइग्रोसीन्) में गढ़े गये होंगे। किंतु प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के अन्तर्गत 'विलाफ्रेंचिग्रन पशुवर्ग' को भी सम्मिलित कर लेने के बाद इन (उषःप्रस्तरों) के प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में बनाये जाने में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। उपर्युक्त वर्णन का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि जहाँ-जहाँ शेलीय प्रकार के उपकरण पाये गये हैं वहाँ-वहाँ उनके पहले उषःप्रस्तर अवश्य ही बनाये गये होंगे। पुरापाषाण के अन्तर्गत सम्मिलित न किये जाने पर भी यह उसके अध्ययन की समुचित पृष्ठभमि के रूप में महत्त्वपूर्ण है। इन उपकरणों को प्राक्-शेलीय (Pre-Chellean) न कह कर उषःप्रस्तर कहना ही अधिक उचित होगा।

प्राक्-शेलीय (Pre-Chellean) **या प्राक्-एबेवीली** (Pre-Abbevilian) **या क्रोमेरी** (Cromerian) असंदिग्ध मानव-निर्मित प्राक्-शेलीय उपकरण इङ्गलैण्ड में नॉर्फ़ाक (Norfolk) के क्रोमर (Cromer) के तटवर्ती स्थान में पाये गये थे। ये उपकरण तथाकथित क्रोमर वन-स्तर (Cromer Forest Bed) में पाये गये। यह क्रोमर वन-स्तर क्रैग स्तर (जिसके नीचे इग्रालिथ या उषः-प्रस्तर पाये गये थे) के ऊपर जमा था। डॉ० लीकी का अनुमान है कि क्रोमर वन-स्तर के जमा होने के समय जलवायु गर्म और आर्द्र रही होगी और यह काम प्रागुपांतिम (गुंज़-मिण्डेल्) हिमप्रत्यावर्तन काल में हुआ होगा।[1] इस क्रोमेरी (Cromerian) उद्योग के प्रमुख और मुख्य उपकरण विशालकाय फ़्लेक हैं। क्रोमेरी फ़्लेक का आघात-स्थल अकृत्रिम और उसका फ़्लेक-कोण विषम होता है। बर्किट कई प्रागितिहासज्ञों के इस मत से सहमत नहीं हैं कि ये फ़्लेक-उपकरण नहीं बल्कि परित्यक्त अवशेष-मात्र हैं।[2] यद्यपि क्रोमेरी फ़्लेक-उपकरण-प्रधान उद्योग है किन्तु एकाध कोर उपकरण भी

---

१. लीकी, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ६८
२. बर्किट, (१९५५), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ११३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसी स्तर में पाये गये हैं जहाँ फ़्लेक-उपकरण मिले हैं। कुछ विद्वान इनको हैण्डैक्स संस्कृति के उपकरणों का अग्रणी मानते हैं। किन्तु लीकी इस मत को उसी तरह अस्वीकार करते हैं जिस प्रकार वे क्रोमेरी फ़्लेकों को क्लैक्टोन फ़्लेकों का जनक मानने के लिए तैयार नहीं हैं।[3] यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जब यूरोप के प्राक्-शेलीय उपकरण फ़्लेक-उपकरण हैं वहाँ अफ़्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया में वे पेबुल-उपकरण हैं। अन्य क्षेत्रों में निम्न प्रातिनूतन (लोअर प्लाइस्टोसीन्) काल के प्राक्-शेलीय प्रकार के उपकरणों के सम्बन्ध में अभी बहुत कम मालूम है।

निम्न (लोअर्) तथा मध्य (मिडिल्) पुरापाषाण (पैलियालिथिक)

प्रागैतिहासिक अध्ययन के इतिहास में एक ऐसा भी समय था जब पुरापाषाण का निम्न, मध्य और उच्च उपविभाग उनमें क्रमशः कोर-उपकरणों, फ़्लेक-उपकरणों और ब्लेड-उपकरणों के ही पाये जाने के आधार पर किया जाता था। सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी प्रागितिहासज्ञ ब्रीयुल ने 'समानान्तर परंपरा संबोध' (पैरेलेल् फ़ाइला कॉन्सेप्ट्) प्रस्तुत कर निम्न पुरापाषाणकाल में क्लैक्टोनी-लेवलायेज़ी फ़्लेक-परंपरा तथा एबेवीली-एश्यूली कोर-द्वितल परंपरा को एक दूसरे से स्वतंत्र और समानान्तर बताया। क्षेत्रीय साक्षियाँ न उपलब्ध होने पर भी प्रायः अधिकांश प्रागितिहासज्ञ इस संबोध को मान्यता प्रदान करते हैं।[4] इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि द्वितल-कोर-उपकरण परंपरा (एबेवीली-एश्यूली) में फ़्लेक उपकरण बनाये ही नहीं गये और न बचे फ़्लेकों को उपकरण की तरह इस्तेमाल ही किया गया। पश्चिमी यूरोप को छोड़ अन्य सभी प्रदेशों में पाई गई साक्षियों के आधार पर अनेक प्रागितिहासज्ञों को एश्यूली और लेवलायेज़ी परंपराओं के पृथक् होने में संदेह होने लगा है। किन्तु पश्चिमी यूरोप के महान् हैण्डैक्स संश्लेषण के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती है।[4] संक्षेप में, हम पश्चिमी यूरोप के निम्न पुरापाषाण के अंतर्गत एबेवीली-एश्यूली द्वितल-कोर परंपरा तथा क्लैक्टोनी लेवलायेज़ी फ़्लेक-परंपरा दोनों का वर्णन करेंगे।

---

३. लीकी, (१९५३), वही पृष्ठ ६८-६९

४. हैलेम, एल० मोविअस, जूनियर, (१९५३), "ओल्ड वर्ल्ड-प्रीहिस्ट्री : पैलियालिथिक", क्रोबर संपादित, एन्थ्रोपॉलॉजी टुडे में पृष्ठ १६४ पर, व यूनिवर्सिटी आव् शिकागो प्रेस, शिकागो, इलीनायेज़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एबेवीली (Abbevillean) **या शेलीय** (Chellean) :

एबेवीली उद्योग का नाम उत्तरी फ़्रांस के एबेवील (Abbeville) नामक स्थान पर रखा गया है। पहले इसको फ़्रांस के शेलस् (Chelles) नामक स्थान के आधार पर शेलीय (Chellean) नाम दिया गया था। एबेवीली (शेलीय) उद्योग पश्चिमी यूरोप की प्राचीनतम पुरापाषाण परंपराओं में से एक है। इस उद्योग के मुख्य उपकरण हैण्डैक्स या द्वितल-कोर हैं। ये एबवीली (शेलीय) हैण्डैक्स सबसे पुराने ही नहीं सबसे रूक्ष (क्रूड) भी हैं। इनके टढ़े-मेढ़े किनारे दोनों तलों पर काफ़ी गहरे फ़्लेक-चिन्ह छोड़ने वाले फ़्लेकों के निकालने से बने हैं। वैसे तो एबेवीली (शेलीय) द्वितल-कोरों का स्वरूप निश्चितता प्राप्त नहीं कर सका था किंतु तेज़ न होने पर भी इसका कार्यांग (वर्किग् एण्ड्) नोकीला और समंत-अंत (बट एण्ड्) कुछ गोलाकार-सा होता है। समंत-अंत (बट एण्ड्) पर अफ़्लेकीकृत पत्थर (कॉर्टेक्स) का अंश विद्यमान रहता है; शायद इसलिए कि पकड़ने में आसानी हो। मोविअस् का मत है कि ये हैण्डैक्स प्रस्तर-हथौड़ा (हैमरस्टोन) अथवा स्थिर-हथौड़ा प्रविधि (ऐन्विल् टेक्नीक) द्वारा बनाये गये होंगे।[५] एबेवीली उद्योग में इन रूक्ष (क्रूड) द्वितलीय हैण्डैक्सों के साथ अनेक फ़्लेक भी संबद्ध होते हैं। लीकी इनको स्थिर-हथौड़ा प्रविधि द्वारा फ़्लेकीकृत मानते हैं। साथ ही वे इनको क्लैक्टोनी अवशिष्ट (बचे हुए) फ़्लेकों से पृथक् करने पर ज़ोर भी देते हैं। ये फ़्लेक काफ़ी रूक्ष (क्रूड) हैं।[६] इनका कोई निश्चित प्रकार नहीं होता। अधिकांश फ़्लेक द्वितल-कोर बनाते समय निकाले हुए हैं। ओक्ली[७] और लीकी[८] दोनों के मतानुसार एबेवीली (शेलीय) उद्योग प्रागुपांतिम हिमावर्तन (मिण्डेल् ग्लेशियल्) के मध्यवर्ती लघुहिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग़्लेशियल्) में पनपा होगा।

एश्यूली (Acheulian) :

इक्के-दुक्के कोर-उपकरण तो पुरापाषाण काल के सभी स्तरों पर काम

---

५. हैलेम एल० मोविअस, जूनियर (१९५६), 'द ओल्ड स्टोन एज', शैपिरो संपादित मैन, कल्चर ऐण्ड सोसायटी में पृष्ठ ५७ पर, आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क।

६. लीकी, (१९५३), पाश्वोंद्धरित, पृष्ठ ७२-७३

७. ओक्ली, (१९५६), पाश्वोंद्धरित, पृष्ठ ४१

८. लीकी, (१९५३), पाश्वोंद्धरित, पृष्ठ ७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लाये जाते रहे। किंतु हैण्डैक्स परंपरा का चरमोत्कर्ष या उसकी पूर्णाहुति निम्न पुरापाषाण के एश्यूली उद्योग में हुई। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इसका यह अर्थ नहीं कि इस उद्योग में फ़्लेक-उपकरण इस्तेमाल किये ही नहीं गये। हैण्डैक्स इस उद्योग के विशेष उपकरण हैं जो शेलीय प्रकारों की अपेक्षा चिपटे, अधिक क्रम से फ़्लेकीकृत तथा अधिक सीधे किनारों वाले हैं। डॉ० लीकी तो एश्यूली उद्योग के आगमन की पहचान हैण्डैक्सों के बेलनाकार हथौड़ा प्रविधि या 'काष्ठ-प्रविधि' (सिलिण्डर हैमर या वुड टेक्नीक) से गढ़े जाने को मानते हैं।[९] शेलीय द्वितल-कोरों की तरह एकाध एश्यूली हैण्डैक्स भी प्रस्तर-हथौड़े (हैमरस्टोन) या स्थिर-हथौड़े (ऐन्विल्) से बनाये जाते होंगे किन्तु एश्यूली उपकरणों पर विद्यमान छिछले फ़्लेक्-चिन्ह इस बात के परिचायक हैं कि एश्यूली द्वितल-कोर (कोर वाइफ़ेस) साधारणतः लकड़ी या हड्डी (कभी-कभी मुलायम पत्थर) के बेलनाकार हथौड़े से ही गढ़े जाते होंगे। इस उद्योग के उपकरणों का ध्यानपूर्वक परीक्षण करने के बाद प्रागितिहासज्ञों ने उनकी निर्माण-कला में क्रमिक विकास और सुधार पाया है।

एश्यूली उपकरण टेम्स (Thames) और सोम (Somme) दोनों घाटियों में पाये गये हैं। वह स्थान (सेण्ट एश्यूल=St. Acheul) जिसके नाम पर इस उद्योग का नामकरण किया गया है फ़्रांस के सोम घाटी में स्थित है। एश्यूली उद्योग की अवधि यूरोप के अन्य सभी पुरापाषाण उद्योगों अथवा संस्कृतियों से अधिक थी। उपलब्ध साक्षियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह उद्योग उपांतिम या महान् हिमप्रत्यावर्तन (मिण्डेल्-रिस् इण्टरग्लेशियल्) में आरंभ होकर अंतिम हिमप्रत्यावर्तन (रिस्-वुर्म् इंटरग्लेशियल) की समाप्ति पर समाप्त हुआ। लीकी यूरोप में एबेवीली (शेलीय) से एश्यूली तक के क्रमिक उद्विकास की साक्षी नहीं पाते हैं। वे यूरोप के एश्यूली उद्योग का आरंभ भी यूरोप के बाहर प्रागुपांतिम हिमावर्तन (मिण्डेल ग्लेशियल्) में हुआ मानते हैं।[१०] पुराने प्रागितिहासज्ञ तो एश्यूली उद्योग के कई विभाग किया करते थे लेकिन आजकल इसको निम्न, मध्य और उच्च भागों में बाँटना अधिक उपादेय माना जाता है। अंडाकार (ओवेट) हैण्डैक्स इस उद्योग के सभी भागों में पाये जाते हैं। निम्न से उच्च एश्यूली की ओर क्रमशः इनकी संख्या कम होती जाती है। इसके अतिरिक्त मध्य एश्युली उद्योग के अंडाकार (ओवेट) हैण्डैक्सों के किनारे सीधे या साधारण

९. लीकी, (१९५३), वही, पृष्ठ ७६
१०. लीकी, (१९५३), वही, पृष्ठ ७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से टेढ़े-मेढ़े न होकर S आकृति के होते हैं। इसीलिये इनको S-ऐंठन वाला हैण्डैक्स कहा जाता है। क्लीवरों की संख्या कम है किंतु पाये वे एश्यूली उद्योग के सभी स्तरों में जाते हैं। उच्च एश्यूली का वैशिष्टच उसके हृदयाकार (कार्डिफ़ार्म) हैण्डैक्सों के कारण है। इसमें भाला की आकृति के कुछ छोटे-छोटे द्वितल-कोर भी पाये जाते हैं जिनके किनारे सीधे या कभी-कभी नतोदर भी होते हैं। कुछ प्रागितिहासज्ञ एश्यूली उद्योग का एक और उपविभाग करने के पक्ष में हैं। उसे अंतिम एश्यूली या दक्षिण-मध्य ांस के ला मिसाक़ (La Micoque) नामक स्थान पर इस प्रकार के उपकरणों के पाये जाने के कारण मिसाक़ी (Micoquian) भी कहा जाता है। मिसाक़ी हैण्डैक्स कुछ लंबे होते हैं। उनके किनारे सुन्दरता से गढ़े हुए और सीधे होते हैं। ये मिसाक़ी उपकरण कोर के स्थान पर फ़्लेक पर गढ़े होते हैं। एश्यूली उद्योग के सभी स्तरों पर हैण्डैक्सों के साथ फ़्लेक भी सम्बद्ध पाये जाते हैं। उनकी संख्या उच्च और अंतिम एश्यूली में अपेक्षाकृत अधिक है। ये एश्यूली फ़्लेक प्रायः हैण्डैक्स बनाने के लिए निकाले गये फ़्लेक होते हैं।

प्रागितिहासज्ञों का ऐसा अनुमान है कि एश्यूली ही क्या प्रायः सभी निम्न पुरापाषाण उद्योगों के शिकारी मनुष्यों के प्रमुख आखेट-अस्त्र लकड़ी के भाले और फेंक कर मारने वाले लकड़ी के डण्डे थे। इनके अतिरिक्त पत्थर के गढ़े गोले भी पशुओं के अस्थ्यवशेषों के साथ मिले हैं। शायद वे भी शिकार के काम में लाये जाते थे। हाथी, घोड़े और बैलों का शिकार तत्कालीन मानव प्रायः किया करता होगा यह उपलब्ध साक्षियाँ बताती हैं। यह काम अकेले एक आदमी नहीं कर सकता था। शायद एक या कई परिवार एक साथ मिल कर यह काम करते होंगे। खाई खोदे जाने के भी प्रमाण मिले हैं। खुले मैदान या विरल वन एश्यूली लोगों के निवास-स्थल थे। गुफ़ाओं और चट्टानों की शरण इस उद्योग के अन्त में ही लिया गया होगा। झीलें और नदी-तट इस उद्योग के निर्माताओं के प्रिय गन्तव्य स्थानों में थे।

क्लैक्टोनी (Clactonian) :

इंग्लैण्ड की एसेक्स (Essex) काउंटी के क्लैक्टोन-ऑन-सी (Clacton-on-Sea) नामक स्थान पर पाये गये फ़्लेक-उपकरण हैण्डैक्स परंपरा में पाये गये फ़्लेक उपकरणों से भिन्न हैं। क्लैक्टोनी उद्योग के महत्त्व के संबंध में प्रागितिहासज्ञ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकमत नहीं हैं। प्रसिद्ध अमरीकी प्रागितिहासज्ञ डॉ॰ मोविअस ने १९५३ ई. में[११] क्लैक्टोनी उद्योग को इंग्लैण्ड या अधिक से अधिक उत्तर-पश्चिमी यूरोप तक ही सीमित बताया था। डॉ॰ लीकी[१२] और श्री ओक्ली[१३] ने इससे भिन्न मत व्यक्त किये हैं। डॉ॰ लीकी ने क्लैक्टोन फ़्लेकों के संबंध में बहुत सावधानी बरतने के लिये कहा है क्योंकि उन्हें एबेवीली (शेलीय) अवशिष्ट फ़्लेकों से पृथक् करने में कठिनाई होने की संभावना है। प्रागैतिहासिक साहित्य में प्रायः सदा ही क्लैक्टोनी फ़्लेकों की पहचान आघात-स्थल का अकृत्रिम (अनफ़ैसेटेड) होना, फ़्लेक कोण अर्थात् आघात-स्थल और मुख्य फ़्लेक सतह (अर्धशंकु वाली सतह) के बीच के कोण का विषम (>९०°) होना और गोलाकार अर्धशंकु के स्थान पर बड़े अर्धशंकु (कोन) का विद्यमान होना माना जाता रहा है। इससे केवल इतना भर कहा जा सकता है कि ये फ़्लेक स्थिर-हथौड़ा (निहाई) प्रविधि द्वारा निकाले गये होंगे। हमने यह देखा था कि इस प्रविधि का उपयोग इस उद्योग तक ही सीमित नहीं था। क्लैक्टोनी उद्योग फ़्लेक-उपकरण-प्रधान उद्योग है। क्लैक्टोन फ़्लेक के किनारे कदाचित् ही पुनर्गढ़ित (द्वितीयक फ्लेकीकृत) होते हैं। अधिकांश रूप में वे इस्तेमाल के कारण टूटे हुए होते हैं। इस उद्योग के मध्य में कुछ स्क्रेपर, पार्श्वगढ़ित चाक़ू और अंत-स्क्रेपर भी बनाये जाने की साक्षियाँ मिलती हैं। एकाध स्थानों में लकड़ी के भाले भी मिले हैं। इनको चिकनाने वाले नतोदर-स्क्रेपर इस उद्योग में काफ़ी बनाये गये थे।

क्लैक्टोनी उद्योग के कुछ विकसित अंश को एश्यूली उद्योग से पृथक् करना कठिन-सा मालूम हो सकता है। किंतु न तो उसके फ़्लेक अवशिष्ट एश्यूली फ़्लेक हैं और न ही उसके हैण्डैक्स ही एश्यूली हैं। ये क्लैक्टोनी हैण्डैक्स आकार-प्रकार में देखने से एश्यूली लगते तो हैं किंतु उनकी निर्माण-प्रविधि एश्यूली नहीं है। हो सकता है कि ऐसे उपकरण बनाने की प्रेरणा क्लैक्टोनी लोगों को एश्यूली लोगों से मिली हो। परंतु उनको बनाने के लिये क्लैक्टोनी लोग एश्यूली प्रविधि का उपयोग नहीं करते थे। इन क्लैक्टोनी हैण्डैक्सों के अतिरिक्त क्लैक्टोनी कोर भी पाये जाते हैं। ये कोर कभी-कभी आद्योपांत गढ़े हुए और द्वि-ध्रुवी आकृति के होते हैं। अधिकतर क्लैक्टोनी कोरों में अगढ़ित पत्थर का अंश (कार्टेक्स) विद्यमान रहता है।

---

११. मोविअस, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १६४
१२. लीकी, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ८६
१३. ओक्ली, (१९५६), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ४८-४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शायद यह जान-बूझ कर किया जाता था जिससे इन कोरों को चॉपर या चॉपिंगुपकरण की तरह इस्तेमाल किया जा सके।

प्रागितिहासज्ञों का ऐसा अनुमान है कि यह फ़्लेक-प्रधान उद्योग उपांतिम हिमप्रत्यावर्तन (मिण्डेल्-रिस् इण्टरग्लेशियल्) में पल्लवित-पुष्पित हुआ होगा। इस प्रकार यह निम्न तथा मध्य एश्यूली का समकालीन हुआ। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है डॉ० मोविअस् इस उद्योग की व्यापकता को सीमित मानते हैं। किंतु अन्य प्रागितिहासज्ञों का —जिनमें डॉ० लीकी और श्री ओक्ली विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—मत इससे भिन्न है। उपलब्ध साक्षियाँ इस तथ्य की द्योतक हैं कि निम्न पुरापाषाण काल में भी पूर्वी और मध्य यूरोप में फ़्लेक-बहुल उद्योगों का प्राधान्य रहा होगा। वहाँ और शायद अन्य क्षेत्रों में भी क्लैक्टोनी परंपरा ने मुस्तीरी फ़्लेक उद्योग को जन्म दिया होगा या मुस्तीरी उद्योग के पनपने में सहायक रही होगी।

यूरोप का लेवलायेज़ी उद्योग फ़्लेक-प्रधान उद्योग है। इस उद्योग को असंदिग्ध रूप से निम्न अथवा मध्य पुरापाषाण में रखना कठिन होगा। वास्तव में पुरापाषाण के इन उपविभागों के बीच की विभाजन रेखा खींचना ही काफ़ी कठिन है। डॉ० लीकी ने हिमावर्तन-हिमप्रत्यावर्तन (ग्लेशियल्-इण्टरग्लेशियल्) के आधार पर पुरापाषाण का जो विभाजन प्रस्तुत किया है वह उपयोगी होने पर भी सर्वमान्य नहीं हो पाया है। निम्न तथा मध्य पुरापाषाण के एक दूसरे से पृथक्करण का बहुत पुराना आधार क्रमशः इनका 'कोर-उपकरण' उद्योग और 'फ़्लेक-उपकरण' उद्योग होना माना जाता रहा है। डॉ० मोविअस ने भी उपकरण-प्रकार के दृष्टिकोण से द्वितल-कोरों (कोर बाइफ़ेसेज़) के विद्यमान अथवा अविद्यमान होने को ही निम्न-मध्य पुरापाषाण की विभाजक-रेखा का आधार माना है। किंतु डॉ० मोविअस का मत है कि निर्माण-वैशिष्टच (टेक्नॉलॉजी) के दृष्टिकोण से पुरापाषाण के ये उपविभाग उनमें क्रमशः कृत्रिम आघात-स्थल (फ़ैसेटेड् स्ट्राइकिंग प्लैटफ़ार्म) वाले फ़्लेकों तथा निकाले जाने के पहले इन फ़्लेकों का कोर पर लेवलायेज़ी प्रकार से गढ़े जाने अथवा गढ़े न जाने के अनुसार ही एक दूसरे से पृथक् किये जा सकते हैं।[१४] "लेवलायज़ी फ़्लेकीकरण प्रविधि" (कृत्रिम आघात-स्थल वाले फ़्लेक) तथा डिस्क-आकार अवशिष्ट कोर अथवा "मुस्तीरी फ़्लेकीकरण प्रविधि' सर्वदा सहसंबंधित ही हों यह डॉ० मोविअस नहीं मानते।[१४] यह बड़ी ही रोचक बात है कि वे ही

१४. मोविअस, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १९६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९५६ में लेवलायेज़ी को निम्न पुरापाषाण के अंतर्गत सम्मिलित करते पाये जाते हैं।[१५] वास्तव में लेवलायेज़ी एक ऐसी फ़्लेक-उपकरण परंपरा है जो निम्न पुरापाषाण में आरंभ होकर एक या दूसरे रूप में उच्च पुरापाषाण काल के आरंभ तक चलती रही थी।

लेवलायेज़ी (Levallosian) :

इस उद्योग का नाम पेरिस के एक उपनगर, लेवलायेज़ (Levallois), पर पड़ा है। आधुनिक शोधों के अनुसार कई स्थानों पर यह आरंभिक मध्य एश्यूली सामग्री के साथ संबंधित पाया गया है। आरंभिक अवस्था—उपांतिम हिमप्रत्यावर्तन (मिण्डेल-रिस् इण्टरग्लेशियल्) के अंत और उपांतिम हिमावर्तन (रिस् ग्लेशियल्) के आरंभ में इस उद्योग में 'कछुवा कोर' से अपेक्षाकृत बड़े और भारी फ़्लेक निकाले जाने के प्रमाण मिलते हैं जिनके आघात-स्थल (स्ट्राइकिंग् प्लैट्फ़ार्म) स्वच्छता से नहीं गढ़े गये हैं। इसका क्रमिक विकास दो दिशाओं में हुआ। उच्च एश्यूली और मिसाक़ी उद्योगों के समकालीन लेवलायेज़ी उद्योग के फ़्लेक उपकरण आरंभिक लेवलायेज़ी फ़्लेक उपकरणों के ही समान होते हुए भी उनसे कुछ पतले, अंडाकार और बड़े हैं। उनकी गढ़न-विधि भी कुछ अच्छी है। इसको उच्च लेवलायज़ी कहा जाता है। इसमें उपर्युक्त लेवलायेज़ी तत्त्वों के ही साथ हैण्डैक्स भी पाये गये हैं। कदाचित् इसका कारण उच्च एश्यूली से इसका संपर्क रहा हो। यह याद रखना उचित होगा कि जहाँ एश्यूली तथा मिसाक़ी हैण्डैक्स बेलनाकार हथौड़ा (सिलिडंर हैमर) प्रविधि से बनाये गये हैं, वहाँ इन उच्च लेवलायेज़ी हैण्डैक्सों को बनाने के लिये सोपान-पद या सबंध आघात (स्टेप या इन्वर्डब्लो) प्रविधि अपनाई गई है। दूसरी दिशा में लेवलायेज़ी उद्योग के मध्य तथा अंतिम भाग, जो क्रमशः अंतिम हिमप्रत्यावर्तन (रिस्-वुर्म् इंटरग्लेशियल्) तथा अंतिम हिमावर्तन (वुर्म् ग्लेशियल्) में हुए थे, अग्रसर हुए। मुस्तीरी उद्योग से संबंधित होने के कारण इनको एक साथ लेवलायेज़ का मुस्तीरी उद्योग (Mousterian of Levalloisian facies) के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें अनेक ब्लेड तथा आयताकार ब्लेड-कोर भी काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं। इस उद्योग के फ़्लेक पतले, छोटे तथा अधिक सावधानी से पुनर्गढ़ित होते हैं। पुनर्गढ़न मध्य की अपेक्षा अंतिम लेवलायेज़ी में अधिक पाया जाता है। इन फ़्लेकों के कृत्रिम आघात-स्थल

१५. मोविअस, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ६०-६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(फ़ैसेटेड स्ट्राइकिंग प्लैट्फ़ार्म) सपाट नहीं वरन् पुलिस के सिपाही के हैट की आकृति का होता है।

निम्न तथा मध्य पुरापाषाण काल में ही उच्च पुरापाषाण काल के ब्लेडों की तरह फ़्लेक बनाने वाली प्रविधि के रूप में लेवलायेज़ी उद्योग की प्रविधि का विशेष महत्त्व है। इस (लेवलायेज़) प्रविधि का वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। विशेष प्रकार से गढ़े जाने वाले 'कछुवा कोर' के बारे में यहाँ कुछ बतला देना आवश्यक और उपयोगी होगा। लेवलायेज़ फ़्लेक बनाने के लिये प्रायः अंडाकार और चिपटा पत्थर चुना जाता है। इधर-उधर से, किनारे से, फ़्लेक निकाल कर निश्चित आकृति बना लिया जाता है। फिर पत्थर की ऊपरी परत छील ली जाती है अर्थात् अगढ़ित अंश (कार्टेक्स) गढ़ कर निकाल लिया जाता है। यह काम फ़्लेक निकाल कर किया जाता है। चारों ओर से ये फ़्लेक केन्द्र विंदु की ओर निर्देशित कर निकाले जाते हैं। इस कारण गढ़ा हुआ यह कोर कछुवे की पीठ की आकृति का लगता है। केंद्र-विंदु कछुवे की पीठ के मध्योभार और फ़्लेक-चिह्न उसकी पीठ पर की परतों के समान लगते हैं। इसी कारण यह 'कछुवाकोर' कहलाता है।

दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस में दरदाँ (Dordogne) नाम का एक प्रदेश है। इस प्रदेश की मुस्तियर (Le Moustier) की गुफ़ा में पाये गये मुस्तीरी (Mousterian) उद्योग-मात्र को ही पुराने प्रागितिहासज्ञ मध्य पुरापाषाण मानते थे। यदि मध्य पुरापाषाण को केवल 'फ़्लेक-उपकरण' परंपरा ही मान लिया जाय तो भी लेवलायेज़ी के विकसित अंशों को, जो मुस्तीरी के समकालीन थे, उसके अंदर सम्मिलित करना ही पड़ेगा, हालाँकि दोनों के स्थायी क्रमिक सहसंबंध के स्तरीय प्रमाण नहीं मिलते हैं। प्रागैतिहासिक साहित्य में मध्य पुरापाषाण (मुस्तीरी) की कोई अपनी विशिष्ट उपकरण-निर्माण-प्रविधि का वर्णन नहीं मिलता है। डिस्क के आकार के बचे कोर वास्तव में 'कछुवा कोर' से भिन्न हैं। देखने में दोनों समान से लगते हैं क्योंकि उनके किनारे चारों ओर से सावधानीपूर्वक गढ़े होते हैं और उन पर केन्द्र-निर्देशित फ़्लेकों के निकाले जाने के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। डिस्काकार कोर अपेक्षाकृत कुछ अधिक उभरा होता है। कोरों की इस समानता पर भी 'मुस्तीरी फ़्लेकीकरण प्रविधि' लेवलायेज़ प्रविधि से सर्वथा भिन्न है क्योंकि इन उपकरण-निर्माताओं के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। लेव-लायेज़-फ़्लेक-निर्माता लेवलायेज़-फ़्लेक के स्वरूप को उसके कोर से पृथक्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होने के पूर्व 'कछुवा कोर' पर ही गढ़ लिया करता है। 'कछुवा कोर' तैयार करने के लिये निकाले गये केन्द्र-निर्देशित फ़्लेक अवशेष-मात्र होते हैं। किंतु मुस्तीरी फ़्लेकीकरण प्रविधि में डिस्काकार कोर से फ़्लेक उसकी ऊपरी अगढ़ित परत (कार्टेक्स) को छीलने के उद्देश्य से नहीं वरन् फ़्लेक-उपकरण बनाने के लिये निकाले जाते हैं यद्यपि वे भी केन्द्र-निर्देशित ही होते हैं। दो फ़्लेक-चिह्नों के बीच की उभरी जगह को आघात-स्थल की तरह इस्तेमाल करना साधारण बात है। इसके अतिरिक्त अनेक अकृत्रिम आघात-स्थल वाले मुस्तीरी फ़्लेक भी पाये जाते हैं। लेवलायेज़ फ़्लेक का आघात-स्थल सदा कृत्रिम होता है। इन (लेवलायेज़ फ़्लेकों) पर पुनर्गढ़न की आवश्यकता नहीं होती जब कि डिस्काकार कोर (मुस्तीरी फ़्लेकीकरण प्रविधि) से निकाले गये फ़्लेक प्रायः निश्चित रूप से बग़ल में या किनारे पर पुनर्गढ़ित होता है। उन साक्षियों के आधार पर ऐसा अनुमान है कि लेवलायेज़ी दक्षिणी इंग्लैण्ड, उत्तर-पश्चिमी फ़्रांस तथा बेल्जियम में प्रमुख रूप से विकसित हुआ होगा। इन क्षेत्रों में मुस्तीरी उद्योग की साक्षियाँ बहुत कम मिलती हैं। मुस्तीरी उद्योग मध्य-दक्षिणी यूरोप और पश्चिमी यूरोप के अन्य क्षेत्रों में फैला था।[१६] मुस्तीरी उद्योग अंतिम हिमप्रत्यावर्तन (रिस्-वुर्म् इण्टरग्लेशियल) में आरंभ होकर अंतिम हिमावर्तन (वुर्म् ग्लेशियल्) के आरंभ तक चलता रहा था।

बर्किट[१७] और मोविअस[१८] आदि कई प्रागितिहासज्ञ मुस्तीरी उद्योग के आदि, मध्य और उच्च अथवा अन्तिम उपविभाग करने के पक्ष में हैं। इनमें क्रमशः **हृदयाकार** (कॉडिफ़ार्म) हैण्डैक्सों और लेवलायेज़ फ़्लेकों का अभाव तथा मुस्तीरी पार्श्व-स्क्रेपरों और **अस्त्राग्रों** (प्वाइण्ट्स्) की वृद्धि होती जाती है। किन्तु डॉ० मोविअस यह स्वीकार करते हैं कि कई क्षेत्रों में मुस्तीरी उद्योग पर लेवलायेज़ी का प्रभाव नहीं मिलता।[१९] यहाँ फ़्लेक डिस्काकार-कोर (मुस्तीरी फ़्लेकीकरण) प्रविधि द्वारा निकाल कर पुनर्गढ़ित होते हैं। इसका कारण वे उपलब्ध पत्थर-प्रकार को मानते हैं।[१९] कदाचित् इस व्याख्या का कारण उनका यह मत है कि क्लैक्टोनी और **लाक्षणिक** (टिपिकल) मुस्तीरी में संबंध के कोई प्रमाण नहीं मिलते

१६. मोविअस, (१९५६), पाश्र्वोद्धरित, पृष्ठ ६३
१७. बर्किट, (१९५५), पाश्र्वोद्धरित, पृष्ठ १२०
१८. मोविअस, (१९५६), पाश्र्वोद्धरित, पृष्ठ ६३
१९. मोविअस, (१९५६), वही, पृष्ठ ६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं।[२०] यह पहले ही बताया जा चुका है कि डॉ० लीकी[२१] और डॉ० ओक्ली[२२] लाक्षणिक मुस्तीरी को निश्चित रूप से क्लैक्टोनी से उत्पन्न हुआ मानते हैं। इस क्लैक्टोनी प्रभावित मुस्तीरी को आदि मुस्तीरी या 'गर्म' मुस्तीरी कहा जाता है क्योंकि गर्म अंतिम हिमप्रत्यावर्तन (रिस्-वुर्म इंटर्ग्लेशियल) में पनपा था। लीकी आदि प्रागितिहासज्ञ इस मत के हैं कि लाक्षणिक मुस्तीरी का विकास इसी 'गर्म' (क्लैक्टोनी-प्रभावित) मुस्तीरी से हुआ होगा। यह मत तर्कसंगत भी प्रतीत होता है क्योंकि लाक्षणिक मुस्तीरी की विशेषता एश्यूली अथवा लेवलायेज़ी प्रभाव-रहित उसके पार्श्व-स्क्रेपरों और अस्त्राग्रों (प्वाइण्ट्स्) के कारण है। आधुनिक शोधों से यह पता चला है कि अंतिम हिमावर्तन (वुर्म ग्लेशियल) में एक से अधिक मुस्तीरी समूहों ने अपने पृथक्-पृथक् उद्योगों या उपोद्योगों का निर्माण किया था। फ्रांसीसी प्रागितिहासज्ञ पेरोनी (Peyrony) ने मुस्तीरी उद्योग के मुख्य स्थल मुस्तियर की फिर से खुदाई की। उन्हें तीन मुस्तीरी उप-उद्योगों का पता चला है। इनमें एक तो लाक्षणिक मुस्तीरी है। एक में लेवलायेज़ी प्रभाव प्रधान है तथा तीसरे में लेवलायेज़ी फ़्लेक के साथ एश्यूली हैण्डैक्स तत्त्व भी विद्यमान हैं। यह तो स्पष्ट है कि मुस्तीरी उद्योग के कुछ अंश लेवलायेज़ी और **अंतएश्यूली** (मिसाक़ी) के समकालीन थे। लीकी मुस्तीरी पर प्रत्यक्ष लेवलायेज़ी प्रभाव मानने के लिए तो तैयार हैं लेकिन एश्यूली के सम्बन्ध में वे निश्चित नहीं हैं। उनका अनुमान है कि मुस्तीरी पर एश्यूली का प्रभाव लेवलायेज़ी द्वारा हुआ होगा। इसी कारण लाक्षणिक (टिपिकल या क्लैसिकल) मुस्तीरी के अतिरिक्त मुस्तीरी-लेवेलायेज़ी और मुस्तीरी-एश्यूली-लेवलायेज़ी मुस्तीरी उद्योग के अंग हैं। क्लैक्टोनी और लेवलायेज़ी द्वितल कोरों के समान ही मुस्तीरी हैण्डैक्स भी एश्यूली (बेलनाकार हथौड़ा) प्रविधि द्वारा नहीं बनाये गये हैं।

यूरोप के उच्च पुरापाषाण उपकरण विशिष्ट कार्यों के लिए अत्यन्त उपयोगी थे। मुस्तीरी उपकरणों में अभी तक वह वैशिष्ट्य नहीं आ सका था। फिर भी उस उद्योग के उपकरणों को **बहुकार्योपयोगी** (मल्टिपुल पर्पज़) तथा **विशेष-कार्योपयोगी** (स्पेशल पर्पज़) दो श्रेणियों या वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में द्वितलीय चॉपर तथा हैण्डैक्स

२०. मोविअस, वही, पृष्ठ ६३
२१. लीकी, (१६५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ११४
२२. ओक्ली, (१६५६) पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परंपरा के उपकरण रखे जा सकते हैं। दूसरे वर्ग में कई प्रकार के उपकरण सम्मिलित हैं। गोले और डिस्क आदि शायद मांस-आदि कुचलने के लिए इस्तेमाल किये जाते होंगे। चौड़े किनारे वाले फ़्लेक छीलने तथा पतले किनारे वाले आरा की तरह काटने, अस्त्राग्र की तरह के लंबे पतले उपकरण छेदने, भुथरे पृष्ठ वाले चाक़ू की तरह और दंतुर-स्क्रेपर फाड़ने के काम में लाये जाते होंगे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मुस्तीरी मानव विशेष कार्योपयोगी उपकरण अपने निवास-स्थान पर विशेष कार्यों के लिए रखता होगा जबकि बहुकार्योपयोगी उपकरण उसके अन्य आखेट-अस्त्रों के साथ जाते होंगे। अस्थि (हड्डी) उपकरणों की निर्माण-कला की कुशलता मुस्तीरी मानव प्राप्त नहीं कर सका था। पशुओं की हड्डियों को लंबाई से तोड़ कर उपकरण की तरह इस्तेमाल करना तथा गाय-बैलों के खुरों से निहाई का काम लिया जाता था।[२३]

यूरोप के निम्न तथा मध्य पुरापाषाण उद्योगों में मुस्तीरी ही एक ऐसा उद्योग है जिसके निर्माताओं के बारे में हम निश्चित रूप से जानते हैं। ये लोग नियंडर्थल प्रजाति (Neanderthal race) के थे। बर्किट तो मुस्तीरी उद्योग की परिभाषा ही यह देते हैं कि शायद उसके निर्माता नियंडर्थल लोग थे।[२४] 'गर्म' मुस्तीरी उद्योग बनाने वाले नियंडर्थल लोगों का जीवन तो एश्यूली लोगों के ही समान रहा होगा। लाक्षणिक (टिपिकल) मुस्तीरी लोगों के जीवन के सम्बन्ध में हमें अधिक विश्वसनीय साक्षियाँ मिली हैं। अंतिम हिमावर्तन (वुर्म ग्लेशियल) के शीत जलवायु में नियंडर्थल लोगों ने गुफ़ाओं या गुफ़ा-द्वारों में शरण लिया था। इस कार्य में उन्हें महाकुंजर (मैमथ) और गैंडा जैसे अत्यन्त बलशाली तत्कालीन पशुओं का सामना करना पड़ा होगा। इस काम के लिए नियंडर्थल लोगों ने लकड़ी के भाले, ढेला और सबसे बढ़ कर आग का उपयोग किया होगा। ऐसे पशुओं के आखेट में सफलता प्राप्त करना कोई सरल बात नहीं मानी जा सकती है। यह अत्यंत साहस और कौशल का काम था जो पारस्परिक सहयोग के बिना संपन्न नहीं हो सकता था। नियण्डर्थल मानव अपने शिकार को, जिसमें घोड़े जंगली बैल, बारहसिंघा, गुफ़ा-भालू, भूरा भालू, महाकुंजर और गैंडा सम्मिलित थे, पूरा-पूरा घसीट कर अपनी गुफ़ा तक नहीं ले जाता था वरन्

---

२३. ऐड्रियन कोट्स, (१९५१), प्रिलूड टु हिस्ट्री, मेथुयेन ऐण्ड कंपनी, लिमिटेड, लंदन, पृष्ठ ११३

२४. बर्किट, (१९५५), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके अंग काट-काट कर अलग कर लेता था। उसको पशुओं के हड्डियों के बीच के मज्जा में विशेष रुचि थी। इसे वह हड्डियों को बीच से तोड़ कर निकाला करता था। शायद नियंडर्थल मानव नर-मुंड-आखेटकर्त्ता (हेड-हण्टर) और नर-भक्षी (कैनिबल) भी था। यह काम मानव-मस्तिष्क-भक्षण के लिए किया जाता था। मुस्तीरी उद्योग-निर्माताओं में विधिवत् अंत्येष्टि-क्रिया का भी प्रचलन था, ऐसे प्रमाण मिले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

यूरोपीय पुरापाषाण और आदियुगीन वन्यता (२)

उच्च पुरापाषाण

पारंपरिक परिभाषा के अनुसार उच्च पुरापाषाण में 'ब्लेड और ब्यूरीन' संस्कृतियों का समावेश किया जाता रहा है। इस परिभाषा के सम्बन्ध में संदेह की कोई सम्भावना नहीं थी जब **ब्लेड** और **ब्यूरीन** (ग्रेवर) का सर्वप्रथम निर्माण वुर्म के प्रथम लघु हिमावर्तन (वुर्म् १) के बाद माना जाता था। अब तक जो साक्षियाँ मिली हैं, उनसे पश्चिमी एशिया में (विशेष रूप से फ़िलिस्तीन में) एश्यूली स्तरों में ब्लेड पाये जाने का अनुमान है। डॉ० लीकी ने केनिया में लेवलायेज़ी उपकरणों के साथ ब्लेड भी पाये हैं। ज्यों-ज्यों पुरानी दुनिया के पुरापाषाण के बारे में हमारा ज्ञान विस्तृत होता जाता है पुराना वर्गीकरण अपनी विश्वव्यापकता खोता जाता है क्योंकि प्रादेशिक उद्योगों, संस्कृतियों को उस प्रकार श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता है। डॉ० लीकी द्वारा प्रस्तुत हिमावर्तन-हिमप्रत्यावर्तन आधारित पुरापाषाण का विभाजन महत्त्वपूर्ण और उपादेय है। किन्तु जहाँ तक यूरोप, विशेष कर पश्चिमी यरोप, का सम्बन्ध है उच्च पुरापाषाण को ब्लेड और ब्यूरीन परंपरा मानना उचित और न्यायसंगत होगा। निम्न और मध्य पुरापाषाण की सम्मिलित अवधि उच्च पुरापाषाण की अवधि से नौ गुना अधिक थी; किन्तु सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में स्थिति सर्वथा विपरीत थी। चाहे एकाध ब्लेड उपकरण इसके पहले भी क्यों न बनाये गये हों, लेकिन विविध काम में लाये जाने वाले हैण्डैक्सों और फ्लेकों के स्थान पर विशिष्ट काम में लाये जाने वाले ब्लेड पर बने विभिन्न प्रकार के उपकरण इससे पहले कभी नहीं बनाये गये। लंबे, पतले ब्लेड बनाना ही बड़े कौशल का काम था। उच्च पुरापाषाण सांस्कृतिक परंपरा में प्रस्तर-उपकरण-निर्माण-कौशल का स्थान नगण्य न होने पर भी गौण था क्योंकि अन्य क्षेत्रों में सापेक्षिक रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई थी। कदाचित् लकड़ी के अभाव ने अस्थि (हड्डी)-उपकरण बनाने की प्रेरणा दी हो। मछली मारने के लिए अंकुश (हुक—Hook) हड्डी के ही बनाये जाते थे। इससे यह पता चलता है कि मछली मारना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन का एक अंग रहा होगा। पत्थर और हड्डी के अनेक उपकरणों में मुष्ठि या बेंट लगाया जाता होगा। यह साधारण बात नहीं थी। मछली मारने की बंशी बनाने के लिए धागे जैसी कोई चीज इस्तेमाल की जाती होगी। हड्डी की सुइयाँ भी मिली हैं जिनमें आँखें बनी हैं। उच्च पुरापाषाण के यूरोपीय लोग सीने-पिरोने में रुचि ही नहीं रखते थे, उसमें दक्ष भी थे। वे लोग अपने चमड़े के कपड़े और थैलियाँ आदि ताँत से सीते होंगे ऐसा अनुमान किया जा सकता है। तन ढँक कर ही ये लोग सन्तुष्ट नहीं हो जाते होंगे यह पाये गये शंख, कौड़ियों और दंतों के हार बतलाते हैं। पशुओं की आकृति वाले **चेहरे** (मॉस्क) शायद विशेष अवसरों--उत्सव-समारोहों--पर पहने जाते होंगे। स्थायी रंग, उनको रँगने वाली प्यालियाँ और प्रकाश करने के लिए दिये और तेल की भी व्यवस्था थी। यूरोप की इन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के निर्माता नियंडर्थल लोगों से भिन्न वर्तमान **मानव उपपरिवार** (Homo sapiens) के थे। मुस्तीरी उद्योग से विकसित न होकर ये संस्कृतियाँ एक नवीन परंपरा की देन थीं। इनके निर्माता मेधावी और आविष्कार वृत्ति वाले प्रतीत होते हैं। इनमें विधिवत् अंत्येष्टि-क्रिया का प्रचलन था और शायद ये लोग पितृपूजन और पितृतर्पण में भी विश्वास करते थे। उच्च पुरापाषाणकाल में कला का आश्चर्यजनक विकास हुआ। इसके बारे में हम आगे बतलायेंगे।

ऑरिग्नेशी (Aurignacian)

मार्ग्तिले (Mortillet) द्वारा प्रस्तुत और ब्रीयुल (Breuil) द्वारा संशोधित ढाँचे में उच्च पुरापाषाण का प्रथम चरण बनाने वाली संस्कृति को ऑरिग्नेशी (Aurignacian) कहा गया। इसका उपविभाजन तथा नामकरण मतभेद का विषय है। ब्रीयुल इसके निम्न, मध्य और उच्च उपविभाग करने के पक्ष में हैं। प्रोफ़ेसर गैरॉड (D.A.E. Garrod) ब्रीयुल के निम्न ऑरिग्नेशी को शैटेल्पेरानी (Chatelperronian) और मध्य ऑरिग्नेशी को ऑरिग्नेशी कहना अधिक पसन्द करती हैं। ब्रीयुल के उच्च ऑरिग्नेशी को वे क्रम से **ग्रैवेती-प्रक्रम** (Gravettian stage) और **फ़ाण्ट रॉबर्ट प्रक्रम** (Font Robert stage) दो भागों में विभाजित करती हैं। ब्रीयुल के वर्गीकरण को मूल रूप में स्वीकार करते हुए भी बर्किट गैरॉड के उपविभाजनों को भी अपने वर्गीकरण में स्थान देते हैं। निम्न ऑरिग्नेशी (शैटेल्पेरानी) के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्व **आँदी प्रक्रम** (Audi stage) आता है। किन्तु इसका स्थान निश्चित नहीं माना जा सका है। डॉ० लीकी तो मुस्तीरी उद्योग में ही आँदी अस्त्राग्रों (Audi points) की बात करते पाये जाते हैं।[२५] ब्रीयुल के ही समान बर्किट मध्य ऑरिग्नेशी को मध्य ऑरिग्नेशी ही कहते हैं किन्तु उच्च ऑरिग्नेशी ग्रैवेती है और फ़ाण्ट रॉबर्ट उसके उपरान्त रखा गया है। इन सबसे बाद का वर्गीकरण पेग़ोनी का है। वे ऑरिग्नेशी संस्कृति में दो समानान्तर परम्पराओं की विद्यमानता के पक्ष में हैं। एक परंपरा को वे ऑरिग्नेशी कहते हैं। यह ब्रीयुल के वर्गीकरण में मध्य ऑरिग्नेशी से उच्च ऑरिग्नेशी तक चलती रही। दूसरी परंपरा का नाम उन्होंने पेरीगार्डी (Perigordian) रखा है। इसकी **आधारशिला** (Basal Perigordian) शैटेल्पेरानी के समानवर्त्ती है। यहाँ से आरम्भ होकर यह परंपरा गैरॉड के फ़ाण्ट रॉबर्ट प्रक्रम अर्थात् ब्रीयुल के उच्च ऑरिग्नेशी के अंत तक चलती रही थी। स्तरीय साक्षियों पर आधारित होने के कारण पेग़ोनी के वर्गीकरण को मान्यता प्रदान करनी ही पड़ेगी। किन्तु अधिक उचित तो यह होगा कि उच्च पुरापाषाण के आरंभिक चरण बनाने वाली संस्कृति को पुराने नाम ऑरिग्नेशी से ही पुकारा जाय। इसके दो उपविभाग होंगे, ऑरिग्नेशी और पेरीगार्डी। यह ऑरिग्नेशी उपसंस्कृति ब्रीयुल का मध्य ऑरिग्नेशी है। ब्रीयुल के निम्न और उच्च ऑरिग्नेशी क्रमशः निम्न पेरीगार्डी या शैटेल्पेरानी और उच्च पेरीगार्डी या ग्रैवेती-फ़ाण्ट रॉबर्ट कहे जायेंगे। वे एक ही परंपरा (पेरीगार्डी) के अंग होंगे। यद्यपि ऑरिग्नेशी संस्कृति के ऑरिग्नेशी और पेरीगार्डी दोनों ही उपविभागों में विभिन्न प्रकार के ब्लेड-उपकरण, अंत-स्क्रेपर तथा ब्यूरीन (ग्रेवर) काम में लाये जाते रहे, फिर भी इन परंपराओं की अपनी विशेषताएँ हैं।

यूरोप के उच्च पुरापाषाण का, उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार, आरंभ **निम्न पेरीगार्डी** (Lower Perigordian) या **शैटेल्पेरानी** (Chatelperronian) से हुआ। कई गुफ़ाओं में यह उपसंस्कृति मुस्तीरी स्तर के ऊपर पाई गई है लेकिन उससे इसका उत्पत्ति-संबंध नहीं है। इसके मुख्य उपकरण ब्यूरीन (ग्रेवर), ब्लेड-फ़्लेक तथा अंतस्क्रेपर आदि हैं। इस उपसंस्कृति का सबसे विशिष्ट उपकरण तो वह पार्श्वपुनर्गढ़ित (बैक्ड) ब्लेड है जिसे शैटेल्पेराँ नाइफ़ ब्लेड कहा जाता है। हैण्डैक्स एकाध ही पाये जाते हैं। लीकी का मत है कि हैण्डैक्स को शैटेल्पेरानी लोग आनुष्ठानिक अवसरों पर

२५. लीकी, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ११६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही काम में लाया करते थे, साधारण उपकरण की तरह नहीं।[२६] इसका कारण वे शैटेल्पेरानी का हैण्डैक्स परंपरा से शैटेल्पेरानी की उत्पत्ति को मानते हैं। इसी उपसंस्कृति के साथ यूरोप में कला और हड्डी के बने **छिद्रक** (ऑल या बोरर) का प्रचलन आरम्भ हुआ।

ग्रैवेती-फ़ाण्ट रॉबर्ट उपसंस्कृति (उच्च पेरीगार्डी) को अधिकांश प्रागितिहासज्ञ शैटेल्पेरानी का विकसित रूप मानते हैं। इसका विशिष्ट उपकरण, ग्रैवेत नाइफ़-ब्लेड, शैटेल्पेरानी नाइफ़-ब्लेड से छोटा और सुघड़ होता है। उसका भुथरा पृष्ठ कार्यांग के लगभग समानान्तर होता है और दोनों मिल कर नोकीला ऊपरी छोर बनाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के ब्यूरीन (ग्रेवर)-आदि भी पाये जाते हैं। अधिक विकसित फ़ाण्ट रॉबर्ट प्रक्रम (स्टेज) में **द्विस्कंध अस्त्राग्र** (डब्ल शोल्डर्ड प्वाइण्ट्स्) तथा नोवैली (Noailles) या बहुकोण-ग्रेवर (ब्यूरीन) बनाये गये। ग्रैवेती-फ़ाण्ट रॉबर्ट उपसंस्कृति दक्षिण रूस से पूर्वी फ्रांस तक फैली थी। जंगली गाय, बैल, घोड़े और बारहसिंघा इन लोगों के प्रमुख आखेट-पशु थे। पूर्व में ग्रैवेती लोग खाइयाँ खोद कर **महाकुंजर** (मैमथ) का शिकार करते थे। फ्रांस में अन्य पशुओं की अपेक्षा घोड़े के शिकार में अधिक रुचि दिखाई जाती थी। हाथी-दाँत के अनेक उपयोग इन लोगों को मालूम थे। ग्रैवेती लोग कलाप्रिय थे। इनकी सबसे प्रसिद्ध कला-कृति हाथी-दाँत, पत्थर या हड्डी में गढ़ी गई महिला-मूर्त्तियाँ हैं। इन्हें 'वीनस्' कहा जाता है। रंग आदि का इस्तेमाल करना भी इन लोगों को आता था। इन सब का वर्णन आगे किया जायगा।

ऑरिग्नेशी उपसंस्कृति (ब्रीयुल का मध्य ऑरिग्नेशी) की अपनी ही परम्परा है। साधारणतः इसमें वे सभी ब्लेड, ब्यूरीन (ग्रेवर) तथा स्क्रेपर पाये जाते हैं जो अन्य उच्च पुरापाषाण संस्कृतियों अथवा उपसंस्कृतियों में भी पाये गये हैं। इस उपसंस्कृति के विशिष्ट प्रस्तर-उपकरण **मध्योभार** (कील्ड) स्क्रेपर तथा चंच्वाकार (बीक्ड) ग्रेवर हैं। इन उपकरणों पर पुनर्गढ़न फ़्लूटिंग् प्रविधि से किया गया है। इस प्रविधि का सर्वाधिक विकसित रूप इन्हीं उपकरणों के बनाने में देखा गया है। किंतु इससे अधिक महत्त्वपूर्ण काम जो इस उपसंस्कृति में हुआ वह हड्डी और बारहसिंघा के सींग को फाड़ कर, रेत कर तथा रगड़ कर उनसे अस्थि (हड्डी)-उपकरण बनाया जाना है। पालिश किये हुए हड्डी के पिन या छिद्रक, रुखानी,

२६. लीकी, (१९५३), वही, पृष्ठ ११६–११७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उज्जक या गोल रुखानी आदि बनाये जाते होंगे। सबसे अधिक उल्लेखनीय तो वह भाले की नोक है जिसका आधार बेंट लगाने के लिये फाड़ दिया जाता है। इसको **विदारित-आधार-अस्थि-भाला-अग्र** (Split-base bone lance point) कहा जाता है। हड्डी के गहने भी बनाये जाते होंगे।

सॉल्यूत्री (Solutrean)

जिसके नाम पर सॉल्यूत्री संस्कृति का नाम रखा गया है वह पूर्व-मध्य फ्रांस का सॉल्यूत्र (Solutre) स्थान है। यह संस्कृति प्रभाव और अवधि दोनों में ही अल्पकालिक थी। दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस तथा स्पेन के उत्तर-पूर्वी तटीय प्रदेश में इस संस्कृति का अपेक्षाकृत विकसित स्वरूप देखने को मिलता है। यहाँ सॉल्यत्री संस्कृति के स्तर ऑरिग्नेशी-पेरीगार्डी स्तरों के ऊपर पाये जाते हैं। अन्य प्रदेशों में ऐसे कोई लक्षण नहीं मिलते हैं क्योंकि वहाँ मैग्दलेनी संस्कृति सॉल्यत्री के व्यवधान के बिना ही ऑरिग्नेशी-पेरीगार्डी से विकसित होती पाई जाती है। सॉल्यूत्री की उत्पत्ति के संबंध में प्रागितिहासज्ञ एकमत नहीं हैं। बर्किट का मत है कि अपने विशेष अस्त्र—लॉरेल लीफ़ और विलो लीफ़ भाला-अग्रों—से सुसज्जित हो सॉल्यूत्री लोगों ने पश्चिमी यूरोप पर आक्रमण कर दिया होगा।[२७] किंतु मोविअस को, उनके ही कथनानुसार, अधिकांश प्रागितिहासज्ञों का समर्थन प्राप्त है जब वे यह कहते हैं कि सॉल्यूत्री को विचारों का आक्रमण माना जाना चाहिये न कि अच्छे हथियारों से लैस बलशाली लोगों का।[२८] बर्किट भी ऊपर उद्धरित पैराग्राफ़ में ही कुछ ऐसी ही बातें करते पाये जाते हैं।[२९] श्री लोथार ज़ाज़ (Lothar Zotz) ने अपने आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर प्राक्-सॉल्यत्री (Pre-Solutrean) उपसंस्कृति की विद्यमानता का मत प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार वास्तविक सॉल्यूत्री उपकरणों से मिलते-जुलते पत्ती की आकृति वाले द्वितलीय अस्त्राग्र मध्य यूरोप के अंत एश्यूली एवं मुस्तीरी उपकरणों के साथ पाये गये हैं। श्री ज़ाज़ इनको प्राक्-सॉल्यूत्री का मूल स्रोत और प्राक्-सॉल्यूत्री उपसंस्कृति को शैटेल्पेरानी के समानांतर और समकालीन मानते हैं। विभिन्न उच्च पुरापाषाण परंपराओं से प्रभावित होकर ग्रैवेती

---

२७. बर्किट, (१९५५), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १५३
२८. मोविअस, (१९५३), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १७४
२९. बर्किट, (१९५५), पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपसंस्कृति के समय में ही मध्य यूरोप में यह लाक्षणिक (टिपिकल) सॉल्यूत्री में प्रस्फुटित हुआ होगा ऐसा उनका अनुमान है।[३०]

अंत-स्क्रेपर, छिद्रक, अस्त्राग्र (प्वाइंट्स्) तथा ब्यूरीन (ग्रेवर)-आदि ब्लेड उपकरण अन्य उच्च पुरापाषाण संस्कृतियों की तरह सॉल्यूत्री में भी पाये गये हैं। ये उपकरण ऑरिग्नेशी और पेरीगार्डी उपसंस्कृतियों के प्रकारों से भिन्न नहीं हैं। सॉल्यूत्री की विशेषता तो उसके नियमी, समानांतर और चपटे फ़्लेकीकरण कला के कारण है जिसका पूर्ण विकास लॉरेल लीफ़ और सॉल्यूत्री एकस्कंध अस्त्राग्रों के बनाने में हुआ। बर्किट के **आद्य-सॉल्यूत्री** (Proto-Solutrean) की ज़ाज़ के **प्राक्-सॉल्यूत्री** (Pre-Solutrean) से तुलना की जा सकती है। इसके लॉरेल लीफ़ अत्यंत रूक्ष होते हैं। उन पर संघात-फ़्लेकीकरण के काफ़ी चिन्ह होते हैं। मोविअस के अनुसार निम्न सॉल्यूत्री के अस्त्राग्रों के ऊपरी सतह पुनर्गढ़ित होते हैं। निचली सतह पर से अर्धशंकु गढ़ कर निकाल दिया गया होता है और उपकरण की नोक छोटे-छोटे फ़्लेक निकाल कर बनाई गई होती है। लाक्षणिक सॉल्यूत्री मध्य सॉल्यत्री कही जाती है। इसके लॉरेल लीफ़ अस्त्राग्र दोनों तलों पर आद्योपांत निपीड़ (दबाव) प्रविधि से फ़्लेकीकृत होते हैं। ये उपकरण दो इंच से एक फ़ुट तक लंबे होते हैं। कुछ तो इतने बड़े और पतले होते हैं कि वे उपकरण की तरह इस्तेमाल नहीं किये जा सकते हैं। उच्च सॉल्यूत्री में एकस्कंधी (सिंगिल शोल्डर्ड) अस्त्राग्रों की बहुलता होने लगी थी। इस संस्कृति में कला कुछ अधिक प्रगति नहीं कर सकी। शायद इसलिये कि इस संस्कृति के रचयिताओं का कौशल और उनकी दक्षता की अभिव्यक्ति पत्थर के उपकरण या उनके नमूने बनाने में परिलक्षित होती है।

मैग्दलेनी (Magdalenian)

फ्रांस के दार्दाँ प्रदेश की मदेलीन (La Madeleine) के चट्टान-शरण-स्थल पर मैग्दलेनी (Magdalenian) संस्कृति के परिचयात्मक अवशेष पाये गये हैं। इसका आगमन **हिमयुग** के अंतिम चरण में हुआ और इसकी समाप्ति भी हिमयुग (प्रातिनूतन या प्लाइस्टोसीन्) के साथ ही हुई। इस संस्कृति का मूलस्रोत ऑरिग्नेशी संस्कृति थी। फ्रांस के बाहर, जहाँ सॉल्यूत्री 'आक्रमण' नहीं हुआ था, मैग्दलेनी प्रत्यक्ष रूप से ऑरिग्नेशी से विकसित

---

३०. मोविअस, (१९५३), पाश्र्वोद्धरित, पृष्ठ १७४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिलती है। साधारण ब्लेड उपकरण इस संस्कृति में उसी तरह पाये जाते हैं जैसे इसके पूर्ववर्ती उच्च पुरापाषाण संस्कृतियों में। विशेष उल्लेखनीय मैग्दलेनी उपकरण चंच्वाकार ग्रेवर तथा स्क्रेपर-छिद्रक और उभय-अंत-स्क्रेपर जैसे मिश्रित उपकरण हैं। मैग्दलेनी पत्थर के उपकरण सुन्दर हैं, लेकिन इस संस्कृति की विशेषता इसके हड्डी के काम के कारण कहीं अधिक है। इसमें हड्डी, हाथी-दाँत और बारहसिंघा के सींग की भाँति-भाँति की वस्तुएँ बनाई गईं। इनमें भाले की नोक, मछली मारने के लिए मत्स्य-अंकुश और **द्व्यंकुश** (वार्ब), आँख वाली सुइयाँ तथा **भाला फेंकने वाला** (Spear thrower) मुख्य हैं। हड्डी का एक और पदार्थ **'आज्ञा-दंड'** (Baton de commandament)कहा जाता है। ऐसा अनुमान है कि यह लकड़ी या हड्डी के बने भाले अथवा तीर के डंडे या मुठिया को सीधा करने के काम में लाया जाता होगा। भाले या तीर के डंडे को पानी में भिगो कर या भाप में मुलायम और फिर 'आज्ञा-दंड' के छेद में से निकाल कर सीधा कर लिया जाता होगा।

मैग्दलेनी के कई उपविभाग उनमें पाये गये अस्थि-उपकरणों के अनुसार किये जाते हैं। निम्न मैग्दलेनी में प्रस्तर उपकरण प्रधान होते हैं। इसमें **मत्स्य-बर्छी** (Harpoon) नहीं पायी जाती है लेकिन चपटे, **शंक्वाकार** (कोनिकल) अथवा **प्रवणित** (beveldel) भालों की नोक हड्डी के बने होते हैं। मध्य मैग्दलेनी से उच्च मैग्दलेनी तक मत्स्य-बर्छी का विकास-क्रम देखा जा सकता है। आरंभ में मत्स्य-बर्छी के तने या लम्बे भाग में अंकुश न बना कर खोखले बना दिये जाते थे। इससे बर्छी मछली के शरीर में प्रवेश तो सरलता से कर जायगी लेकिन निकलते समय फँस जायगी। ऐसी मत्स्य-बर्छियाँ मध्य मैग्दलेनी में बनाई गईं। आगे चल कर तने के एक ही किनारे पर अच्छी तरह गढ़े हुए नोकीले अंकुश बनने लगे। इसके बाद ऐसी मत्स्य-बर्छियाँ बनाई जाने लगीं जिनमें अंकुश तने के दोनों किनारों पर एक दूसरे के सामने या **एकांतरतया** (आल्टर्नेटली) होते। मैग्दलेनी मत्स्य-बर्छियों के सम्यक् परीक्षण पर प्रागितिहासज्ञों को उनके अंकुशों की गढ़न में भी क्रमिक विकास का पता चलता है। कालांतर में नोकीले के स्थान पर चौड़े, नीचे झुके हुए और संमितीय अंकुश बनने लगे थे जो बीच में रेखांकित होते थे।

मैग्दलेनी लोगों का गुफ़ा-मुखों से बड़ा घनिष्ठ संबंध था। वे उनके निवास-स्थल थे, लेकिन वर्ष भर के लिए नहीं। जाड़े के दिनों में ठंडक बढ़ जाने के कारण वे गुफ़ा-मुखों में रहते थे क्योंकि उनके आखेट-पशु भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन दिनों विचरण नहीं करते थे। गर्मी के दिनों में ये लोग अपने आखेट-पशुओं के पीछे खानाबदोशों की तरह घूमते थे। इन दिनों अपने रहने के लिए ये लोग अस्थाई—झोपड़ियाँ या तंबू—अवश्य बनाते होंगे। कई स्थानों पर प्राप्त साक्षियों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन प्रदेशों में शायद जाड़े के दिनों में भी मिट्टी के घर बना कर रहने का प्रचलन रहा होगा। मॅग्दलेनी संस्कृति में उच्च पुरापाषाण कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। कला का जो चतुर्दिक विकास इस संस्कृति में देखने को मिलता है वह आश्चर्यजनक है। अपने सौष्ठव के लिये कुछ कला-कृतियाँ चिर-काल तक याद रखी जायँगी।

उच्च पुरापाषाण कला (Upper Palaeolithic Art)

आदि-मानव की कलात्मक वृत्ति और उसकी अभिव्यक्ति के आरंभिक स्वरूप का हमारा ज्ञान तथ्य-आधारित कम और कल्पना-आधारित अधिक है। कला का जो विकास हमें उच्च पुरापाषाण संस्कृतियों में देखने को मिलता है उससे यह स्पष्ट है कि हम उसे आदि-कला का आदि-स्वरूप नहीं मान सकते। किंतु उच्च पुरापाषाण के पहले कला का क्या स्वरूप था इसकी हमें कोई विश्वसनीय साक्षियाँ प्राप्त नहीं हो सकी हैं। इस कारण हम यह भी बताने में समर्थ नहीं हैं कि **अंकन-कला** (Graphic art) का आगमन पहले हुआ अथवा **अभिघटन (गढ़न)-कला** (Plastic art) का। सरलतम **उद्रेखण प्रविधियाँ** (Drawing techniques) के अंतर्गत बालू, भूमि अथवा गीली मिट्टी में उंगली की पोर से बनाये गये चित्रों का समावेश किया जा सकता है। **उद्रेखण** (ड्रॉइङ्ग) की यह प्रविधि उच्च पुरापाषाण के पहले भी अपनाई गई होगी इसमें कोई संदेह नहीं, किंतु हमें इसके कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। फ्रांस के **पेक्-मर्ल** (Pech-Merle) के विशाल चट्टान-शरण-स्थल की छत में उंगली की पोर से उद्रेखित कुछ चित्र उपलब्ध हुए हैं जो हज़ारों वर्ष पहले उद्रेखित होने पर भी छत की मिट्टी के गीले होने तथा हिमयुग की समाप्ति पर प्रवेश-द्वार के बंद हो जाने के कारण अब तक बच रहे हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति का दूसरा आरंभिक माध्यम पशुओं-आदि की आकृति के **मिट्टी के नमूने बनाना** (Modelling) रहा होगा। इसके बारे में भी कुछ अधिक कहना संभव नहीं है क्योंकि **उंगली की पोर से उद्रेखण** (Finger-tip drawing) की तरह यह भी विशेष परिस्थितियों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही विनाश से बच पाता है। फ्रांस की त्यूक् द ऊदौबेग़(Tuc d' Audoubert) गुफ़ा में मिट्टी की बनी साँड़ की एक प्रतिमा पायी गई है जो सौभाग्यवश नष्ट होने से बच गई है। जिस तरह कई प्रकार के पेड़ों की छाल और मुलायम पत्थर पर अंकित **अंकन-कला** (ग्राफ़िक आर्ट) नष्ट हो गयी होगी उसी तरह लकड़ी और बिना पकाई मिट्टी के बनाये हुए अनेक पशु-आकृति के नमूने हमें उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

उच्च पुरापाषाण उपकरणों में ब्यूरीन या ग्रेवर का प्रमुख स्थान है। साधारण घरेलू कार्यों के अतिरिक्त इसका विशेष कार्य **उत्किरण** (Engraving) भी था। कदाचित् यही कारण है कि इसे **उत्कीरक** (Engraver) या 'ग्रेवर' नाम दिया गया है। **उत्किरण (एन्ग्रेविंग्)** के लिये जिन पदार्थों का इस्तेमाल किया गया है उनमें पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े या कभी-कभी पत्थर के उपकरण, हड्डी, हाथी-दाँत और बारहसिंघा की सींग के टुकड़े आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त मँग्दलेनी मत्स्य-बर्छियों (हार्पून) तथा भाले और तीरों के डंडों को सीधा करने वाले 'आज्ञा-दंडों' के ऊपर रेखायें या सुंदर पशु-आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। उच्च पुरापाषाण उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) के दो प्रमुख प्रकार पाये जाते हैं। उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) का एक प्रकार वह है जिसमें सीधी रेखा के स्थान पर छोटे-छोटे गड्ढे खोदे गये हैं (Pecked engraving)। इस प्रविधि का प्रागैतिहासिक यूरोप में प्रचलन बहुत कम था। एकाध नमूने मिले हैं जो बड़े-बड़े चट्टानों के एक अंश पर बनाये गये हैं जो आदि से अंत तक खुदे हुए हैं। दूसरे प्रकार का उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) सीधी या **वक्र खुदी-रेखाओं** (Incised-line) में किया जाता है। यूरोप में मुख्य रूप से यही पाया जाता है। इसमें विकास-क्रम पाया जाता है। आरंभ में पशु-आकृति के साधारण खाके (वाह्याकृतियाँ) एक ही रेखा में खींचे गये हैं। ऐसा लगता है मानो छाया को एक रेखा में बाँध कर अंकित किया गया हो। कालांतर में इससे अच्छा उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) किया गया जो एक ही रेखा में खाका-मात्र नहीं था। इसमें पशुओं के पैर, सिर और सींग आदि भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। और बाद के उत्किरणों (एन्ग्रेविंग्स्) का खाका संतत रेखा में नहीं बनाया गया है। यथाशक्ति इस बात की चेष्टा की गई है कि उत्कीर्ण पशु के **तीनों परिमाण** (थ्री-डाइमेन्शन्स्) प्रस्तुत किये जा सकें। सर्वोत्कृष्ट उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) मँग्दलेनी संस्कृति में बनाये गये। इनमें विशेष उल्लेखनीय बारहसिंघों के एक झुण्ड का उत्किरण है। यह सांकेतिक-चित्रण का कमाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा जा सकता है। इसमें कलाकार ने आगे के तीन बारहसिंघों तथा सबसे पीछे के एक बारहसिंघे का चित्र उत्कीर्ण किया है। बीच के बारहसिंघों की केवल सींगे दिखाई गई हैं। खुदी-रेखाओं वाले उत्किरण (इन्साइज़्ड-लाइन एन्ग्रेविंग्) में एक दूसरा विकास-क्रम भी देखा गया है। पहले उत्किरण गहरी रेखायें खोद कर किया जाता था। धीरे-धीरे यह गहराई कम होती गई। बाद में तो केवल ऊपरी सतह को खुरच भर दिया जाता था।

डॉ० लीकी **रंगीन उद्रेखण** (Coloured drawing) और **रंगीन लेपचित्र** (Coloured painting) में भेद करना आवश्यक मानते हैं।[३१] रंगीन उद्रेखण (ड्राइंग्) रासायनिक रंगों की **सूखी पेंसिलों** (Crayons) से खींचे गये वे चित्र हैं जिन्हें साधारण रूप से **लेपचित्रण** (पेण्टिंग्स्) की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया जाता है, हालांकि वे उनसे सर्वथा भिन्न हैं। लेपचित्र (पेण्टिंग्) कलात्मक अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम है जिसमें उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) या उद्रेखण (ड्राइंग) की अपेक्षा अधिक तैयारी और अधिक सामग्री की आवश्यकता होती है। किन्तु लेपन के पूर्व उचित रंगों का चयन और उन्हें उसके उपयुक्त बनाने के लिए काफ़ी परिश्रम और बुद्धि लगाने की ज़रूरत होती है। उच्च पुरापाषाण कलाकारों की रुचि और रंगों के बारे में उनका ज्ञान हमें आश्चर्यचकित कर देता है। अनेक उच्च पुरापाषाण निवास-स्थानों में **गेरू** (Red ochre) और अन्य ऐसे ही रासायनिक पदार्थों के ढेर पाये जाते हैं। ये उच्च कोटि के स्थायी रंगों की तरह इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उच्च पुरापाषाण कलाकार विभिन्न प्रकार के रंग काम में लाया करता होगा। उनमें से कुछ अस्थायी होने के कारण आज तक बच नहीं सके हैं, जैसे हरी तरकारियों के लेप आदि। हड्डियों को जला कर काला रंग प्राप्त किया जाता होगा। इसके अतिरिक्त भाँति-भाँति के गहरे भूरे मैंगनीज़ आक्साइड, पीले आयरन कार्बोनेट, लाल और काले रंग प्रदान करने वाले अन्य आयरन एवं मैंगनीज़ आक्साइड इनको प्राकृतिक सूत्रों से प्राप्त होते थे। इन पदार्थों को खरल में पीस लिया जाता था। वह तरल पदार्थ जिसमें घोल कर लेप तैयार किया जाता था वह अधिकतर पानी और कभी-कभी पशु-मज्जा होता था। इस लेप को गहरे पत्थर या हड्डी या शंख और कभी-कभी आदमी की खोपड़ियों में रखा

---

३१. एल० एस० बी० लीकी, १९५३, पादवोंद्धरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता था। रंगलेपन की सबसे सरल विधि उँगली की पोर को रंग में डुबा कर रंगना है। उच्च पुरापाषाण कलाकार लेपचित्रण की यह सरलतम पद्धति अपनाता था यह स्पेन की पिलेता (Pileta) की गुफ़ा में पाये गये हरिण के चित्र से पता चलता है। **लेप-चित्रण** (पेंटिंग्) का दूसरा तरीका **रंग-लेपन** (Daubing) का था। इसमें खाका उँगली की पोर को रंग में डुबो कर या किसी और दूसरे ढंग से तैयार किया जाता था। उस खाके में रंग भरने या लीपने का काम उँगली की पोर, कभी-कभी जानवरों के बाल या दूसरे मुलायम पदार्थ द्वारा किया जाता था। रंग लीप कर लेपन चित्रण (Daubing) कभी-कभी खाका बनाये बिना भी किया जाता था। ऐसा अनुमान है कि जिस काम के लिए उँगली के पोर को इस्तेमाल किया जाता था, उस काम के लिए लकड़ी या पत्थर के टुकड़े भी काम में लाये जाते होंगे। लेकिन लेपचित्रण—**एकरंगा** (Monochrome) तथा **बहुरंगा** (Polychrome)—का जो चतुर्मुखी विकास मैग्दलेनी संस्कृति के अंत तक, विशेष रूप से गुफ़ाओं की दीवालों पर रंगे गये चित्रों में, देखने को मिलता है वह उँगली की पोर से या लीप कर नहीं संभव हो सकता था। उस समय 'फ़र' वाले अनेक पशु विद्यमान थे और उच्च पुरापाषाण मानव उनके संपर्क में भी आता था। यह मानना निरी कल्पना नहीं होगी कि स्पेन की आल्तमिरा (Altamira) की गुफ़ा की छत में पाये गये साँड़ के उस बहुरंगी लेपचित्र को जिसमें एक साथ ही चार रगों का प्रयोग किया गया है, चित्रित करने के लिए पशुओं के बाल से बनाई गई तूलिकाओं (ब्रुशों) का इस्तेमाल किया गया होगा। स्पेन के **कण्टेब्रिया पहाड़ों** (Cantabria mountains) की कैवालानाज़ गुफ़ा (Covalanas cave) में घोड़े का एक लेपचित्र (पेंटिंग्) मिलता है जो बिंदियों से बनाया गया है। इससे यह पता चलता है कि प्रागैतिहासिक मानव लकड़ी के टुकड़े या उस टुकड़े के किनारे पर फ़र बाँध कर रंग में डुबो उससे ठप्पा देकर जानवरों के पूरे चित्र या कभी-कभी केवल खाके भी बनाया करता था। लेपचित्रण (पेंटिंग्) का एक अप्रत्यक्ष रूप भी अपनाया गया था जिसे **छिड़काव-लेपचित्र** (Spray-painting) कहते हैं। इस पद्धति द्वारा मानव हाथों के, जिनमें प्रायः उँगलियाँ कटी हैं, अप्रत्यक्ष चित्र चित्रित किये जाते थे। हाथ को उपयुक्त स्थान पर रख कर उसके चारों ओर मुंह में भर कर रंग छिड़का जाता था। लेप-चित्रण का वर्णन समाप्त करने के पहले यह बतला देना आवश्यक होगा कि उच्च पुरापाषाण मानव कलात्मक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिव्यक्ति के इन विभिन्न माध्यमों (तरीकों) को सर्वदा तथा सर्वथा असंबद्ध नहीं रखता था। फ्रांस के फ़ान्त-द-गाम (Font-de-Gaume) के गुफ़ा का बारहसिंघा का चित्र और फ्रांस की ही थ्वा-फ्रे (Trois-Fres) की गुफ़ा के सुप्रसिद्ध ओझा (Sorcerer) का चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इनमें उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) और लेपचित्रण (ड्राइंग) प्रविधियों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है।

अभी तक हम उच्च पुरापाषाण **अंकन-कलाकृति** (Graphic Art) का वर्णन करते रहे थे। **अभिघटन-कला** (Plastic Art) में मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने का एक विशेष स्थान है। पशुओं की आकृति के नमूने (Modelling) के बारे में हमने ऊपर कुछ बतलाया है। उच्च पुरापाषाण अभिघटन-कला (Plastic Art) के अंतर्गत् **उद्भृत** (Bas relief)—**गहरा** तथा **उभरा हुआ** (Low and High)—और **शिल्पकला** (Sculpture) का वर्णन किया जायगा। **उभरे उद्भृत** (High relief) के हमें एकाध ऐसे भी नमूने मिलते हैं जिनमें गीली मिट्टी से पशु-आकृति बनाकर उसे दीवाल के ऊपर थोप दिया गया है। यह स्वाभाविक है कि इतने समय के बाद इस प्रकार की कलाकृतियों के नमूने शायद ही मिलें। फ्रांस के दार्दां (Dordogne) प्रदेश में कैप-ब्लाँ (Cap Blanc) नामक एक स्थान है। यहाँ **गहरे उद्भृत** (Low relief) का एक ऐसा उत्कृष्ट नमूना मिलता है जिसे देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। यहाँ पूरे आकार के एक घोड़े का चित्र दीवाल के अंदर खुदा हुआ मिलता है। यह ठीक-ठीक बताना कठिन होगा कि ऐसी कलाकृति के लिए कौन-से औज़ार काम में लाये गये होंगे। शायद हैण्डैक्स-प्रकार के उपकरणों से काटने का मोटा काम किया जाता होगा। अधिक बारीक़ काम करने के लिए ब्यूरीन (ग्रेवर) इस्तेमाल किया जाता होगा। कुछ भी हो, ऐसे भुथरे औज़ारों से इतना सुन्दर गढ़न-कार्य अपूर्व दक्षता का प्रतीक है। उभरे उद्भृत (High relief) का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण एक महिला का चित्रण है जो एक हाथ में बारहसिंघा की सींग का एक टुकड़ा ले जाती हुई प्रतीत होती है। **शिल्प-कला** (Sculpture) का काम प्रायः हाथी-दाँत, बारहसिंघा की सींग और हड्डी पर किया गया है। ऐसा अनुमान है कि लकड़ी भी इस काम के लिए इस्तेमाल की जाती होगी। उपर्युक्त पदार्थों पर शिल्प-कार्य ब्यूरीन, पत्थर के चाक़ू, छोटे-छोटे आरों तथा **नतोदर-ब्यूरीनों** (कॉन्केव ग्रेवरों) से किया जाता होगा। शिल्प-कला के विशेष उल्लेखनीय नमूने ऑरिग्नेशी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्री-आकृतियाँ हैं। उनके सिर चटाई जैसी किसी वस्तु से ढके लगते हैं। गुप्तांगों को आवश्यकता से अधिक प्रधानता दी गई है। इसका कोई विशेष उद्देश्य रहा होगा। इन स्त्री-आकृतियों को "वीनस्" (Venuses) कहा गया है। अभिघटन-कला (Plastic Art) का एक और प्रकाश हड्डी की पतली पट्टियों पर गढ़ी गई **वाह्याकृतियाँ** (Bone silhouettes) हैं। ये इतनी मोटी नहीं हैं कि इनको शिल्प-कला की श्रेणी में रखा जा सके। कभी-कभी आँखें और मुँह आदि उत्कीर्ण कर बने होते हैं और कभी नहीं भी।

अब तक हम उच्च पुरापाषाण कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यमों (तरीक़ों) का वर्णन कर रहे थे। इस युग की सम्पूर्ण कलाकृतियों को दो भागों में बाँटा जाता है। **गुफ़ा-मुखों और चट्टान-शरण-स्थलों** (Rock Shelters) में जो कलाकृतियाँ पाई गईं हैं उनमें से अधिकांश **वहनीय** (Portable) हैं। इसी से कुछ लोग इनको एक संयुक्त नाम **'वहनीय कला'** (Portable Art) देना पसन्द करते हैं। पत्थर, हड्डी, बारहसिंघा की सींग और हाथी-दाँत आदि पर उत्किरण (एन्ग्रेविग्) या उनका **तक्षण** (Carving), शिल्पकला के सुन्दर नमूने, हड्डी और हाथी-दाँत के भाले की नोक, 'आज्ञा-दंड', भाला **फेंकने का औजार** (Spear-thrower) तथा मत्स्य-बर्छियाँ (हार्पून) गढ़ी या उत्कीर्ण हैं। गहरे और उभरे उद्भृत (Low and High Relief) के उदाहरण भी इन उच्च पुरापाषाण घरों में पाये जाते हैं। इन सब के अतिरिक्त घरों की दीवालों को सजाने के लिए लेपचित्र (पेंटिग्) के एकाध नमूने भी देखने को मिल जाते हैं। यह स्पष्ट है कि ये लेपचित्र वहनीय नहीं हैं। इसलिये 'वहनीय कला' (Portable Art) की अपेक्षा बर्किट द्वारा प्रस्तुत् **गृह-कला** (Home Art) नाम अधिक समीचीन जान पड़ता है। ऊपर लेपचित्र (पेंटिग्) और उत्किरण (एन्ग्रेविग्) के जिन उत्कृष्ट नमूनों का वर्णन किया गया है वे उच्च पुरा-पाषाण गृहों—गुफ़ा-मुखों या चट्टान-शरण-स्थलों—में न पाये जाकर **गुफ़ा-अंतःस्थों** (Cave interiors) की दीवालों (भित्तियों) पर चित्रित मिलते हैं। उँगली की पोर से किये गये उद्रेखण (Finger-tip drawing) के एकाध उपलब्ध उदाहरण भी इन्हीं गुफ़ाओं की छतों में बने मिलते हैं। गुफ़ा अंतःस्थ में विद्यमान इन कलाकृतियों को **गुफ़ा-कला** (Cave Art) या **भित्ति-कला** (Mural Art) के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। गुफ़ाओं के वे अंतःस्थ, जहाँ कला के ये सुदरतम नमूने बनाये गये हैं, एकदम अंधेरे हैं। बिना कृत्रिम प्रकाश के ये चित्रकारियाँ नहीं की जा सकती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाये गये पत्थर के दीपक इस बात के साक्षी हैं कि जलती हुई आग में से लकड़ी का एक जलता हुआ टुकड़ा निकाल कर इन गुफ़ा अंतःस्थों में चित्रकारी नहीं की गयी थी। दीपक में जानवरों की चर्बी को तेल और काई या सेवार को बत्ती की तरह जलाकर धीमी किन्तु अपेक्षाकृत संतत प्रकाश की व्यवस्था की गई होगी।

उच्च पुरापाषाण भित्ति-कला (Upper Palaeolithic Mural Art) के विषय प्रायः भालू और शेर जैसे भयंकर पशु अथवा साँड, मछली, **महाकुंजर** (Mammoth) तथा बारहसिंघा आदि भोज्य-पशु आदि थे। मानव-आकृतियाँ बहुत कम हैं और अच्छी नहीं बनी हैं। हाथ के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष निशान प्रायः मिलते हैं। उनमें एक बात प्रायः देखने को मिलती है। लेपचित्रणों (पेंटिंग्स्) और उत्किरणों (एन्ग्रेविंग्स्) की कई परतें देखी जा सकती हैं क्योंकि एक ही स्थान पर एक के ऊपर एक बनाये गये अनेक चित्र पाये जाते हैं। यह एक ऐसी विचित्र बात है कि जो हमें उच्च पुरापाषाण कला के उद्देश्य और प्रेरक-तत्वों के सम्बन्ध में जानने को बाध्य करती है। कला के कई सर्वमान्य उद्देश्यों में आत्माभिव्यक्ति और 'अलंकरण' (सजावट) विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गृह-कला के अधिकांश नमूने इन्हीं उद्देश्यों से बनाये गये होंगे। इसके अतिरिक्त पत्थर, हड्डी, हाथी-दाँत आदि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर अंकित उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) गुफ़ा-अंतःस्थों के कुछ उत्किरण और लेपचित्र (पेंटिंग्) स्मरणार्थ बनाये गये होंगे इसमें भी सन्देह नहीं। विशेष रूप से पत्थर-आदि के टुकड़ों पर चित्रांकन जल्दी में किये गये होंगे जिससे उस छवि की याद कलाकार के स्मृति-पटल से निकल न जाय जिसने उनका मन मोह लिया था। इस स्वाभाविक और सहज उद्देश्यों एवं प्रवृत्तियों के संबंध में संदेह न होने पर भी हम यहीं रुक सकने में समर्थ नहीं हैं। यदि यही उद्देश्य थे तो फिर गुफ़ा-अंतःस्थों में और एक दूसरे के ऊपर लेपचित्रण (पेंटिंग्) और उत्किरण (एन्ग्रेविंग्) की आवश्यकता क्या थी? इसके अतिरिक्त घायल पशुओं और **त्र्वा फ्रेग** (Trois Freres) के ओझा के अंकन-चित्रण क्यों किये गये थे? यह तो स्पष्ट है कि जिन लोगों ने ऐसा किया था न तो वे आज हैं और न ही उन्होंने कोई विश्वसनीय साक्षियाँ छोड़ी हैं जिनके आधार पर समुचित व्याख्या की जा सके। किंतु फिर भी **वर्त्तमान आदिम जातियों** (Contemporary primitives) के जीवन-वृत्तों के आधार पर व्याख्या करने की चेष्टा की जा सकती है। यहाँ यह सिद्ध हो जाता है कि स्वतंत्र प्रतीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने पर भी प्रागितिहास नृतत्त्व की शाखा के रूप में ही उचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। ऐसा अनुमान है कि साधारण और सर्वमान्य उद्देश्यों के अतिरिक्त जादू-टोना का भी विशेष स्थान था। इन लोगों में ऐसी किसी प्रथा का होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं मानी जानी चाहिये। दिन भर किसी आखेट-पशु का पीछा करते-करते उच्च पुरापाषाण शिकारी उसको घायल करने में समर्थ हो गया लेकिन उसको हस्तगत करने के पहले संध्या हो गई। वह पशु कल उसको ही प्राप्त हो सके इसके लिए उसको 'बाँधना' आवश्यक था। इसका प्रबंध करने के लिए वह कलाकार के पास गया जो चित्रण-अंकन द्वारा यह काम कर सकेगा। 'बाँधी' हुई सामग्री अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित मानी जाती होगी। साधारणतः यह काम उस स्थान पर किया जाना चाहिए जहाँ कोई दूसरा व्यक्ति पहुँच न सके। शायद इसीलिये गुफ़ा-अंतःस्थ चुने जाते थे। और भी अच्छा यह होगा कि उस पशु का चित्र पत्थर, हड्डी या हाथी-दाँत पर अंकित करा कर शिकारी उसे अपने साथ ले जाय जिससे कोई दूसरा व्यक्ति उसे न पा सके। चित्रों के **अध्यारोहण** (सुपरपोज़िशन) का कारण उस स्थल की पवित्रता या उपयोगिता मानी जा सकती है। पूर्ववर्त्ती कलाकार के चित्रण या अंकन का प्रभाव अनुकूल हुआ होगा इसलिए उसी स्थान पर चित्रण या अंकन उद्देश्य की पूर्त्ति में सहायक होगा। ओझा, कटी मानव-उँगलियों के लेपचित्र भी जादू-टोना के उद्देश्य से बनाये गये होंगे ऐसी कल्पना सर्वथा निरर्थक नहीं कही जा सकती है।

आदियुगीन वन्यता (Early Savagery)

अँग्रेज़ी भाषा के शब्द सैवेजरी (Savagery) बार्बरिज़्म (Barbarism) और सिविलाइज़ेशन (Civilisation) का नृतात्त्विक साहित्य में बड़ी सावधानी से प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों को विशेष नृतात्त्विक अर्थ उन्नीसवीं शताब्दी के एकमार्गी उद्विकासवादियों (यूनिलीनियर इवोल्यूशनिस्ट्स्) ने प्रदान किया। इनमें भी विशेष उल्लेखनीय लेवी हेनरी मार्गन (Lewis Henry Morgan) हैं। **मानव-मात्र की चिंतन-समता** (Psychic unity of mankind) को अपने तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनाने वाले ये एकमार्गी उद्विकासवादी उद्विकास (इवोल्यूशन) और **विकास** (डेवलप्मेण्ट) में कोई भेद नहीं करते थे। वे यह मानते थे कि विश्व के सभी क़बीले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वन्यता (सैवेजरी) से ग्राम्यता या **बर्बरता** (बार्बरिज़्म) होकर **सभ्यता** (सिविलाइज़ेशन्) तक या तो पहुँच चुके हैं या पहुँचेंगे। जो कुछ भी हो, मार्गन् ने ग्राम्यता (बर्बरता) को वन्यता से पृथक् करने के लिए मिट्टी के बर्तन बनाने की कला के आविष्कार को आधार माना। इसी प्रकार सभ्यता का आरम्भ लेखन-क्रिया के आगमन के साथ माना गया। प्रागैतिहासिक साहित्य में इन शब्दों के प्रयोग का अपना महत्त्व है। चाहे प्रोफ़ेसर चाइल्ड (V. G. Childe) इन शब्दों (संबोधों) के सर्वप्रथम प्रयोगकर्त्ता न हों किन्तु इनको विशेष (आर्थिक) अर्थ प्रदान करने का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। **ग्राम्यता** (बार्बरिज़्म) और नागरिकता या सभ्यता (सिविलिटी या सिविलाइज़ेशन्) की व्याख्या हम आगे समुचित स्थलों पर करेंगे। यहाँ **वन्यता** (सैवेजरी) के संबंध में दो शब्द कहना अनुचित नहीं होगा।

मनुष्य की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। उसमें धार्मिक भावना, चिंतन-शक्ति और वाक्-शक्ति की विद्यमानता के आधार पर उसे क्रमशः धार्मिक प्राणी, चिंतनशील प्राणी तथा बोलता-प्राणी आदि कहा गया है। यह स्पष्ट है कि इन परिभाषाओं से आदि-मानव के आदि मानवीय स्वरूप का कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। इसका कोई आवयवीय आधार ढूँढ़ना पड़ेगा और इस क्षेत्र में हमारा पथ-प्रदर्शन **प्रांगिक उद्विकास** (ऑर्गैनिक इवोल्यूशन) का सिद्धान्त करेगा। इसका तात्पर्य यह है कि हम मानव की परिभाषा के अन्तर्गत आवयवीय तथ्यों का समावेश करें जिनसे हम उसे उसके निकटतम संबंधी **पुरुषाभ वानरों** (ऐन्थ्रोपॉयेड एप्स्) से पृथक् कर सकें। यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि वर्त्तमान् पुरुषाभ वानर और बन्दर मानव के पूर्वज नहीं हैं। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि इनके (मानव तथा पुरुषाभ वानर दोनों के) सम्मिलित पूर्वजों में ऐसे मिश्रित लक्षण विद्यमान रहे होंगे जो **आरंभिक मध्य-नूतन** (अर्ली माय्रोसीन्) के जीव प्रोकांसल् (Proconsul) में पाये जाते थे। तात्कालिक उपयोग के लिए प्रकृति-प्रदत्त सामग्री को उपकरण की तरह काम में लाने की क्षमता चाहे वानरों में हो लेकिन किसी काल्पनिक संभावित घटना होने पर इस्तेमाल के योग्य उपकरण गढ़ने की दक्षता केवल मानव में ही है। इस संबंध में मानव हाथ की **कार्यात्मक प्रत्यक्ष शारीर** (फ़ंक्शनल एनॉटॉमी) हमारी कोई सहायता नहीं कर सकेगी। कई दृष्टिकोणों से मानव का हाथ अन्य उच्चस्तन्य (Primates) की अपेक्षा अधिक आदिम और साधारण गुण वाला है। मानव के तथा-कथित हस्त-कौशल का भेद उसके मस्तिष्क में छिपा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसमें संदेह नहीं कि ध्यानपूर्वक देखने और आँखों तथा हाथों के समन्वय से काफ़ी देर तक काम करने की विशेषता पूर्णतया मानवीय है। इन सबकी आधारशिला मानव का सीधा खड़ा होने का गुण है। विस्तृत दृष्टि-क्षेत्र में किसी भी विन्दु पर ध्यानपूर्वक दृष्टिपात करने में यह बहुत सहायक होता है। उपकरण-निर्माण में यह बहुत उपयोगी है किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक उपकरण-परंपरा और स्मरण-शक्ति का होना है। संक्षेप में, मानव का वैशिष्ट्य सबसे अधिक उसके विकसित मस्तिष्क के कारण है। **जीवाश्मों** (फ़ासिल्स्) की मस्तिष्क-संरचना के बारे में बहुत कम पता चलता है। इसी कारण **गुणात्मक** (क्वालिटेटिव) के स्थान पर **परिमाणात्मक** (क्वाण्टिटेटिव) लक्षणों का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन कपालीय समावेश (क्रेनिअल कैपेसिटी) विश्वसनीय लक्षण नहीं कहा जा सकता है। मानव के अनेक पुरुषाभ (ऐन्थ्रोपॉयेड) पूर्वज—**आद्य-मानव** (प्रोटो-ह्यूमन) तथा **निकट-मानव** (नीयर-मैन) प्रकार—जिनके जीवाश्म (फ़ासिल्स्) मिले हैं, कपालीय समावेश के अनुसार मानवीय की अपेक्षा वानरीय अधिक हैं। इस कारण मानव की उचित परिभाषा के लिए आवयवीय लक्षणों की जगह पर कार्यात्मक लक्षण ढूँढ़ने पड़ेंगे। उपकरण बना सकने की क्षमता एक ऐसा ही कार्यात्मक लक्षण है। इसकी सबसे अधिक विशेषता यह है कि इसे सरलता-पूर्वक मृत पूर्व-पुरुषों के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। इसलिये **'उपकरण-निर्माता-मानव'** ही मानव की समुचित और सर्वोत्कृष्ट परिभाषा प्रतीत होती है।

उपकरण बनाने योग्य मस्तिष्क रखने वाला मानव विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के साथ अन्य पशुओं के-से संबंध से ही संतुष्ट नहीं हुआ होगा। यों तो मनुष्य को सदा ही प्रकृति से संघर्ष करते रहना पड़ता है, किन्तु अपने उद्भव के तुरन्त बाद मानव को जलवायु से विशेष संघर्ष करना पड़ा। प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के भीषण शीत से बचने के लिए प्रकृति ने तत्कालीन पशुओं को आवरण आदि प्रदान किया था। प्रकृति-प्रदत्त किसी ऐसे अतिरिक्त बचाव-साधन से रहित होने के कारण मानव को विशेष प्रबंध और प्रयास करना पड़ा होगा। उस समय मनुष्य के पास अपनी रक्षा के लिए उपयुक्त हथियार नहीं थे। आग और वस्त्र आदि साधन भी नहीं थे; जिनके द्वारा वह शीत से अपना बचाव कर सकता। आज जब मानव अपने शरीर को ढकने के लिए वस्त्र बना सकता है तब वैसी सर्दी नहीं पड़ती है जैसी प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के हिमावर्तन (ग्लेशियल्) अवस्था में आदि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानव को सहन करनी पड़ी होगी। उसी प्रकार आज उसके पास आत्म-रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के प्रभावशाली अस्त्र-शस्त्र और मानव-सहयोग विद्यमान हैं। आरंभ में ऊनावृत्त गैंडा और ऊनावृत्त महाकुंजर जैसे दुर्भेद्य आवरण वाले पशु उसके पड़ोसी थे जिनसे उसे प्रतिदिन कशमकश करनी पड़ती होगी। संक्षेप में, आरम्भिक अवस्था में मानव को अपने अस्तित्व तक के लिए जलवायु-आदि प्राकृतिक शक्तियों और पड़ोसी जंतुओं से अनवरत संघर्ष करना पड़ता होगा। पुरापाषाण (पैलियॉलिथिक) काल में ही कालान्तर में मनुष्य ने आग को वश में कर लिया था, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। पशुओं के मज्जा में काई-आदि की बत्ती से प्रकाश करना तथा मज्जा में गेरू मिला कर शरीर पर लेप करने योग्य घोल तैयार करना, जिससे शीत से बचा जा सके, यह साधारण बात हो गई थी। आरंभ से ही स्क्रेपर की विद्यमानता चमड़ा उतारने के कारण हो सकती है। शायद बहुत पहले से ही मनुष्य चमड़े के वस्त्र पहनता रहा होगा। मैग्दलेनी काल की सुन्दर सुइयाँ इस बात की द्योतक हैं कि उस समय सीने-पिरोने के काम में काफ़ी दक्षता प्राप्त कर ली गयी थी।

यह कहना कठिन है कि आदि-मानव केवल शाकाहारी था अथवा केवल मांसाहारी, अथवा मिश्र-आहारी। तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रख कर यह कहा जा सकता है कि प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के आरंभ में मानव का मुख्य आहार कच्चा मांस रहा होगा। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तब मानव फल-फूल खाता ही नहीं होगा। ऐसी संभावना है कि **हिमावर्तन** (ग्लेशियेशन्) में वनस्पति का एकांत अभाव होने के कारण मानव के लिए भोजन प्राप्ति का मुख्य साधन आखेट ही था। कदाचित् **हिमप्रत्यावर्तन** (इण्टरग्लेशियल्) आने पर वनस्पति के उगने पर मानव उसे सहायक खाद्य-सामग्री की तरह इस्तेमाल करने लगा होगा। फिर भी भोजन का मुख्य आधार आखेट-सामग्री ही रही होगी। हिम-युग के अन्तिम चरण (चतुर्थ हिमावर्तन) में मछली मारना लगभग उतनी ही प्रमुखता पा गया था जितना आखेट। उस समय भी फल-मूल एकत्रण गौण महत्त्व रखता था। जैसा कि आगामी अध्याय में बताया जायगा प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की समाप्ति पर जलवायु में आमूल परिवर्तन होने के कारण भोज्य पदार्थों और उनकी प्राप्ति के साधनों में भी यथेष्ट परिवर्तन हुए थे।

जब खाद्य-सामग्री पाने के लिए आखेट जैसा पौरुष वाला साधन अपनाया जाता तब इस काम में स्त्रियों का योगदान नगण्य-सा था। तथाकथित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्यान-संस्कृति (गार्डेन कल्चर) में इस काम में स्त्रियों का स्थान अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण हो गया था। किन्तु यह बहुत बाद की बात है। आदि-मानव बहुत काल तक आग को अपने वश में नहीं कर सका था। इस अवधि में खाद्य-सामग्री राँधने जैसा भी कोई काम न होने के कारण स्त्रियाँ मुख्यत: बच्चों के लालन-पालन और घर-गृहस्थी के अन्य कामों में ही अपना अधिकांश समय बिताती होंगी। प्राप्त साक्षियों से यह पता चलता है कि आदि-मानव को मानव-मस्तिष्क का मज्जा खाने का विशेष चाव था। **नृमुण्ड-आखेट** (हेड-हंटिंग्) और **नर-भक्षण** (कैनिबलिज़्म) के प्रमाण काफ़ी मिलते हैं।

आदियुगीन वन्यता (अर्ली सैवेजरी) के युग में मानव अपने भोजन के लिए प्रकृति-प्रदत्त पदार्थों पर उसी प्रकार निर्भर करता था जिस प्रकार पशु-जगत् के अन्य प्राणी। दूसरे शब्दों में तत्कालीन मानव को यदि हम प्रकृति-रक्त-शोषक कहें तो अनुचित नहीं होगा। प्रकृति से प्राप्त अवयवों के आधार पर तो मानव अपने प्रतिद्वन्द्वी पशुओं में सबसे कमज़ोर था। किन्तु उपकरण और हथियारों के रूप में उसने **अतिरिक्त-कायिक** (एक्स्ट्रा कार्पोरियल) अवयव बना लिये थे। इससे वह बहुत शक्तिशाली बन गया। यह सब होने पर भी आरंभ में उसे अपने भोज्य-पदार्थों की प्राप्ति के लिए बहुत अधिक परिश्रम और संघर्ष करना पड़ता होगा। यथेष्ट खाद्य-सामग्री के न मिल सकने के कारण जन-संख्या में वृद्धि तेज़ी से नहीं हो सकी। ऐसा अनुमान करना सर्वथा निर्मूल नहीं होगा कि मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक : Mesolithic) की समाप्ति के बाद परिस्थिति बदल गई।

पुरापाषाण (पैलियॉलिथिक) उद्योगों तथा उनमें काम में लाये गये उपकरण प्रकारों तथा निर्माण-प्रविधियों का विस्तृत वर्णन पहले ही किया जा चुका है। पुराना से पुराना उपकरण भी मानव की संबोधात्मक चिंतन और परंपरागत संचित ज्ञान एवं अनुभव का ज्वलंत उदाहरण है। मानव ने कौशल (स्किल्) पा उस पर नियंत्रण कर लिया और तभी संस्कृति पनपी। मानव की आज तक की प्रगति को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि आदियुगीन वन्यता के काल में विकास की गति काफ़ी धीमी रही। ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं था। इसी तरह खुले मैदानों अथवा विरल वनों में रहना शुरू कर पुरापाषाण के अंतिम चरण तक आदि-मानव गुफ़ाओं और चट्टान-शरण-स्थलों में रहने लगा था। कदाचित् ग्रीष्मकाल के अस्थायी निवास-स्थल दूसरे होते थे। मिट्टी या पेड़ों के डाल-पात से बनाये जाने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण वे नश्वर होते थे। इस कारण उनके संबंध में साक्षियाँ उपलब्ध नहीं हैं।

बार्बरिज़्म अथवा ग्राम्यता का आधार-बिन्दु खाद्य-उत्पादन माना जाता है। आदियुगीन वन्यता में अग्नि को वह महत्त्व नहीं प्राप्त है क्योंकि मानव का यह आरंभिक जीवन आग से किसी संपर्क के बिना ही आरंभ हुआ था। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। किंतु रिस्-वुर्म हिमप्रत्यावर्तन (इण्टर्ग्लेशियल्) काल में, जो यूरोप में अंत एश्यूली और मिसाक़ी उद्योगों का समय था, आग के उपयोग के प्रमाण मिलते हैं। उस समय मानव ने गुफ़ाओं और चट्टान-शरण-स्थलों में शरण लेना आरंभ कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि आग का सबसे पहले इस्तेमाल करने वाले उसे प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त करते थे। धीरे-धीरे उन्हें आकस्मिक घटनाओं द्वारा आग की उत्पत्ति के कार्य-कारण संबंधों का ज्ञान होने लगा होगा; तब तक प्राकृतिक आग के द्वारा मानव ने उसे नियंत्रण में रखना तथा जीवित रखना सीख लिया होगा। भीषण शीत में गुफ़ाओं में शरण लेना बहुत महत्त्व रखता था किन्तु उन्हें पाने के लिए मानव को अत्यन्त भयानक हिंस्र पशुओं का सामना करना पड़ता था। आग को अपने वश में कर उसने एक बहुत उपयोगी और अवलंबन-योग्य हथियार पा लिया था। उच्च पुरापाषाण (अपर पैलियॉलिथिक) कला का चरम-विकास गुफ़ा-भित्तियों पर अंकित उद्रेखण (एन्ग्रेविंग्) और लेपचित्र (पेंटिंग्) में पाया जाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उस समय तक मनुष्य गुफ़ाओं में निःशंक जीवन बिताने लगा था। यह कहना नहीं होगा कि इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेय आग के उपयोग को ही दिया जायगा। इसके अतिरिक्त आग की सहायता से मानव ने अपने चतुर्दिक वातावरण में यथेष्ट परिवर्तन कर लिया होगा। किंतु आग का सबसे अधिक प्रभाव मानव की खाद्य-संबंधी अर्थ-व्यवस्था पर पड़ा होगा। इसके पहले व्यंजन बनाने का पूर्णतया मानवीय कार्य संभव नहीं था। इस नये काम के करने से गृहणियों का मान और कदाचित् पद भी, बढ़ गया होगा। यही नहीं बल्कि ऐसा संभव है कि अंतिम बार मानव **प्रत्यक्ष शारीर** (एनॉटॉमी) और दैहिकी (फ़िज़ियॉलॉजी) में द्रष्टव्य परिवर्तन हुए होंगे क्योंकि आग में पकाया गया भोजन दाँतों और आमाशय दोनों को आराम देने वाला होगा। इस प्रकार आग ने मानव-जीवन में लगभग लघु-क्रान्ति उत्पन्न कर दी क्योंकि इसने मानव को सबसे पहले 'वास्तविक मानव' बनाने का मार्ग प्रशस्त किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदियुगीन वन्यता के इस अति-संक्षिप्त विवरण को समाप्त करने के पहले इस अवधि में मानव-जीवन के विभिन्न अंगों के सापेक्षिक विकास पर कुछ प्रकाश डालना अनुचित नहीं होगा। पुरापाषाण (पैलियॉलिथिक) काल में यों तो **लॉरेल लीफ़ अस्त्राग्रों** (प्वाइंट्स्) के समान सुन्दर उपकरण भी बनाये गये थे। आज, बीसवीं शताब्दी में, वे मानव **उद्विकास** (इवो-ल्यूशन्) के अध्ययन मात्र के लिए ही उपयोगी रह गई हैं। किंतु उच्च पुरापाषाणकालीन कला-कृतियों में से कई तो युग-युग तक अपनी श्रेष्ठता और मानव की उदात्त और अपूर्व चिंतन-शक्ति के प्रतिबिंब के रूप में याद की और सराही जायँगी। इस विश्लेषण से यह पता चलता है कि आदि-युगीन वन्यता में मानव की पादार्थिक और **ललितकला-दर्शन**-(इस्थेटिक्स्)-संबंधी विकास समानांतर नहीं चल सके थे। कम से कम कला के क्षेत्र में दूसरे ने पहले को बहुत पीछे छोड़ दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

मध्यपाषाण की उच्च वन्यता

सन् १८६५ ई० में लार्ड एवेबरी ने अपने वर्गीकरण में पाषाण युग के—**पुरापाषाण** (पैलियालिथिक) और **नवपाषाण** (नियालिथिक)—दो उपविभाग ही किये थे। इन उपविभागों के बारे में अलग-अलग तो बहुत कुछ मालूम था किन्तु इन दोनों को जोड़ने वाली कड़ी बहुत दिनों तक लुप्त-प्राय रही। इसी कारण प्रागितिहास में पुरापाषाण और नवपाषाण के बीच **'दरार'** (Hiatus) की कल्पना काफ़ी समय तक चलती रही। कालांतर में इस तथाकथित दरार की अनेक गुह्य बातें धीरे-धीरे प्रकट होने लगीं। इन उद्योगों में **लघु-ब्यूरीन** (Mirco-burin) की विद्यमानता के आधार पर विद्वानों ने इनको उच्च पुरापाषाण (अपर पैलियालिथिक) से विकसित या किसी अन्य प्रकार संबद्ध माना। इस कारण इनको **'अपि-पुरापाषाण'** (Epi-palaeolithic) नाम दिया गया। नवपाषाण ((Neolithic) में **सेल्ट** (Celt) एक मुख्य हथियार था। इस तथाकथित 'दरार' के अंदर 'कोर' पर बने हथौड़ा-प्रधान उद्योगों के कारण कुछ विद्वान पुरापाषाण और नवपाषाण को जोड़ने वाली कड़ी को **'आद्य-नवपाषाण'** (Proto-Neolithic) कहना अधिक पसन्द करते थे। कुछ अन्य विद्वान एक ऐसी संस्कृति की कल्पना करते रहे जिसका पूर्वार्द्ध 'अपि-पुरापाषाण' और उत्तरार्द्ध 'आद्य-नवपाषाण' रहे होंगे। इस अंतिम मत के साथ सबसे अधिक कठिनाई यह है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के उद्योग अनेक स्थानों पर समकालीन थे।[1] वर्त्तमान् सर्वमान्य मत यह है कि पुरापाषाण और नवपाषाण के बीच में एक संस्कृति या संस्कृति-समूह की विद्यमानता के प्रमाण पाये जाते हैं।

इस संस्कृति का आरंभ **प्रातिनूतन** (प्लाइस्टोसीन्) के अवसान और हिमाच्छादन की समाप्ति के साथ हुआ और इसका अंत उस समय हुआ जब प्रथम प्रागैतिहासिक क्रांति के साथ **नवपाषाण-ग्राम्यता** (Neolithic barbarism) का आरंभ हो गया था और मनुष्य खाद्योत्पादक बन चुका था। इस

---

१. जे० जी० डी० क्लार्क, १९३७, द मेसॉलिथिक सेटिल्मेण्ट आव् नार्दर्न यूरोप, पृष्ठ XIV

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति अथवा संस्कृति-समूह को **मध्यपाषाण** (मेसॉलिथिक=Mesolithic : Meso=मध्य ; Lithos=पाषाण या पत्थर) नाम प्रदान किया गया है, कदाचित् इसलिये कि यह **पुरापाषाण** (पेलियालिथिक) और **नवपाषाण** (नियालिथिक) के बीच की अवधि में हुआ था। विभिन्न क्षेत्रों में मध्य-पाषाण की अवधि भिन्न-भिन्न रही थी। उदाहरणार्थ, पश्चिमी एशिया में जहाँ खाद्योतपादक क्रांति के लिए वातावरण उपयुक्त था वहाँ मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) कम समय तक रहा। इसके विपरीत उत्तरी यूरोप में हमें मध्यपाषाण का पूर्ण विकास देखने को मिलता है। वहाँ इसकी अवधि अपेक्षाकृत अधिक लंबी रही क्योंकि यह प्रदेश नवपाषाण (प्रथम) क्रांति के प्रभाव-क्षेत्र से दूर था। संक्षेप में, मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) का तात्पर्य उन तीन संस्कृतियों—**पुच्छल अस्त्राग्र संस्कृति** (Tanged point culture), **कुठार-संस्कृति** (Axe culture), या और **लघुपाषाण संस्कृति** (Microlithic culture)—में से किसी एक, किसी दो या तीन के एक साथ विद्यमानता से है जो **प्रातिनूतन** (प्लाइस्टोसीन) की समाप्ति पर हुए विश्व-व्यापी जलवायु-परिवर्तन पर विभिन्न प्रकार के वातावरणों और परिस्थितियों, कदाचित् पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में, उत्पन्न हुई थी। यह नहीं भूलना चाहिए कि उपर्युक्त तीन मध्यपाषाण संस्कृतियों में पाये गये उपकरणों के-से उपकरण पाये जाने मात्र से ही कोई उद्योग अथवा संस्कृति मध्यपाषाण उद्योग अथवा संस्कृति नहीं हो जायेगी। इसके लिये उसका मध्यपाषाण अवधि, जो प्रातिनूतन की समाप्ति और नवपाषाण के आरंभ के पूर्व के बीच की अवधि में रहा था, में ही होना आवश्यक है।

भूमध्यसागर के उत्तर में स्थित उन प्रदेशों में जो प्रातिनूतन के आधे से अधिक अंश में हिमाच्छादित रहे थे, अब क्रमशः आजकल के समान समशीतोष्ण जलवायु होने लगी थी। पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ़्रीका के वे प्रदेश जो प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) में हरे-भरे उद्यान थे; अब धीरे-धीरे मरूभूमि में परिवर्तित होने लगे। अनवरत हिमाच्छादन, ध्रुवी क्षेत्र को छोड़ कर, अब पर्वत-शिखरों तक ही सीमित होने लगा था और टुण्ड्रा प्रदेश इस क्षेत्र के चतुर्दिक ही विद्यमान रहने लगा। प्रातिनूतन की समाप्ति पर उत्तरी यूरोप का हिमाच्छादित प्रदेश क्रमशः टुण्ड्रा से स्टेपी होते हुए सघन वन क्षेत्र में परिवर्तित हुआ। दूसरे शब्दों में, प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल के अधिकांश भाग में जहाँ किसी भी प्रकार की वनस्पति का एकांत अभाव था, वहीं बाद में लताओं और झाड़ियों से भर-पूर दुर्भेद्य वन उग गये। इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बर्फ़ पिघलने और अति-वृष्टि के कारण जल के आधिक्य ने निर्माण की। इस जल के नदियों, झरनों और प्रपातों के रूप में बह कर सागर में आ मिलने के कारण समुद्र-सतह प्रातिनूतन के समुद्र-सतह से ऊँचा होने लगा। इसी कारण घाटियाँ दलदल बन गईं। स्वच्छंद, वनस्पति-रहित, वातावरण में विचरण करने वाले भयानक, हिंस्र पशु या तो टुण्ड्रा कटिबंध के साथ उत्तर की ओर चले गये अथवा जलवायु-परिवर्तन के साथ अपने को अनुकूलित न कर सकने के कारण नष्ट हो गये। इनके साथ ही इनके आखेट की कला ही लुप्त-प्राय हो गई। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मध्य-पाषाण (मेसॉलिथिक) अर्थ-व्यवस्था में आखेट का कोई महत्व ही नहीं था। इसके विपरीत खाद्य-सामग्री प्राप्त करने के लिये आखेट अभी भी प्रमुख साधनों में एक था। हाँ, इस परिवर्तित वातावरण में आखेट का ढंग बदल गया था। वनों में विचरण करने वाले द्रुतगामी पशुओं का वध भाले से करना संभव नहीं था—इसलिये धनुष या प्रत्यंचा का आविष्कार हुआ। प्राप्त साक्षियों से यह पता चलता है कि तीर की नोक ज्यामितीय आकार के **लघुपाषाणों** (Microlith : Micro=लघु; lithos=पाषाण, या पत्थर) से बनाया जाता था। भेड़ों के समान नर्म बाल वाले पशुओं का आखेट करने के लिये विशेष प्रकार के शंक्वाकार (शंकु+आकार) हड्डी के बने तीर की नोक इस्तेमाल की जाती थी।

यों तो मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) को **वन्यता** (सैवेजरी) के अंतर्गत् ही सम्मिलित किया जाता हैं किंतु इस **उच्च वन्यता** का विशेष महत्त्व है। **खाद्योत्पादक ग्राम्यता** (Food-producing barbarism) के उपयुक्त वातावरण इसी अर्थ-व्यवस्था की पृष्ठभूमि में तैयार हुआ था। यदि यह कहा जाय कि उसकी नींव मध्यपाषाण के उत्तरार्द्ध में पड़ी थी तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसी कारण इस संस्कृति में खाद्य-सामग्री के रूप में **फल-मूल-एकत्रण** (Food collection) का विशेष स्थान और महत्त्व हो गया था। उपलब्ध तत्कालीन **जीवाश्मों** (फ़ासिल्स्) की दंतावलि इस प्रकार घिसी हुई है जो भोजन में वानस्पतिक सामग्री की प्रमुखता होने पर होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आखेट-सामग्री का अपना महत्त्व होने पर भी जंगली फल और कंद-मूल-आदि का खाद्य-सामग्री के रूप में उपयोग बढ़ने लगा था। फ़िलिस्तीन (Palestine) के मध्यपाषाण काल के नतूफ़ी लोगों (Natufians) के द्वारा हड्डी के बने हँसिये इस्तेमाल किये जाने की साक्षियाँ पाई जाती हैं। इनमें लघुपाषाणों के दाँत लगाये जाते थे और कदाचित् जंगली घास-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि काटी जाती थी। **खाद्य एकत्रण** (फ़ूड-गैदरिंग्) **और आखेट** (हंटिंग्) के अतिरिक्त **मछली मारना** (फ़िशिंग्) भी खाद्य-सामग्री प्राप्ति का एक मुख्य साधन था। समुद्र-तटों तथा झीलों और नदियों के किनारों पर **खाद्यावशिष्ट-अंबार** (Kitchen-middens) इस बात के प्रतीक हैं कि ऐसे स्थानों पर बसने वाले लोग मछली खाने के शौकीन थे और इस कार्य में दक्ष भी थे। बाल्टिक प्रदेशों में तो ये लोग **मत्स्य-बर्छियों** (हार्पून्स्) से ही सील मछली तक का शिकार कर लेते थे। बची हुई हड्डियों से यह भी पता चलता है कि चिड़ियाँ भी खाई जाती थीं। चिड़िया मारने के लिये रुखानी की आकार के लघुपाषाणों से बनाये गये तीर और गढ़े हुए फेंक कर मारने वाले डंडे[२] काम में लाये जाते थे।

पुरापाषाण (पैलियालिथिक) के समान मध्यपाषाण के लोग भी अपने हथियारों और उपकरणों पर कलाकृतियाँ बनाते थे। ये आकृतियाँ पहले के समान प्राकृतिक दृश्य या पदार्थ न होकर प्रायः ज्यामितिक चिन्ह होते थे। ऐसा अनुमान है कि इस काम के लिये धनुष से चलने वाला **बरमा** (Drill) इस्तेमाल किया जाता था। निजी सजावट के लिये पहले ही की तरह कौड़ियाँ, छेदे हुए दाँत एवं हड्डियाँ-आदि काम में लाई जाती थीं। उच्च पुरापाषाण के समान ही इस समय भी अंत्येष्ठि-क्रिया का यथेष्ट आनुष्ठानिक महत्त्व था। कदाचित् मृतक के साथ उसकी निजी सामग्री भी दफ़ना दी जाती थी।

मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) में उपकरण-निर्माण-कला के क्षेत्र में कोई भी महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं हुआ। इस संस्कृति के मुख्य उपकरण लघुपाषाण (माइक्रॉलिथ्स्) और पत्थर की कुल्हाड़ियाँ हैं। ये कुल्हाड़ियाँ पुरापाषाण हैण्डैक्सों से भिन्न हैं क्योंकि इनको छेद किये हुए बारहसिंघे की सींग, हड्डी या लकड़ी के मुठियों में फ़िट किया जाता था। इस **संग्रथित उपकरण'** (Composite tool) को लकड़ी काटने के काम में लाया जाता था। पत्थर के साथ बारहसिंघे की सींग और हड्डी का मेल तो निश्चित रूप से मध्यपाषाण की विशेषता थी किंतु मुठिया या बेंट के किनारे पर अस्त्राग्र बाँधना कोई नई बात नहीं थी। लघुपाषाण (माइक्रॉलिथ) के लिये जिन प्रविधियों का उपयोग किया जाता था—**लघु-ब्यूरीन** (माइक्रो-ब्यूरीन)

---

२. जे० जी० डी० क्लार्क, १९४६, फ्राम सैवेजरी टु सिविलाइज़ेशन, पृष्ठ ६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रविधि और **फ़्लूटिंग्** या **सोपान-पद** (स्टेप) फ़्लेकीकरण--वे सब पुरापाषाण में पहले ही काम में लाये जा चुके थे। एक लघुपाषाण की कोई उपयोगिता नहीं है किंतु कई लघुपाषाणों के साथ मिलने से एक ऐसा संयुक्त-उपकरण बनता था जो भारी-भरकम पुरापाषाणों (पैलियालिथ्स्) से कई रूप में अच्छा होता था। इसकी आधार-शिला **अनुप्रस्थ मूठ-आरोपण** (Transverse hafting) को मानना चाहिये। इस पद्धति द्वारा लकड़ी या हड्डी की मुठिया के अंदर ही लघुपाषाणों की पंक्ति का फल बनाया जाता था। इस काम के लिये मूँठ के आधे भाग के बीचोबीच छेद कर उसमें गोंद या सरेस से लघुपाषाणों को बैठा दिया जाता था। इस प्रकार के संग्रथित उपकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसकी धार खराब हो जाने पर पूरे उपकरण को फेंकना नहीं पड़ता था। भुथरे हुए लघु-पाषाणों के स्थान पर पैने लघुपाषाण लगा कर उपकरण को फिर से तेज़ और उपयोगी बना लेने में अपेक्षाकृत कहीं कम समय लगता था जितना कि नया हैण्डैक्स बनाने में। इस प्रकार उपकरण के जीवन-अवधि में अप्रत्याशित वृद्धि संभव हो सकी।

अपने पुरापाषाण (पैलियालिथिक) अग्रगामियों की तरह ही मध्यपाषाण मानव को भी मौसम के साथ-साथ अपना निवास-स्थान बदलना पड़ता था क्योंकि उसके खाद्य-सामग्री की उपलब्धि से इस तथ्य का प्रत्यक्ष संबन्ध था। शीत से बचने के लिये कदाचित् गुफ़ाओं, चट्टान-शरण-स्थलों और मिट्टी के बने घरों का उपयोग किया जाता था। ग्रीष्मकाल में अपेक्षाकृत अस्थायी और नश्वर तंबुओं का उपयोग होता था। कई क्षेत्रों में तो मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) मानव शीतकाल भी इन्हीं तंबुओं में काट दिया करता था। खाद्यावशिष्ट अंबार (किचेन्-मिडेन) वाले क्षेत्रों में वर्ष भर स्थायी निवास की साक्षियाँ मिलती हैं। कदाचित् इसका कारण खाद्य-सामग्री की अधिक सुगमता से उपलब्धि थी। मध्यपाषाण समय में अभी तक ग्राम्य-जीवन का आरंभ नहीं हुआ था। ऐसा अनुमान है कि चार या पाँच झोपड़ों का ही एक सामाजिक समूह हुआ करता था।[3] चूंकि इन लोगों का जीवन लगभग ख़ानाबदोशों का-सा था इसलिये ये लोग बहुत अधिक सामान नहीं रखते होंगे। वैसे तो पशु-पालन नवपाषाण (नियालिथिक) की विशेषता है किंतु कुछ साक्षियों से यह पता चलता है कि मध्यपाषाण के अंत तक

---

३. वही, पृष्ठ ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहीं-कहीं कुत्ता पालतू बनाया जा चुका था। इसी प्रकार कहीं-कहीं मिट्टी के बर्तन बनाये जाने के प्रमाण भी पाये गये हैं।

मध्यपाषाण की विभिन्न संस्कृतियों के स्थानीय स्वरूप के कारण उनको उस प्रकार के किसी सक्रम-समय-श्रृंखला में रखना संभव नहीं है जैसा कि पुरापाषाण (पैलियालिथिक) उद्योगों के लिये किया गया था। अधिक स्पष्टता के लिये पश्चिमी और उत्तरी यूरोप के मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) संस्कृतियों का वर्णन पृथक्-पृथक् किया जायगा। समय के दृष्टिकोण से वर्णन में पूर्ण क्रमबद्धता है, यह सोचना ग़लत होगा।

पश्चिमी यूरोप

एज़ीली (Azilian)

इस संस्कृति का नाम दक्षिणी फ्रांस के **एज़ील** (Mas d' Azil) नामक स्थान पर पड़ा है। इसकी स्तरीय स्थिति अंत मैग्दलेनी के बाद और **तार्दन्वाय** (Tardenoisian) के पहले है। एज़ीली पत्थर के उपकरणों में छोटे-छोटे गोलाकार स्क्रेपर, **अस्त्राग्र** (प्वाइंट्स्), ब्यूरीन और **पार्श्वपुनर्गढ़ित** (बैक्ड्) ब्लेड विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी छोटे-छोटे हैं और अच्छे नहीं बने हैं। हड्डी के बने **छिद्रक** (ऑल), पालिश करने के औज़ार तथा साधारण और गोल रुखानियाँ भी काम में लायी जाती थीं। सदा बारहसिंघे की सींग का बनाया जाने वाला इस संस्कृति का सबसे विशेष औज़ार **मत्स्य-बर्छी** (हार्पून) थी। यह मैग्दलेनी मत्स्य-बर्छियों की अपेक्षा अधिक चपटी और चौड़ी होती थी। इसके अंकुश गढ़ कर नहीं बल्कि काट कर बनाये गये थे। मूँठ लगाने के लिये एक छेद प्रत्येक **मत्स्य-बर्छी** में किया जाता था। इस संस्कृति की दूसरी विशेषता **रंगे पेबुलों** (Painted pebbles) के कारण है। ये नदियों-आदि की तलहटी में घिसे, गोलाकार चिकने पत्थर होते हैं जिन पर रंग से बिंदियाँ या पड़ी लकीरें आदि अंकित मिलती हैं। अधिकांश विद्वान[४] इनके महत्त्व और उद्देश्य के संबंध में अज्ञानता दिखलाते

---

४. एम० सी० बर्किट, १९२९, आवर् अर्ली ऐन्सेस्टर्स्, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, पृष्ठ १२

हैलेम एल० मोविअस जूनियर, १९५६, 'द ओल्ड स्टोन एज', हेरी एल० शपिरो संपादित् मैन, कल्चर ऐण्ड सोसाइटी में पृष्ठ ७६–७७, आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। किंतु एड्रियन कोट्स[५] का यह स्पष्ट मत है उनका कोई जादुई महत्त्व था। उस समय की जलवायु आजकल से बहुत भिन्न नहीं थी यद्यपि आर्द्रता थोड़ी अधिक अवश्य थी। प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) पशुवृंद समाप्त-प्राय हो चुके थे। अधिकांश पशु आधुनिक थे। उनमें से बहुत-सी **नस्लें** (Species) आज भी विद्यमान हैं। ऐसा अनुमान है कि एज़ीली लोग अधिकतर चट्टान-शरण-स्थलों और गुफ़ा-मुखों में रहते थे। संक्षेप में, आरंभिक मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) एज़ीली (Azilian) उद्योग फ्रांसीसी पिरेनी, पूर्वी फ्रांस, उत्तरी स्पेन, स्विटज़रलैंड, बेल्जियम आदि प्रदेशों में पाये गये हैं। उनमें ब्यूरीन, गोलाकार स्क्रेपर आदि पत्थर के उपकरणों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के हड्डी के औज़ार भी पाये गये हैं जिनमें बारहसिंघा की सींग की चपटी एवं चौड़ी एक छेद वाली मत्स्य-बर्छियाँ (हार्पून) विशेष उल्लेखनीय हैं। अज्ञात उपयोग वाले 'रंगे पेबुल' इन उद्योगों की दूसरी विशेष चीज़ हैं। कला का एकांत अभाव था।

तार्देन्वाय (Tardenoisian)

फ्रांस के ऐस्ने (Aisne) प्रदेश फ्रोएग़्-एँ-तार्देन्वाय (Trere-en-Tardenois) नामक स्थान पर प्रमुख रूप से पायी जाने वाली लघुपाषाण संस्कृति तार्देन्वाय (Tardenoisian) का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इटली, बाल्कन-प्रदेश, उत्तरी रूस तथा स्कैण्डिनेवियाई देशों को छोड़ कर प्रायः संपूर्ण यूरोप में इस संस्कृति के प्रमाण पाये जाते हैं। इस संस्कृति के संबंध में एक विशेष बात यह है कि यह बालुई भूमि या बालू के टीलों में विद्यमान पाई जाती है। तार्देन्वाय की असंदिग्ध पहचान उनके **लघु-ब्यूरीन** (Micro-burin) हैं जो लघुपाषाण गढ़ने में अवशिष्ट अंश होते थे। किंतु यह नहीं भूलना चाहिये कि पुरापाषाण (पैलियालिथिक) में लघु-ब्यूरीन बनाने की एक पृथक् प्रविधि थी और यह असंभाव्य नहीं कि कुछ तार्देन्वाय लघु-ब्यूरीन भी किसी ऐसी ही प्रविधि द्वारा बनाये गये हों। साधारण लघुपाषाणों में अधिकांश ज्यामितिक प्रकार के हैं जैसे **त्रिकोण, अर्ध-चंद्राकार** (Lunates या Crescents) **समलंब चतुर्भुजाकार** (Trapezoid) आदि। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे पार्श्व-पुनर्गढ़ित (बैक्ड्) ब्लेड, अस्त्राग्र (प्वाइंट्स) तथा **अनुप्रस्थ तीर-अग्र** (Transverse arrow-heads) मुख्य पत्थर उपकरण हैं। यह दुहराना नहीं होगा कि

५. ऐड्रियन कोट्स, १९५१, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ २५३–५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन लघुपाषाणों को संग्रथित उपकरणों की धार के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। मूँठ कट न जाय इसलिये इन लघुपाषाणों को पीछे की ओर से गढ़ कर भुथरा बना दिया जाता था और किसी प्रकार के गोंद-आदि से लकड़ी अथवा हड्डी की मूँठ के अंदर घुसा दिया जाता था।

प्रायः पूरे यूरोप में फैली तारदेन्वाय संस्कृति अनेक क्षेत्रों में एज़ीली संस्कृति के समकालीन थी यद्यपि इसकी अवधि एज़ीली संस्कृति से बहुत अधिक थी। बर्किट का यह मत है कि यूरोप के उन क्षेत्रों में जहाँ ऑरिग्नेशी (Aurignacian) उद्योग, साल्यूत्री (Solutrean) और मैग्दलेनी (Magdalenian) से प्रभावित हुए बिना, उच्च पुरापाषाण का एकमात्र उद्योग था वहाँ एज़ीली-तारदेन्वाय (Azilo-Tardenoisian) संस्कृति को उससे विकसित होते पाया जाता है।[६] इन क्षेत्रों में **स्कंधीय अस्त्राग्र** (शोल्डर्ड प्वाइंट्स्) को **अनुप्रस्थ तीराग्रों** (ट्रान्स्वर्स् ऐरो हेड्स्) में परिवर्तित होते और स्क्रेपरों को छोटा होते देखा जा सकता है। संक्षेप में, तारदेन्वाय (Tardenoisian) एक ऐसी लघुपाषाण (माइक्रालिथिक) संस्कृति है जो यूरोप के अधिकांश देशों में काफ़ी दिनों तक विद्यमान रही। इसमें एज़ीली रंगे पेबुल अथवा कला के कोई चिन्ह नहीं मिलते हैं। इस संस्कृति की विशेषता इसके लघु-ब्यूरीनों तथा ज्यामितिक लघुपाषाणों के कारण है जिनको हड्डी या लकड़ी की मूँठ के अंदर घुसा कर संग्रथित उपकरण बनाया जाता था। इस संस्कृति के उपकरण प्रायः बालुई प्रदेशों या बालू के टीलों में पाये जाते हैं।

एस्तूरी (Asturian)

उत्तरी स्पेन तथा पुर्तगाल के तटीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक मध्यपाषाण संस्कृति जिसे एस्तूरी (Asturian) नाम दिया गया है अपने शंख और कौड़ियों आदि के अंबार (Shell-middens) के लिये प्रसिद्ध है। इस संस्कृति की यह विशेष सामग्री प्रायः गुफ़ाओं और चट्टान-शरण-स्थलों में पाई जाती है जो गुफ़ाओं के छत से गिरे हुए चूना-मिश्रित पदार्थ से सीमेण्ट की तरह मिल कर जुड़ गई है। प्रायः सभी स्थानों में एस्तूरी (Asturian) संस्कृति के अवशेष एज़ीली (Azilian) अवशेषों के ऊपर मिलते हैं। ऐसा अनुमान है कि ये पदार्थ इन गुफ़ाओं में एज़ीली समय के बाद आये थे।[७] साधारणतः इस उद्योग में लघुपाषाण नहीं पाये जाते हैं

---

६. एम० सी० बर्किट, १९२९, पाश्र्वोद्धरित, पृष्ठ १९–२०.
७. बर्किट, १९२९, वही, पृष्ठ २४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि यह संस्कृति तार्देन्वाय (Tardenoisian) के उत्तरार्द्ध के समकालीन थी। इसकी समाप्ति नवपाषाण (नियॉलिथिक) के आगमन पर हुई। नदी-घर्षित पत्थर का निचला भाग प्रायः पूरा का पूरा बिना गढ़े हुए छोड़ दिया जाता था और ऊपरी भाग को थोड़ा गढ़ कर एक साधारण फावड़े या कुल्हाड़ी का फल तैयार किया जाता था। इस औज़ार की सहायता से चट्टानों से शंख आदि काट कर निकाले जाते थे। एक-आध चॉपर और क्वार्टज़ाइट् (Quartzite) की वनी कुल्हाड़ियाँ और स्क्रेपर आदि भी पाये गये हैं। कुछ गोलाकार और चिकने पेबुल शायद रगड़ने या हथौड़े की तरह काम में लाये जाते होंगे ऐसा बर्किट का अनुमान है। एक-दो हड्डी और वारहसिंघे की सींग के उपकरण भी पाये जाते हैं।

कैम्पिग्नी (Campignian)

फ्रांस के कैम्पिग्नी (Campigny) प्रदेश में खोद कर निकाली गई इस संस्कृति के समुचित स्थान निर्धारित करने में विशेषज्ञ एक मत नहीं हैं। इसमें पाये गये घटिया मिट्टी के बर्तनों और पशुओं के पालतू बनाये जाने की कुछ साक्षियाँ मिलती हैं। कुछ पुराने विशेषज्ञ कैम्पिग्नी (Campignian) को **प्रारंभिक नवपाषाण** (अर्ली नियॉलिथिक) का अंश मानते थे। बर्किट उस पालिश किये हुए सेल्ट (Celt) के आधार पर किये गये इस निर्णय को ठीक नहीं मानते हैं और इस संस्कृति को मध्यपाषाण के अंदर ही सम्मिलित करते हैं।[८] उत्तरी फ्रांस के अतिरिक्त इस संस्कृति की विद्यमानता के प्रमाण बेल्जियम और इंग्लैण्ड में भी पाये गये हैं। इस उत्तर-पश्चिमी यूरोपीय क्षेत्र के बाहर यह प्रायः नहीं पाई जाती है। जलवायु अतलांतिक प्रकार की थी। मिश्रित ओक वन तथा घोड़ा, लाल हिरण और वृषभ इस काल की वनस्पति और पशुवृन्द थे। कभी-कभी एक-आध पुरापाषाण (पैलियालिथिक) ब्यूरीन की तरह के उपकरण पाये जाते हैं। किंतु स्क्रेपर, फ़्लेक तथा छिद्रक (ऑल)-आदि इस उद्योग के साधारण उपकरण हैं। इस उद्योग का सबसे विशिष्ट उपकरण **कैम्पिग्नी कुठार** (Campigny axe) है। यह साधारण फ़्लिण्ट अथवा पेबुल को बीच से तोड़ कर बनाया जाता था। इसके एक किनारे को चौकोर बना लिया जाता था। दूसरे किनारे पर उभरी सतह से फ़्लेक निकाले जाते थे जो चिपटी सतह से मिल कर एक तेज़ **कार्यांग** (वर्किंग् एज्) बनाते थे।

---

८. बर्किट, १९२९, वही, पृष्ठ ४५–४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लार्ने (Larnenian)

एक दूसरी प्रादेशिक मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) संस्कृति की विद्यमानता उत्तरी आयरलैण्ड के ऐंण्ट्रिम काउण्टी (County Antrim) के लार्ने (Larne) नामक स्थान पर पाई जाती है। इस संस्कृति के उत्तरार्द्ध में समुद्र पर निर्भर करने वाले तथा खाद्य एकत्र करने वाले लोग रहते थे। ये लोग तट-वासी थे। यह संस्कृति **उच्च पुरापाषाण** (अपर पैलियालिथिक) से काफ़ी प्रभावित प्रतीत होती है। आरंभिक लार्ने उपकरणों में प्रमुख **छिद्रक** (Perforators), स्क्रेपर तथा ब्लेड् आदि हैं यद्यपि एज़ीली (Azilian) प्रकार के एकाध गोलाकार स्क्रेपर भी पाये गये हैं। कालांतर में यह प्रभाव कम होता दिखलाई पड़ता है क्योंकि उस समय पहले की अपेक्षा कहीं अधिक भारी उपकरण बनाये जाने लगे थे। इसमें विशेष उल्लेखनीय **लार्ने कुल्हाड़ी** (Larne Pick) है। यह नतो-उन्नतोदर (Concavo-convex) उपकरण था। इसके अतिरिक्त चॉपर, बड़े-बड़े छिद्रक (पर्फ़ोरेटर्स्), फ़्लेक, ब्लेड आदि के अतिरिक्त कुछ नतोदर स्क्रेपर भी बनाये जाते थे। इन बड़े-बड़े उपकरणों के बनाये जाने का उद्देश्य उनसे लकड़ी काटना था।

उत्तरी यूरोप

उत्तरी यूरोप में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की समाप्ति पर हुए जलवायु-परिवर्तनों का संक्षिप्त विवरण इस अध्याय के आरंभ में किया जा चुका है। इस क्षेत्र के तत्कालीन सांस्कृतिक (औद्योगिक) अवस्था के वर्णन का एक-मात्र स्रोत विख्यात ब्रिटिश प्रागितिहासज्ञ प्रोफ़ेसर ग्रैहेम क्लार्क (J.G.D. Clark) द्वारा प्रदत्त सूचना-सामग्री है। उन्होंने उत्तरी यूरोप के संपूर्ण मध्यपाषाण को तीन कालों में विभाजित करते हुए उनमें एक साथ ही तीन विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों—पुच्छल अस्त्राग्र संस्कृतियाँ, कुठार संस्कृतियाँ तथा लघुपाषाण संस्कृतियाँ—की विद्यमानता के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।[९]

लघुपाषाण-संस्कृतियाँ (Microlithic Cultures): मूल रूप से ये संस्कृतियाँ इस क्षेत्र में उत्पन्न नहीं हुई थीं। उत्तरी यूरोप से बाहर, शायद पूरे यूरोप से भी कहीं बाहर, उत्पन्न हुई ये संस्कृतियाँ वन्य परिस्थितियों में नहीं पनप सकीं। इनके प्रिय प्रदेश उत्तरी यूरोप के दक्षिणतम् किनारे के वे क्षेत्र थे जो वनस्पतिहीन तथा खेती या चरागाह के सर्वथा अनुपयुक्त बालुकामय

९. ग्रैहेम क्लार्क, १९३७, पार्श्वोद्धरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। पश्चिमी यूरोप के तार्देन्वाय (Tardenoisian) संस्कृति के समान ये उद्योग भी लघुपाषाण-प्रधान थे। इनमें कला का पूर्ण अभाव था। ये तीनों मध्यपाषाण कालों में विद्यमान रहे।

पुच्छल-अस्त्राग्र संस्कृतियाँ (Tanged-Point Cultures) : बेल्जियम से यूक्रेन तक उत्तरी यूरोप के मैदानों में फैली हुई इस मध्यपाषाण संस्कृति को मैग्दलेनी (Magdalenian) काल के उच्च पुरापाषाण (अपर पैलियालिथिक) से उत्पन्न हुआ माना जाता है।[१०] यह पुच्छल अस्त्राग्र संस्कृति प्रथम काल (८३०० से ६८०० ईसा पूर्व) में विशेष रूप से प्रभावशाली रही। इस संस्कृति-समूह की दूसरी शाखा रूसी करेलिया (Russian Carelia) होती हुई स्कैण्डिनेवियाई प्रदेश गई और वहाँ आर्कटिक सागर तथा अतलांतिक महासागर के तटीय प्रदेशों में कॉस्मा (Kosma) और फ़ॉस्मा (Fosma) संस्कृतियों के रूप में विकसित हुई। ये संस्कृतियाँ मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) काल में तो विकसित और पल्लवित होती ही रहीं। इनके नवपाषाण (नियॉलिथिक) यहाँ तक कि **कांस्य युग** (Bronze Age) तक में विद्यमानता के प्रमाण मिले हैं। द्वितीय काल (६८०० से ५००० ईसा पूर्व) में कॉस्मा और फ़ॉस्मा संस्कृतियाँ कुल्हाड़ी संस्कृतियों से प्रभावित होने लगी थीं। इन पुच्छल अस्त्राग्र संस्कृतियों में उच्च पुरापाषाण परंपरा के कुछ ब्लेड-स्क्रेपर और ग्रैवर तथा एकाध लघुपाषाण भी पाये गये हैं। इनका प्रधान उपकरण **पुच्छल-अस्त्राग्र** (टैंण्ड्-प्वाइण्ट्स्) तथा बारहसिंघा की सींग की कुल्हाड़ियाँ हैं। कदाचित् फ़ांट रॉबर्ट अस्त्राग्र इन पुच्छल अस्त्राग्रों के पूर्वगामी रहे थे। पत्थर की कुल्हाड़ियों का अभाव इस बात का प्रतीक है कि कहीं-कहीं पाये जाने वाले विरल वनों में भी लकड़ी का काम इन संस्कृतियों के निर्माता बहुत कम करते होंगे।[११]

कुठार-संस्कृतियाँ (Axe Cultures) : वनों की उत्पत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में दक्षिणी स्वीडेन, डेन्मार्क और उत्तरी जर्मनी में प्रथम काल (८३०० से ६८०० ईसा पूर्व) में लिंग्वी (Lyngby) संस्कृति का उद्भव हुआ। इसका महत्त्व परवर्त्ती मैग्लेमूज़ (Maglemosian) संस्कृति की पृष्ठभूमि के रूप में है। ऐन्सिलस् काल अथवा द्वितीय काल (६८०० से ५००० ईसा पूर्व) में उत्तरी यूरोप के मैदान में पूर्वी ब्रिटेन से एस्थोनिया (Esthonia) और पोलैण्ड तक और दक्षिणी नार्वे एवं स्वीडेन से मध्य जर्मनी तक के किसी

---

१०. वही
११. मोविअस, १९५६, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ८३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र में स्थानीय लिग्वी संस्कृति के मध्य तार्देन्वाय (Middle Tardenoisian) से संपर्क स्थापित होने के कारण **मैग्लेमूज़** (Maglemosian) **संस्कृति** उत्पन्न हुई थी ऐसा प्रोफ़ेसर क्लार्क का अनुमान है।[१२] बर्किट के मतानुसार इस संस्कृति का विशिष्ट स्थल ज़ीलैण्ड (Zealand) द्वीप के पश्चिम के मैग्लेमूज़ अथवा **मुल्लेरप के विशाल दलदल** (Great bog of Mullerup) थे।[१३] इस कारण इसका नाम मुल्लेरप संस्कृति (Mullerupian culture) होना चाहिये था, मैग्लेमूज़ (Maglemosian) संस्कृति नहीं। लिटोरिना (Littorina)) अथवा तृतीय काल (५००० से २५०० ईसा पूर्व) में डेन्मार्क में खाद्यावशिष्ट-अंबार संस्कृति (Kitchen-midden culture) का प्राधान्य हो गया था; किंतु बाल्टिक तट के भीतरी भागों में अनेक स्थानों पर उस समय भी मैग्लेमूज़ संस्कृति का स्थानीय स्वरूप विद्यमान रहा और नवपाषाण (नियॉलिथिक) काल तक अपने आप विकसित होता रहा।

साधारणतः इस संस्कृति के अवशेष अंतर्देशीय झीलों के किनारे और दलदली क्षेत्रों में पाये गये हैं। उपकरणों की मूठों तथा खोद कर बनाई गई (Dugout) नावों से यह पता चलता है कि वनों का इन लोगों के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। खाद्य-सामग्री की प्राप्ति के अभी भी वे ही पुराने साधन थे—वन्य पशुओं और पक्षियों का आखेट, मकोय-आदि का एकत्रण और मछली मारना-आदि। ऐसा अनुमान है कि इस समय तक कुत्ता पालतू बनाया जा चुका था। मैग्लेमूज़ (Maglemosian) लोगों को अलंकरण से भी प्रेम था यह प्राप्त साक्षियों से पता चलता है। ये लोग अपने दैनिक उपयोग की सामग्रियों को भी **उत्कीर्ण** (एन्ग्रेव्) करते थे। छेद किये हुए बारहसिंघे की सींग की मूँठों, हड्डी के अस्त्राग्रों, साधारण अथवा छेद किये हुए बारहसिंघे की सींग जिनको छील कर पालिश की जाती थी और जिनका कोई उपयोग नहीं था, तथा कुठारों और **बसूलों** (Adzes) पर कलाकृतियों के दर्शन होते हैं। **उत्किरण** (एन्ग्रेविंग्) की साधारण प्रविधि एकदम बारीक़ निशान बनाना था। कुछ पैटर्नों में, विन्दु ही इस्तेमाल किये मिलते हैं और दूसरों में गहरी खाइयाँ खोदी गई हैं। साधारणतः ज्यामितिक नमूने ही उत्कीरित किये जाते थे। शिल्पकला (स्कल्पचर्) के कोई नमूने नहीं मिले हैं।

---

१२. ग्रेहेम क्लार्क, १९३७, पार्श्वोद्धरित
१३. बर्किट, १९२९, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपकरणों के दो समूह उनके फ़्लिण्ट अथवा हड्डी या बारहसिंघे की सींग के बने होने के आधार पर किये जा सकते हैं। फ़्लिट उपकरणों में पार्श्वगढ़ित ब्लेड, चंद्राकार लघुपाषाण और **विषमभुज त्रिकोण** (Scalene triangles) और कुछ ताग्देन्वाय-ब्यूरीन आदि हैं। स्क्रेपर कई प्रकार के हैं—कोर और **मध्योभार** (Keel) से लेकर अंडाकार और सुन्दर ब्लेड-अंत-स्क्रेपर तक। दो या अधिक फ़्लेक चिन्हों के मिलने से की हुई फ़्लिण्ट कुल्हाड़ी प्रायः कोर पर बनी होती है। एकाध फ़्लेक कुल्हाड़ियाँ भी मिलती हैं। वास्तव में ये कुल्हाड़ियों के फल मात्र होते थे। इनकी मूँठें प्रायः हड्डी या बारहसिंघे की सींग की बनाई जाती थीं। छेद की हुई हड्डी या बारहसिंघे की सींग की कुल्हाड़ियाँ या बसूले भी बनाये जाते थे। हड्डी तथा बारहसिंघे की सींग के बने उपकरणों में एक ओर अंकुश वाली मत्स्य-बर्छियाँ (हार्पून), अस्त्राग्र, बिना अंकुश वाले **मछली फँसाने के काँटे** (Barbless fish-hooks) और चिड़ियाँ पकड़ने वाली लंबी **बर्छियों के काँटे** (Leister prongs) प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। मैग्लेमूज़ उपकरणों के इस विवरण को समाप्त करने के पहले **कुठार** (Axe) और **बसूले** (Adze) की बनावट में भिन्नता बतला देना आवश्यक और उपादेय होगा। वह उपकरण जिसका छेद मूँठ लगाने के बाद उसकी धार के समानान्तर हो वह कुठार है। इसके विपरीत जिस उपकरण में फल की धार मूँठ लगाने वाले छिद्र से समकोण बनाये वह फावड़ा या बसूला (Adze) है। बर्किट का यह मत है कि मैग्लेमूज़ संस्कृति में बसूला-फावड़ा (Axe) प्रकार के उपकरणों की संख्या कुठार (Axe) प्रकार के उपकरणों से कहीं अधिक थी हालाँकि खाद्यावशिष्ट अंबार काल में परिस्थिति इसके ठीक विपरीत रही थी।[१४]

एर्तेबोल (Ertebolle) या खाद्यावशिष्ट-अंबार (Kitchen-midden) संस्कृति :

लिटोरिना (Littorina) अथवा तृतीय काल (५००० से २५०० ईसा पूर्व) में डेन्मार्क के समुद्र-तटीय प्रदेश में इस संस्कृति का विकास मैग्लेमूज़ (Maglemosian) संस्कृति से हुआ था। इस समय समुद्र ने भूमि के कुछ अंश को अपने अन्दर समेट लिया था। इस संस्कृति-निर्माताओं के निवास-स्थल तत्कालीन तट-प्रदेश थे। कदाचित् इसी कारण इनके

१४. वही, पृष्ठ ३७-३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोज्य-पदार्थों में शेल-फ़िश् का बाहुल्य था और इसी के आवरण-अंबार के कारण इस संस्कृति का यह नाम पड़ा। सागरीय (अतलांतिक) जलवायु के इस काल में वन इतने घने हो गये थे कि आखेट बहुत कठिन हो गया था। सागरीय पदार्थों (शेल-फ़िश् आदि) पर निर्भरता का यह एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण था। इस संस्कृति वाले अनेक स्थानों पर गोलाकार पेंदे वाले मिट्टी के भोजन पकाने वाले बर्तन मिले हैं। इसी कारण कई विशेषज्ञ इस संस्कृति को नवपाषाण (नियॉलिथिक) के अन्दर सम्मिलित करना ठीक समझते हैं। मध्यपाषाण के अंतिम् तृतीयांश, में होने के कारण इस संस्कृति पर नवपाषाण का प्रभाव पड़ सकना असंभव नहीं माना जा सकता है। फिर भी विशेषज्ञ इस संस्कृति को मध्यपाषाण के अन्दर रखना ही उचित मानते हैं।

एर्तेबोल (Ertebolle) संस्कृति में फ़्लेक-कुठारों मैग्लेमूज़ कोर-कुठारों की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में बनने लगी थीं। वैसे भी जहाँ मैग्लेमूज़ (Maglemosian) संस्कृति में बसूला-फावड़ा (Adze) प्रकार के उपकरणों की अधिकता थी वहाँ एर्तेबोल या खाद्यावशिष्ट-अंबार (Kitchen-midden) संस्कृति में कुठार (Axe) प्रकार के उपकरण अधिक बनने लगे थे। बारहसिंघा की सींग के बने छेद किये हुए कुठार के फल भी बनाये जाते थे। अनेक प्रकार के स्क्रेपर और उच्च पुरापाषाण (अपर पैलियालिथिक) प्रकार के ग्रेवर भी पाये गये हैं। न तो मैग्लेमूज़ मत्स्य-बर्छियाँ (हार्पून) और न हड्डी के अस्त्राग्र ही इस संस्कृति में पाये गये हैं। **समलंब लघुपाषाण** (Trapezes) खाद्यावशिष्ट-अंबार संस्कृति में ही पाये गये और तार्देन्वाय (Tardenoisian) प्रकार के **अनुप्रस्थ तीर-अग्र** (Transverse arrow-head) भी इसी संस्कृति में धनुष के इस्तेमाल की ओर संकेत करते हैं। इस संस्कृति में कुत्ते को पालतू बनाया गया था।

मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) की उच्च वन्यता के इस संक्षिप्त विवरण को समाप्त करने के पूर्व उपरि-वर्णित संस्कृतियों की उत्पत्ति की समस्या पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। आरंभ में ही यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इस संबंध में विशेषज्ञ एकमत नहीं हैं। अतः आगामी पंक्तियों में जो कुछ कहा जायगा उसका एकमात्र आधार प्रोफ़ेसर ग्रैहेम क्लार्क द्वारा व्यक्त मत ही है।[१५]

---

१५. ग्रैहेम क्लार्क, १९३७, पाश्र्वोद्धरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) की समाप्ति पर साइक्लोनी वृष्टि-झंझा के उत्तर की ओर खिसक जाने के कारण उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के हरे-भरे प्रदेशों में शुष्कता का साम्राज्य होने लगा और वे मरुस्थलीय बनने लगे। इस शुष्कता के साथ ही उत्तरी अफ्रीका की कैप्सियन (Capsian) संस्कृति में धीरे-धीरे छोटे-छोटे उपकरणों का प्राधान्य होने लगा। ऐसी संभावना है कि इसी समय दक्षिणी-पश्चिमी यूरोप में फ़िलिस्तीन और सीरिया निवासियों ने प्रवेश किया। प्रो० क्लार्क का यह मत है कि यूरोप में इन्हीं लोगों ने तार्देन्वाय (Tardenoisian) संस्कृति की नींव डाली। उत्तरी यूरोप की लघुपाषाण संस्कृतियाँ (Microlithic cultures) स्थानीय ऑरिग्नेशी (Aurignacian) संस्कृतियों के इन तार्देन्वाय संस्कृतियों से प्रभावित होकर बालुई प्रदेशों में पनपी थीं।

पुच्छल-अस्त्राग्र संस्कृतियों (Tanged-point cultures) को प्रो० क्लार्क स्थानीय उच्च पुरापाषाण (अपर पैलियालिथिक) परंपराओं से विकसित मानते हैं। इसी कारण इनको **'अपि पुरापाषाण'** (इपी-पैलियालिथिक) या किन्हीं-किन्हीं को अप्योपरान्त (**अपि+उपरान्त**) [Opsi-Palaeolithic] कहना सर्वथा अनुपयुक्त नहीं होगा यद्यपि इनमें लघुपाषाण संस्कृतियों का कुछ प्रभाव निश्चित रूप से परिलक्षित होता है।

उत्तरी यूरोप की तीसरी मध्यपाषाण (मेसॉलिथिक) परंपरा (कुठार-संस्कृतियाँ) तो उस क्षेत्र में हुए जलवायु और वानस्पतिक परिवर्तनों से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हैं। यहाँ पहले बारहसिंघा की सींग के और बाद में फ़्लिण्ट के कुठार (Axes) और बसूले (Adzes) बनाये गये जिनसे मानव वनों के अनुकूलित हो सका। इस **कुठार-बसूला** (Axe-Adze) परंपरा पर जब बाहर से आयी हुई लघुपाषाण परंपरा का प्रभाव पड़ा तो उत्तरी यूरोप की दलदली भूमि में मैग्लेमूज़ (Maglemosean) संस्कृति पुष्पित और पल्लवित हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

नवपाषाण ग्राम्यता तथा प्रथम (खाद्योत्पादक) क्रांति

ऐसा अनुमान है कि आज से लगभग २०,००० वर्ष पूर्व हिमयुग समाप्त हो गया था। ८००० वर्ष से कुछ पहले **प्रातिनूतन** (प्लाइस्टोसीन्) काल के बाद की जलवायु में स्थिरता आने लगी थी यद्यपि उस समय भी तापमान आज कल से थोड़ा अधिक ही था। ६००० ईसा पूर्व तक स्कैण्डिनेवियाई हिम भी पिघल चुका था। यहाँ तक कि यूरोप के नक्शे पर तत्कालीन हिमाच्छादित क्षेत्र को एक-दो बिन्दुओं द्वारा ही दिखलाया जा सकता है। उस समय एक नवीन प्रागैतिहासिक परंपरा का उदय उन प्रक्रियाओं की पूर्णाहुति में हुआ जो इस परंपरा के आगमन की पृष्ठभमि तैयार कर रही थीं। आगामी वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि ये परिवर्तन क्रान्तिकारी सिद्ध हुए। उस समय से मानव के क्रिया-कलाप जीववैज्ञानिक प्रक्रियाओं के स्थान पर सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से संचालित होने लगे।

१८६५ ई० में सर जॉन लुबाक (कालांतर में ये लार्ड एवेबरी के नाम से विख्यात हुए) ने पाषाण युग के **पुरापाषाण** (पैलियालिथिक) और नवपाषाण (नियॉलिथिक) ये दो महान् विभाजन किये थे। इस विभाजन का आधार पुरापाषाण उपकरणों का **फ़्लेकीकरण** (Chipping या Flaking) द्वारा बनाया जाना तथा इसके विपरीत नवपाषाण उपकरणों के बनाने के लिए फ़्लेक निकालने के अतिरिक्त **खुद-खुदा कर** (Pecking), **रगड़ कर** (Rubbing), **घिस कर** (Grinding) तथा **पॉलिश कर** (Polishing) बनाये जाने को माना गया था। किंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि उस समय भी उपर्युक्त तथ्यों से अधिक महत्त्व इस बात को दिया जाता था कि पुरापाषाण उपकरण के साथ जहाँ भौतात्त्विक भूतकाल अर्थात् प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) **हिमावर्तन-हिमप्रत्यावर्तन** (ग्लेशियल्-इण्टर-ग्लेशियल्) के परिचायक अवशेष तथा अब अनुपलब्ध पशुओं के जीवाश्म (फ़ासिल्स्) संबंधित थे, वहाँ नवपाषाण इतने हाल की थी कि इसकी जलवायु, भमि की बनावट, पौधे और वनस्पति, तथा पशु सभी भौतात्त्विक **आधुनिक** (Holocene) में हुए थे और आज के-से ही थे। क्रोबर (Kreober)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने भौतात्त्विक स्थिति, प्रांगिक उद्विकास (आर्गेनिक इवोल्यूशन्) के अंतर के पीछे दोनों के समय में अंतर, को महत्त्वपूर्ण माना है।[1]

बर्किट के मतानुसार **नवपाषाण** (Neolithic) के परिचयात्मक तथ्य ये हैं: खेती करना; पशुओं को पालतू बनाना; मिट्टी के वर्तन बनाना और केवल फ़्लेक निकाल कर उपकरण बनाने के स्थान पर उनको रगड़ना और पॉलिश करना।[2] प्रोफ़ेसर चाइल्ड (V.G. Childe) नवपाषाण को उसके पूर्वगामी स्तर से पृथक् करने के लिए **भौतात्त्विक** (Geological), **उपकरण-निर्माण-वैशिष्ट्य संबंधी** (Technological) और **आर्थिक** (Economic) तीन प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। (१) प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) के स्थान पर भौतात्त्विक आधुनिक (Holocene) प्रकार के पशुवृन्दों की विद्यमानता: (भौतात्त्विक प्रमाण), (२) उपकरणों के कार्यांग बनाने में फ़्लेकीकरण की अपेक्षा रगड़ने और पॉलिश करने को अधिक प्रश्रय देना: (उपकरण-निर्माण-वैशिष्ट्य-संबंधी प्रमाण) तथा (३) पशुओं के पालन और पौधों के उगने की साक्षियों का पाया जाना: (आर्थिक प्रमाण)।[3] यूगिन् सी० वोमन (Eugene C. Woman) कृषि अथवा पशु-पालन या दोनों के सम्मिश्रण के रूप में सज्ञान खाद्योत्पादन को नवपाषाण (नियॉलिथिक) का प्रधान लक्षण और चिकनाये पत्थर के सेल्टों (Celts) और मिट्टी के बर्तनों को गौण लक्षण मानते हैं।[4] क्रोबर भी नवपाषाण के परिवर्तन और विकास की मुख्य धाराओं को इस बात की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व देने के पक्ष में हैं कि विभिन्न कालों में किस प्रकार के कार्यांग बनाये गये। चाइल्ड नवपाषाण के भौतात्त्विक और निर्माण-वैशिष्ट्य-संबंधी प्रमाणों और लक्षणों की अपेक्षा आर्थिक प्रमाणों और लक्षणों पर अधिक बल देते हुए नवपाषाण को 'एक **आत्म संपूर्ण खाद्योत्पादक अर्थ-व्यवस्था**' ('A self-sufficing food-poducing economy') मानते हैं। क्रोबर भी नवपाषाण

१. ए० एल० क्रोबर, १६४८, ऐन्थ्रोपॉलॉजी, हर्कोर्ट ब्रेस ऐण्ड कंपनी, न्यूयार्क, नवीन परिशोधित संस्करण।

२. बर्किट, १६२६, पार्श्वोद्धरित

३. वी० जी० चाइल्ड, १६५२, 'ओल्ड वर्ल्ड प्रीहिस्ट्री: नियालिथिक' ए० एल० क्रोबर संपादित ऐन्थ्रोपॉलॉजी टुडे में पृष्ठ १६३, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो।

४. यूगिन् सी० वोमन, १६४८, नियालिथिक प्रॉब्लम इन द प्रीहिस्ट्री ऑव इंडिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(नियॉलिथिक) को वह युग मानते हैं जिसमें धातु-शोधन की क्रिया मालूम नहीं थी किन्तु अपनी जीविका और उपयोग के लिये तत्कालीन मानव ने पौधों और पशुओं को अपने अधीन कर लिया था।

नवपाषाण की उपर्युक्त आर्थिक परिभाषा ने इस युग को एक क्रांति के रूप में देखना संभव बना दिया है : मानव के सांस्कृतिक विकास के इतिहास में प्रथम महान् क्रांति। किंतु यह नहीं भूलना चाहिये कि **नवपाषाण क्रान्ति** (नियॉलिथिक रिवोल्यूशन्) कोई आकस्मिक घटना नहीं थी वरन् धीरे-धीरे चलती रहने वाली प्रक्रियाओं का परिणाम थी। हमारे लिये यह संभव नहीं है कि हम निर्माण-वैशिष्ट्य की नवीनताओं पर ध्यान न दें। और यह भी नहीं है कि इनका कोई आर्थिक, सामाजिक अथवा आदर्शवादी प्रभाव नहीं पड़ा होगा। फिर भी नवपाषाण के संपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में इनका स्थान दूसरी श्रेणी से अधिक का नहीं कहा जा सकता है। इस काल के उल्लेखनीय सामाजिक-आर्थिक नवीनताओं को परखने के लिये हमें तत्कालीन रहन-सहन के तरीकों और विचारों में हुए परिवर्तनों की ओर देखना होगा। अपनी जीवन-अवधि के बीस में से पहले उन्नीसवें भाग में मानव लुटेरा और शिकारी तथा रक्त-शोषक रहा। बीसवें भाग के आरंभ (नवपाषाण) में बाहरी प्रकृति के प्रति उसके विचार में आमूल परिवर्तन हुआ। वह प्रकृति का रक्त-शोषक न रह कर संचालक और नियंत्रणकर्त्ता बन प्रोफ़ेसर चाइल्ड के शब्दों में उसने प्रकृति से सहयोग कर उस पर नियंत्रण करना सीखा। अपने चतुर्दिक वातावरण के संबंध में मानव-धारणा के इस परिवर्तन के परिणाम इतने व्यापक और बहुमुखी थे कि एक प्रकार से उन्हें क्रांतिकारी ही कहा जा सकता है। अपनी खाद्य-सामग्री का कम से कम आंशिक उत्पादक होने के कारण नवपाषाण क्रांति काल में मानव अपनी खाद्य-पूर्त्ति का नियंत्रणकर्त्ता बन गया। यह एक महान् (क्रांतिकारी) परिवर्तन था जिसके परिणाम-स्वरूप मानव **वन्य** (सैवेज) के स्थान पर बर्बर या **ग्राम्य** (बार्बेरियन) बन गया।

खाद्य-पूर्त्ति पर नियंत्रण का क्रांतिकारी क़दम खाने योग्य बीज या फल वाले पौधों को जानबूझ कर उगा कर उठाया गया था। इससे संबंधित कार्य गाय-बैल, बकरियों, सुअरों और भेड़ों आदि को उनके मांस, चमड़े, रक्त और दूध के लिये पालना था। आजकल के बर्बर लोगों में ये दोनों क्रियाएँ (पौधे उगाना और पशु-पालन) सह-संबंधित ही पाई जाती हों यह आवश्यक नहीं है। किंतु प्रोफ़ेसर चाइल्ड का यह मत है कि यूरोप, चीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों से जो साक्षियाँ मिली हैं उनसे आरंभ से ही **"मिश्रित खेती"** (Mixed farming)--अनाज पैदा करना और साथ ही पशु पालन--की विद्यमानता मानी जानी चाहिये। वैसे 'अनाज पैदा करना' देखने में तो साधारण-सी चीज़ लगती है। इस काम के लिये तो नवपाषाण (नियॉलिथिक) मानव बीज जंगली घासों से प्राप्त करता होगा। किंतु बीज बोने के लिये भूमि तोड़ना आवश्यक होता है। उस समय न तो हल थे और न ही ट्रैक्टर। इसलिये भूमि को खोदने के लिये कोई डंडा आदि काम में लाया जाता होगा। ऐसा ही एक नुकीला टेढ़ा-मेढ़ा डंडा जो हड्डी का बना होता था उस समय इस्तेमाल किया जाता था। इसे अंग्रेज़ी में 'हो' (Hoe) कहा जाता है। इसी से इस प्रकार की कृषि को **'हो'-कृषि** (Hoe-cultivation) कहा जाता है। ऐसा अनुमान है कि वन प्रदेशों में आग लगा कर वहाँ की राख में ऐसे ही बीज छींट दिये जाते होंगें। ऐसे स्थानों पर सिंचाई का विशेष प्रबंध नहीं था इसी कारण ऐसी खेती को **शुष्क-कृषि** (Dry-farming) की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसके विपरीत कृषि की दूसरी पद्धति वह है जिसमें सिंचाई पर निर्भरता रहती है। नील जैसी नदियों में वर्ष में कम से कम एक बार इतनी बाढ़ आती है कि उनके दोनों किनारे दूर-दूर तक जल-प्लावित हो जाते हैं। ऐसा सोचना एकदम व्यर्थ नहीं होगा कि ऐसी **"प्राकृतिक सिंचाई"** (नैचुरल-इरिगेशन) वाले प्रदेशों में हो द्वारा भूमि को गोड़ कर बीज छींट दिये जाते होंगे। उपलब्ध साक्षियों से यह पता चलता है कि पहले पहल जौ-गेहूँ आदि की खेती की गई थी।

उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के उन क्षेत्रों में जहाँ उपर्युक्त, "प्राकृतिक-सिंचाई," पद्धति द्वारा खेती के प्रमाण मिलते हैं धीरे-धीरे शुष्कता बढ़ रही थी। नदियों द्वारा सींचे जाने वाले प्रदेश मरुभूमि में नख़लिस्तान बन कर रह गये थे। इसलिये इन प्रदेशों में चराई वाले पशु धीरे-धीरे उन खेतों की ओर खिच कर आने लगे। खेती कट जाने के बाद भी भूमि में जड़ और भूमि की सतह के ऊपर डंठल के कुछ अंश बच रहते हैं। दूसरी फ़सल बोने के पहले खेत को साफ़ करना आवश्यक होता है। उन दिनों यह काम सरल नहीं था। खेतों की ओर खिंच कर आये हुए पशु कट चुके खेतों में चारे की तरह डंठलों को खाकर तत्कालीन कृषकों का भार हलका करते थे। इसके अतिरिक्त कृषकों ने यह देखा कि जिन खेतों में ये पशु चराई कर चुके होते उनमें फ़सल पहले से अच्छी हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तविक कारण न जान सकने पर भी ये कृषक इन वन्य पशुओं के उनके खेतों में चरने और अच्छी फ़सल में कोई कार्य-कारण-संबंध स्थापित करने लगे होंगे। इस प्रकार इन पशुओं को भगाने की अपेक्षा वे हिंस्र पशुओं से उनकी रक्षा करने को तत्पर हुए हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस तरह ये पशु धीरे-धीरे पालतू बन चले होंगे। इतने निकट से उन्हें देखने पर तत्कालीन मानव को संकट कालीन स्थिति में उनके उपयोगी खाद्य-सामग्री होने का भी पता चला होगा जिसे वे बिना किसी चेष्टा के प्राप्त कर सकते थे। चाइल्ड के शब्दों में उन्हें "खुरों पर खड़ा (जीवित) मांस" मिला होगा जिसे बिना सड़े हुए दीर्घकाल तक जमा रखा जा सकता था। इन पशुओं के और अधिक सूक्ष्म परीक्षण से मानव को उनके दूध की उपयोगिता का भी पता चला होगा। यही नहीं, चलायमान होने के कारण मुद्रा-विनिमय के रूप में उनका महत्त्व कम नहीं रहा होगा। किंतु खेद का विषय यह है कि उन्हें सरलता से चुराया भी जा सकता था। अतः उनकी आर्थिक उपयोगिता ने अनेक संघर्षों को जन्म दिया और उत्प्राणित किया होगा।

प्राक्-नवपाषाण (Pre-Neolithic) काल में खाद्य-सामग्री की प्राप्ति इतनी अनिश्चित थी कि उस समय **सामाजिक बचत** (Social surplus) का कोई प्रश्न ही नहीं था। खाद्य-पूर्ति पर नियंत्रण पा लेने पर नवपाषाण (नियॉलिथिक) मानव के लिये संभव होने के साथ-साथ आवश्यक भी हो गया। उसे आगामी फ़सल बोने के लिये बीज चाहिये, इसलिये कुछ अनाज बचा रखना होगा। यह स्पष्ट है कि एक भूमि-क्षेत्र को केवल शिकार या खाद्य-एकत्रण के लिये इस्तेमाल करने की जगह चरागाह या अनाज उपजाने के खेत या उद्यान की तरह काम में लाकर कहीं अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री प्राप्त की जा सकती है और अधिक बचत की भी आशा की जा सकती है। इन सब तथ्यों को तथा औद्योगिक क्रांति का उदाहरण सम्मुख कर यह कहा जा सकता है कि प्रथम (नवपाषाण या खाद्योत्पादक) क्रांति के आगमन के साथ जनसंख्या में यथेष्ट वृद्धि हुई होगी। इस नवीन अर्थ-व्यवस्था में उन लोगों के लिये भी काम थे—जैसे बच्चे और बुड्ढे—जो आखेट एवं खाद्य-संचयन खाद्य-व्यवस्था के गतिशील तीव्र जीवन में बोझ बन कर रह जाते थे। बच्चे खेतों से कौवे-आदि उड़ाने तथा बुड्ढों के साथ मिल कर पशु-चराने का काम कर सकते थे। इस अर्थ-व्यवस्था ने एक दूसरी नवीन प्रथा को जन्म दिया। पहले विरोधियों और प्रतिद्वन्द्वियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का वध करने के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं था। किंतु नवपाषाण (नियॉलिथिक) मानव ने पशु-पालन से यह सीखा कि मानवों को भी अधीन रख कर उनसे पशुओं का-सा काम लिया जा सकता है। इस अतिरिक्त श्रम से श्रमिक के भोजन से कहीं अधिक खाद्य-सामग्री प्राप्त होगी। जब मानव को यह भान हुआ होगा तब दास प्रथा की नींव पड़ी होगी।

खाद्यान्न को रखना--विशेष रूप से बचे हुए खाद्यान्न को--एक कठिन समस्या थी। इस काम के लिये बर्तनों की ज़रूरत थी। किंतु बर्तनों की इससे भी अधिक आवश्यकता दूध और अन्य तरल पदार्थों को रखने और उन्हें गर्म करने के लिये थी। इस काम के लिये मिट्टी के बर्तनों का उपयोग लगभग सभी नवपाषाण (नियालिथिक) वर्गों में पाया जाता है। **मध्यपाषाण** (मेसालिथिक) में ही मिट्टी के बर्तन बनाये जाने की साक्षियाँ मिली हैं। किंतु उनके बनाने की प्रक्रिया पर पूर्ण नियंत्रण और पूरा-पूरा अधिकार नवपाषाण कुम्हारों को ही हो सका। वैसे तो यह बात साधारण-सी प्रतीत होती है, किंतु इसमें अनेक रासायनिक परिवर्तन होते हैं। उनको समझना और उनका समुचित व्यावहारिक उपयोग करने में सफल हो जाना तत्कालीन मानव की मेधा का परिचायक है। वास्तव में गीली मिट्टी जैसी मुलायम चीज़ को लेकर एक ठोस पदार्थ निर्माण करने और एक आकार गढ़ने के लिये क्रियात्मक प्रतिभा की आवश्यकता है और फिर उसको अपेक्षाकृत स्थाई और मज़बूत बर्तन का स्वरूप प्रदान कर देने उससे भी अधिक आविष्कारक प्रवृत्ति का द्योतक है। इसी तरह सन या ऊन जैसी रेशे वाली कच्ची सामग्री लेकर उससे कपड़ा तैयार करना कुछ कम महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य नहीं है। प्राप्त साक्षियाँ यह बतलाती हैं कि नवपाषाण मानव यह काम भी कर लेता था।

नवपाषाण ग्राम्यता (Neolithic barbarism) की क्रांतिकारिता का वास्तविक चित्र तत्कालीन जीवन को उसके पूर्ववर्त्ती **वन्यता** (Savagery) से तुलना करके ही जाना जा सकता है। कल्पना कीजिये लोगों के उस अत्यंत छोटे समूह की जो स्थाई रूप से गाँवों में नहीं रहता था। क्योंकि उसे अपने आखेट-पशुओं का पीछा करना पड़ता था। वास्तव में उस समय गाँवों की स्थापना ही नहीं हुई थी। इसलिये वन्य (सैवेज) मानव को कभी एक और कभी दूसरे शरण-स्थल या गुफ़ा में शरण लेनी पड़ती थी। उसके पास न तो वस्त्र थे और न ही मिट्टी के बर्तन। हाँ, कुछ उपकरण अवश्य थे, जिनसे वह पशुओं के खाल उतारने और चमड़ा कमाने का काम करता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होगा। उसके जीवन में प्रकृति को परिवर्तित करने के बारे में न तो अवकाश ही था और न क्षमता क्योंकि उसके जीवन का अधिकांश भाग प्रकृति-प्रदत्त खाद्य-सामग्री को प्राप्त करने और अपनी रक्षा का प्रबन्ध करने में ही बीत जाता था।

इसके विपरीत नवपाषाण (नियॉलिथिक) ग्राम्य मानव गाँवों में रहता था जहाँ वह अपने खेतों से दूर नहीं था। वह अपने रहने के लिये घर बनाता था क्योंकि वह अपना बनाने में समर्थ और साथ ही उसका जीवन अब अपेक्षाकृत अधिक स्थायी हो गया था। उसका गाँव अच्छा-खासा, बड़ा, होता था जिसमें आठ से पचास तक घर होते थे। खाद्य-सामग्री के लिये निर्भरता अब कृषि और पशु-पालन पर थी। **ग्राम्यता** (बार्बरिज़्म) में नवपाषाण मानव को अपनी खाद्य-पूर्त्ति पर नियंत्रण हो जाने के कारण सामाजिक बचत भी संभव हो गई थी। अब कुछ लोग खाद्योत्पादन में न लग कर दूसरे काम करते थे और इस प्रकार समाज को आत्म-निर्भर बना सकते थे। बच्चे और बूढ़ों की भी अब आर्थिक उपयोगिता हो गई थी। नवयुवक आखेट और मछली मारना केवल शौक और मनबहलाव के लिये करते थे। इस प्रकार वे जो कुछ प्राप्त करते वह साधारण खाद्य-सामग्री के अतिरिक्त होता था। लोग पहले से अधिक बलवान होने लगे थे क्योंकि उनका भोजन अब पहले से अधिक पूर्ण होने लगा था। मानव अब केवल प्रकृति का दास नहीं रह गया था। उसमें उसे परिवर्तित करने की क्षमता आ गई थी। अपने अतिरिक्त खाद्य-सामग्री को जमा करने के लिये मानव मिट्टी के बर्तन बनाने और शरीर को वस्त्रों से सुसज्जित और सुरक्षित करने लगा था। शायद गाँवों के साथ-साथ रहने के नये नियम और नवीन संगठन-पद्धति भी आई क्योंकि खानाबदोश लोगों के सरदार उन सब झगड़ों का निपटारा नहीं कर सकते थे जो स्थिर और कृषि-प्रधान जीवन में उत्पन्न होते हैं। अब खेतों और पशुओं तथा गाँव-ग्राम्य की सुरक्षा के लिये पूजा-अनुष्ठान होने लगे और नवपाषाण लोगों के साथ उनके देवी-देवतागण भी स्थाई निवासी बनने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ९

कांस्ययुगीन सभ्यता तथा द्वितीय (नागरिक) क्रांति

अब हम मानव-कथा के जिस अध्याय का अध्ययन करेंगे उसे पूर्ण रूप से प्रागितिहासिक कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि इस समय तक लेखन-कला का आविष्कार हो चुका था। फिर भी प्रागितिहासिक के विषय से यह इतना मिलता-जुलता है कि इसको उससे बिल्कुल बाहर भी नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त इन महान् नदी-उपत्यका-सभ्यताओं में से कई की लिपियाँ अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी हैं। यह अध्याय उस समय प्रारम्भ होता है जब तत्कालीन मानव यह जान चुका था कि कुछ विशेष प्रकार के पत्थरों को गरम कर ऐसा रूप दिया जा सकता था या साँचे में ढाला जा सकता था जो ठंडा होने पर वैसा ही रहेगा और साधारण पत्थर के उपकरण से अधिक दिन चलेगा और उसकी धार अधिक तेज़ होगी। दूसरे शब्दों में इस समय तक धातु को पिघलाने और ढालने की प्रक्रियायें औद्योगिक रूप में इस्तेमाल की जाने लगी थीं। साधारणतया इस युग को **कांस्य युग** कहा जाता है। काँसा एक धातु सम्मिश्रण या **अयल** (alloy) है जिसमें ताँबा और टिन मिले होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि काँसा से पहले ताँबा का पता चला होगा। प्रोफ़ेसर चाइल्ड का मत है कि यह आकस्मिक घटना थी कि फ़्रांस, इंग्लैण्ड तथा डेन्मार्क में, जहाँ पुरातात्त्विक कार्य सविस्तार और सर्वप्रथम हुआ था, ताँबे में टिन मिला हुआ पाया गया। वैसे आर्थिक-सामाजिक दृष्टिकोण से कांस्य युग से पृथक् ताम्रयुग का कोई अपना स्थान नहीं है। कांस्य युग की समाप्ति उस समय मानी जाती है जब ताँबा और उसके धातु सम्मिश्रणों के स्थान पर लोहे के उपकरण बनने लगे थे।

एक लम्बी प्रक्रिया के चरमोत्कर्ष के रूप में नवपाषाण (प्रथम) क्रान्ति ने जीवन की धारा को **वन्य (सैवेज)** से **ग्राम्य (बार्बेरियन)** बना दिया। कांस्य युग के तीन-चार हज़ार वर्ष के जीवन में आत्म-सम्पूर्ण छोटे-छोटे गाँव उन विशाल नगरों में बदल गये जिनमें सुव्यवस्थित और सुस्थापित सरकारें थीं। ये सब सर्वप्रथम उस अर्द्ध मरुस्थलीय प्रदेश में हुए जिसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्तरी अफ़्रीका पश्चिम रूशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत के प्रदेश सम्मिलित हैं और जिनमें रेगिस्तान को आंशिक रूप से नखलिस्तान नील और गंगा-सिंधु जैसी नदियाँ बनाती हैं। इस परिवर्तन ने कांस्य युग में जीवन को बर्बर ग्राम्यता से नागरिक सभ्यता में परिवर्तित कर एक ऐसी क्रान्ति उत्पन्न कर दी जिसे हम आधुनिक जीवन का प्रथम चरण कहें तो अनुचित नहीं होगा। आजकल हम अपने दैनिक जीवन में जिन वस्तुओं को सबसे अधिक आवश्यक समझते हैं उनमें से अधिकांश को हम कांस्य युग में अंकुरित होते देख सकते हैं। यही नहीं, चाइल्ड का मत है कि ताँबा या काँसा का औद्योगिक धातु के रूप में उपयोग ही आधुनिक विज्ञान और उद्योग के निर्देशक तत्त्व सिद्ध हुए।

६००० और ३००० ईसा पूर्व के बीच में मनुष्य ने कई नई-नई बातें सीखीं। उसने पहले पशुओं के पीठ पर बोझा ढोने की बात सोची और उन्हें इसकी शिक्षा दी। इस प्रकार जहाँ नवपाषाण ग्राम्यता में उसने पशुओं को घरेलू इसलिये बनाया था कि उनमें अपने खुरों पर **माँस**,' (Meat on Hoof) की कल्पना की थी वहाँ कांस्य युगीन सभ्यता में उसने उनको कहीं अधिक उपयोगी बना दिया। किन्तु पशुओं की उपयोगिता और कार्य-कुशलता और अधिक बढ़ गई जब पहिये का आविष्कार हुआ। यह एक अत्यन्त क्रान्तिकारी आविष्कार था। रथ और गाड़ी में जुड़े हुए पशुओं से भार-वहन और यातायात अधिक द्रुत और सरल हो गये होंगे। पहली बार मनुष्य को दूरी (Space) और समय (Time) का सापेक्षिक सम्बन्ध पता लगा होगा। अपने लम्बे जीवन में पहली बार उसे अपने पैरों को बिना कष्ट दिये हुए ही दूरी तय करने का आनन्दकारी अनुभव हुआ होगा। वास्तव में यह अद्भुत घटना थी। पशुओं (विशेष रूप से बैलों) की उपयोगिता में और अधिक प्रगति हुई। खेत जोतने के लिये अब 'हो' का इस्तेमाल आदिम हो गया था। धातु की उपलब्धिता से हल के फल बनाना साधारण-सी बात थी। 'हो' को हाथ से काम में लाया जा सकता था लेकिन हल को नहीं। इसलिये हल में पशु नाध कर खेत जोतने की एक ऐसी प्रविधि को जन्म दिया गया जो आज तक जीवित है। अब खेती सभी के वश की बात नहीं रह गई। इसमें भी विशेषज्ञों की आवश्यकता थी जो दूसरे क्षेत्र के विशेषज्ञों और पशुओं के लिये खाद्य सामग्री उत्पन्न करें। अब खेतों की रक्षा के लिये उनके बीच में बने मकानों वाली छोटी बस्तियाँ या गाँव नहीं रहे। बड़े-बड़े नगरों में अधिकतर खाद्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुत्पादक लोग रहते थे और खाद्योत्पादक लोग भी उनके बीच में रहना अधिक पसन्द करते थे हालाँकि प्रतिदिन उन्हें अपने खेतों तक आना जाना पड़ता था। कदाचित् वह सोचता होगा कि नगर में रहने पर उसे अधिक सुरक्षा है और साथ ही उसके लड़कों को लोहारी, कुम्हारी अथवा किसी अन्य विशिष्ट व्यवसाय सीखने का अवसर मिल जायगा। इस प्रकार परिवार की बहुमुखी उन्नति की संभावना है।

विशेषज्ञ कृषक अपनी आर्थिक आवश्यकतायें स्वयं पूरी कर सकने में असमर्थ हो गया। अपनी खेती के औजार उसे लोहार से प्राप्त करने पड़ते थे; इसलिये उसे अपनी आवश्यकता से अधिक अनाज पैदा करना आवश्यक हो गया था। इसी प्रकार लुहार भी अपने लिये कच्चा माल अपने नगर या उसके आसपास के क्षेत्रों में नहीं प्राप्त कर सकता था; क्योंकि खाद्यसामग्री का बाहुल्य होने पर भी इन **नदी-उपत्यका** प्रदेशों में कच्चे माल नहीं मिलते थे, जिन पर सभ्य जीवन **आश्रित हैं**। उदाहरणार्थ मिश्र में न तो पर्याप्त इमारती लकड़ी और न ही खनिज धातुएँ, न साधारण पत्थर और न जड़ाऊ पत्थर ही उपलब्ध थे। सुमेर आदि प्रदेशों की अवस्था भी अच्छी नहीं थी। इसलिये जो अतिरिक्त खाद्य उत्पन्न किया जाता था उसके दो उपयोग थे। नगर राज्य के अन्दर कृषक की विशिष्ट आवश्यक सामग्री को प्राप्त करने के अतिरिक्त आवश्यक कच्चे माल के आयात का एकमात्र आधार भी वही था। लेकिन इस कार्य में वैयक्तिक और नागरिक दोनों ही आर्थिक आत्म-संपूर्णतायें समाप्त हो गईं। हम यह जानते हैं कि नव-पाषाण (नियाथिलिक) अर्थ-व्यवस्था का आधार ही आत्म सम्पूर्णता थी। इस नवीन अर्थव्यवस्था में यातायात के साधनों का बहुत महत्व हो गया, आसपास या कुछ दूर तक के स्थलीय व्यापार के लिये तो पहिये वाली गाड़ियाँ थीं। ऐसी अनेक पुरातात्विक साक्षियाँ मिलती हैं जिनसे इन महान् उपत्यका सभ्यताओं के परस्पर संपर्क का पता चलता है हाँलाकि वे बहुत दूर दूर बसी थीं। पशुबल के अतिरिक्त जिस दूसरी वस्तु पर सफल नियंत्रण का प्रयत्न कांस्य युग में सर्वप्रथम हुआ वह थी वायु। यह कार्य उतनी सफलता से स्थल पर नहीं हो सका जितनी सरलता से जल पर। नावों और जहाजों का निर्माण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, सम्पर्क, आवागमन और व्यापार में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। यह स्वाभाविक है कि पादार्थिक तथा आचार-विचार में प्रभाव का क्षेत्र पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत हो गया होगा। व्यापार में विनिमय ठीक से हो सके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसलिये मुहरें तथा ऐसी वस्तुएँ अधिक बनने लगी थीं। इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अन्य समस्यायें उत्पन्न कर दी। व्यापारियों के कारवों और जहाज़ी बेड़ों की रक्षा के लिये सैनिक आवश्यक थे। क्रय-विक्रय का ठीक-ठीक हिसाब रखने के लिये मुंशी होने ही चाहिये। इतना ही नहीं व्यापार में कभी-कभी असहमति और हितों के लिये संघर्ष भी हो जाते हैं, इनका निपटारा करने के लिये सुसंगठित राज्य अधिकारियों का होना आवश्यक है। इस कार्य के उचित संपादन के लिये कुछ निर्देशक नियमों और कानून भी होने ही चाहिये। एक नगर राज्य की सीमा के अन्दर लागू होने वाले नियमों और कानूनों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कानून और सर्वमान्य नियम अवश्य रहे होंगे जो विभिन्न राज्य के व्यापारियों और एक राज्य के व्यापारियों और विदेशी राज्य के व्यापारियों में परस्पर सम्बन्धों को नियंत्रित और संचालित करते होंगे। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि **अन्तर्राष्ट्रीय विधि** (International Law) का आरम्भिक रूप इन्हीं नियमों और अधिनियमों में पाया जायगा। इन सब के अतिरिक्त व्यापार के लिये जिन चीजों की काफ़ी ज़रूरत होती है वे हैं बाट और तौल के मानक (Standards) और गिनने का तरीक़ा। यह स्पष्ट है कि इनकी उपयोगिता व्यापार तक ही सीमित नहीं रही होगी। यह ज्ञानोदय और ज्ञान प्रसार और विज्ञान की प्रगति के साधन थे। प्रोफ़ेसर चाइल्ड तो यह मानते हैं कि कांस्य युग में वैज्ञानिक ज्ञान की जितनी अधिक और तीव्र गति हुई थी वैसी गैलिलियो के समय के पहले तक कभी नहीं हुई। इस सम्बन्ध में यह भी संकेत कर देना उचित होगा कि उस समय नाविकों का पथ प्रदर्शन करने वाले और सूर्य पर आधारित कैलेण्डर भी बनाये गये थे।

अब तक हमने कांस्य युग की जिस प्रगति का वर्णन किया है उसकी आधार-शिला धातुओं का उपयोग था। किंतु ऐसी बात नहीं थी कि एक दिन प्रातःकाल अचानक पत्थर के स्थान पर धातुओं का प्रयोग होने लगा और न यही कि लोगों ने अचानक अपने सभी पत्थर के औज़ार फेंक दिये और धातु के बने सामान इस्तेमाल करने लगे। धातु के उपयोग का अर्थ है गर्म किये जाने पर उसके भौतिक गुणों में होने वाले आमूल परिवर्तनों को पहचानना। वैसे तो खनिज रूप में ताँबा काफ़ी मात्रा में होता है। उसको पीट कर वही आकार दिया जा सकता है जो पत्थर के उपकरणों का होता है। किंतु इसको धातु रूप में उपयोग नहीं माना जा सकता है। धातु को ढाल कर उसको वे सब आकार प्रदान किये जा सकते हैं जो पत्थर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस्तेमाल करने पर संभव नहीं थे। इसके अतिरिक्त एक पत्थर के टुकड़े से उसके आकार से बड़ा उपकरण नहीं बनाया जा सकता है। धातु में ऐसा कोई बन्धन नहीं है। गर्म करने पर धातु में होने वाले परिवर्तनों में संततता को पहचानना और उनके व्यावहारिक उपयोग पर नियंत्रण के लिये जिन तर्कों और विचार-समन्वय की आवश्यकता थी वे आज अत्यन्त उच्च कोटि के वैज्ञानिकों के लिये ही संभव हैं। यह काम बर्बर (ग्राम्य) लोगों के लिये असंभव-सा था क्योंकि इसे विज्ञान के प्रतिष्ठाता ही संपादित कर सकते थे।

पहले तो अवकाश के क्षणों में किसान भी पत्थर के उपकरण गढ़ लेते या मिट्टी के बर्तन बना सकते थे। परंतु लोहारी का काम सरल नहीं था। इस कार्य में दक्षता-प्राप्ति के लिये काफी समय तक किसी विशेषज्ञ की देखरेख में दीक्षा तथा प्रक्षिशण लेने की आवश्यकता पड़ती थी। इसके उपरांत ही कोई उपर्युक्त रहस्यों का जानकार, लुहार, बन सकता। स्पष्ट है कि यह एक स्वतंत्र व्यवसाय बन गया था न कि अवकाश के क्षणों में करने योग्य अविशेषीकृत कौशल। इसका अर्थ यह है कि लुहार अपना खाद्यान्न स्वयं उत्पन्न नहीं कर सकता। इसलिये उसके भोजन की व्यवस्था करना उन लोगों का कर्त्तव्य हो गया जो प्रत्यक्ष रूप से अन्नोत्पादन में ही व्यस्त रहते थे। चूँकि लुहार जो काम कर सकते थे उसे करने में दूसरे लोग समर्थ नहीं थे। वे शक्तिशाली बन बैठे क्योंकि समाज को उनकी आवश्यकता थी। कदाचित् इसी कारण धातु के वस्तुओं की अधिक उपयोगिता मालूम होने पर भी किसानों ने काफ़ी समय तक अपने पुराने औजारों को ही इस्तेमाल करना अधिक पसन्द किया होगा। उन्होंने लुहारों द्वारा प्रदत्त वस्तुओं पर पूर्णतया निर्भर होकर उनके सर्वथा अधीन होना पसंद नहीं किया होगा। इस काम को करने के लिये काफी शिक्षा और संगठन की आवश्यकता पड़ी होगी।

धातुएँ अपनी प्राकृतिक (खनिज) अवस्था में परिशोधित नहीं होती हैं। खनिज धातुएँ साधारण चट्टानों से अलग नहीं मिलती हैं इसलिये उनको अलग करना आसान नहीं है। आज भी खनिज धातुएँ अत्यन्त कड़ी चट्टानों में पाई जाती हैं जिनको काट कर निकालना कठिन काम है। ताँबे के हरे आक्साइड, सल्फ़ाइड, कार्बोनेट या सिलिकेट में लाल चमकता हुआ ताँबा देखना वास्तव में प्रौढ़ **वैज्ञानिक अनुमान** (Scientific inference) का काम था और उससे भी कठिन था इस प्रक्रिया के पूर्ण भेद को जानना।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सब तो सफलतापूर्वक किया ही गया, साथ ही खनिज धातु को पहचान कर उससे निकालने का अर्थ था खान-इंजीनियरिंग् का उच्च ज्ञान और उस ज्ञान का समुचित व्यवहार। इसी प्रकार जब तक धातु को ढालने के लिये **खुले साँचे** (Open mould casting) इस्तेमाल किये जाते रहे तब तक ताँबे की कमियाँ नहीं पता चलीं। वास्तव में दो या अधिक टुकडों वाले **बन्द साँचों** (Closed moulds) का इस्तेमाल ही हमें वास्तविक धातु युग में लाता है क्योंकि इसमें बनाये गये औज़ार पत्थर के औज़ारों की नक़ल मात्र नहीं होते। इस काम के लिये ताँबा उतना उपयुक्त नहीं पाया गया और तब ताँबा और टिन के सम्मिश्रण से बने अयल या धातु-मिश्रण (Alloy) काँसा का जन्म हुआ और इसके साथ वास्तविक धातु युग का आरंभ हुआ। प्रोफ़ेसर चाइल्ड धातु के उपयोग के तीन स्तर बतलाते हैं। उनके मतानुसार सर्वप्रथम धातु का उपयोग हथियार और आभूषण बनाने के लिये किया गया होगा। फिर उस समय पनपने वाले विभिन्न व्यवसायों और कौशलों के लिये धातु के सामान और उपकरण बनने लगे होंगे और कदाचित् सबसे अंत में धातु की सामग्रियाँ कृषि और मोटे कामों में भी लाई जाने लगी होंगी। यह निर्देश करना आवश्यक है कि पहला उपयोग दूसरे से और दूसरा उपयोग तीसरे से पहले हुआ होगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

उत्तरी अफ्रीका (मिश्र) एवं पश्चिमी एशिया से सिंधु घाटी तक के अर्ध-शुष्क प्रदेश में ४००० ईसा पूर्व तक कई समाज थे, जिन्होंने पृथक्-पृथक् जीव-विज्ञान, रसायन, भूगोल तथा ज्योतिष आदि के क्षेत्रों में अपूर्व ज्ञान-भंडार कर लिया था। उनके विश्वासों और **लोक वार्ता** (फ़ोकलोर) में धातु-विद्या, कृषि, भवन-निर्माण कला और कल-विद्या पर वैज्ञानिक धारणाओं की झलक देखी जा सकती है। परस्पर व्यापारिक और आवागमन संपर्कों के कारण इनमें विचारों और पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहता था। इस कारण किसी भी नदी-घाटी सभ्यता में पार्थक्य, आर्थिक स्वतंत्रता या आत्म पूर्णता नहीं पाई जा सकती थी। इसी कारण तत्कालीन उपत्यका-सभ्यताओं में साधारण आत्म-निर्भर कृषकों के गाँव नहीं मिलते। अब वे बड़े-बड़े नगर हैं जो उन गाँवों की अपेक्षा अधिक दूर तक फैले हुए हैं और उनमें कहीं अधिक लोग रहते हैं। कृषकों के गाँव या तो इन नगरों में मिल गये या उन्हीं के पड़ोस में विद्यमान रहे। इन नगरों में केवल कृषक ही नहीं रहते थे। अब समाज वर्गों में विभाजित हो चला था। अर्थ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवस्था में **विशेषीकरण** (Specialisation) पर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा था और बाहरी व्यापार महत्त्व का विषय था। इसमें संदेह नहीं कि जनसंख्या में भी काफ़ी वृद्धि हुई होगी।

इस संक्षिप्त विवरण को समाप्त करने के पहले 'सभ्यता' से यहाँ क्या तात्पर्य है यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। सभ्यता का मूल आधार खाद्योत्पादन है। लेकिन इस दिशा में प्रगति के लिये नवपाषाण (नियॉलिथिक) आत्म-संपूर्ण खाद्योत्पादक अर्थव्यवस्था में हुई उन्नति की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति की आधारशिला आवश्यक है। नवपाषाण की आत्म-संपूर्ण अर्थ-व्यवस्था के ठीक विपरीत अब विशेषीकरण का विशेष महत्त्व हो गया था। यहाँ तक कि खाद्योत्पादन भी समाज के केवल एक–कृषक–वर्ग का काम रह गया था। ये लोग सारे समाज के लिये खाद्यान्न प्रदान करने के लिये उत्तरदायी थे। लेकिन कृषक कृषि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी करने के लिये बाध्य नहीं थे। इससे यह स्पष्ट है कि 'सभ्य-जीवन' (सभ्यता) में कई प्रकार के लोगों का स्थान है। इनमें से कुछ, प्रमुख रूप से कृषक, गाँवों में रहेंगे और कुछ बड़े-बड़े शहरों में। डॉ० बैड्वुड तो नगरों का होना ही सभ्यता की सबसे मुख्य पहचान मानते हैं। इन नगरों में समाज कई स्पष्ट वर्गों में विभाजित था। एक सरकारी व्यवस्था थी जो कुछ नियमों, क़ानूनों और प्रथाओं से संचालित होती थी और जिन्हें संचालनकर्त्ता आवश्यक मानते थे। सामाजिक वर्गों में एक ओर जहाँ राजा और उसके सहायक कर्मचारी और सैनिक थे वहाँ दूसरी ओर पुजारी या धार्मिक अधिकारी भी थे। इसी प्रकार जहाँ व्यवसायी और व्यापारियों का अपना स्थान था वहीं भवन-निर्माता, कुम्हार तथा लुहार जैसे कुशल कारीगर भी थे और थे कृषक जो सब के अन्नदाता कहे जा सकते हैं। जीवन अधिक सुरक्षित और सुव्यवस्थित हो गया था क्योंकि पुलिस या सेना थी और सड़कें, नालियाँ, सिंचाई के नाले और बन्दरगाह बन गये थे। विज्ञान का उदय हो चुका था और ज्ञान-संचय का सर्वोत्तम माध्यम, लेखन-कला, का आविष्कार हो चुका था। ऐसा अनुमान है कि आरंभ में धर्म का सबसे श्रेष्ठ स्थान था। राज्य और क़ानून उससे ही संचालित होते थे और राजा मुख्य पुजारी या ईश्वर-पुत्र माना जाता था। मंदिरों आदि की सुरक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खण्ड ३

भारतीय प्रागितिहास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १०

भारतीय प्रागितिहास की भौतात्त्विक पृष्ठभूमि

भारतीय इतिहास में तथा जन-मन में गंगा सिंधु की घाटी का विशेष स्थान रहा है। भूतत्त्व में यह क्षेत्र अभी हाल का बना होने के कारण उतना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। भूतत्त्वविद् भारत के तीन प्रमुख भौतात्त्विक विभाग करने के पक्ष में हैं: (१) **प्रायद्वीपीय भारत**(Peninsular India), (२) हिमालय प्रदेश या **अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत** (Himalaya region or extra-Peninsular India) तथा (३) **सिन्धु-गंगा** का मैदान (Indo-Gangetic plain.)

प्रायद्वीपीय भारत सिंधु-गंगा के मैदान के दक्षिण में फैले हुए शेष भारत को कहा जाता है। इस प्रदेश के तटीय क्षेत्रों को छोड़ कर सभी स्थान उस महान् पठार से ढके हुए हैं जो प्राचीनतम् चट्टानों से बना हुआ है। यही प्रदेश 'मूल भारत' कहा जा सकता है। उत्तर में विंध्य पहाड़ियाँ तथा उससे थोड़ा दक्षिण में सत्पुड़ा पहाड़ियाँ, इस पठारी प्रदेश के लगभग आर-पार पूर्व-पश्चिम दिशा में स्थित हैं। सुप्रसिद्ध नर्मदा नदी पूर्व से पश्चिम की ओर उस तंग घाटी से होकर बहती है जो विध्न्य पहाड़ियों को सत्पुड़ा से पृथक् करती है। प्रायद्वीपीय पठार के उत्तरी भाग को **मध्य भारतीय पठार** और दक्षिणी भाग को **दक्कन (दक्षिण) पठार** कहा जाता है। नर्मदा और ताप्ती को छोड़ कर इस प्रदेश की प्रायः सभी प्रमुख नदियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं। ये नदियाँ अपने जल के लिये, लगभग पूर्णतया, मानसून पर निर्भर करती हैं। अपने प्रवाह-दिशा तथा जल-स्रोत के दृष्टिकोण से प्रायद्विपीय नदियाँ उत्तरी भारत की मैदानी नदियों से सर्वथा भिन्न हैं। ये प्राचीनतम भी हैं।

बात बहुत दिनों पहले की है। आजकल जहाँ दक्षिण यूरोप के कार्पेथियन एवं आल्प्स पर्वत और हिमालय पर्वत-श्रेणियाँ हैं वहाँ एक सागर लहराता था। इसको टेथिस सागर (Tethys sea) नाम दिया गया है। इस सागर के दक्षिण में एक महाद्वीप था, ऐसा अनुमान है, जो कालांतर में विभक्त हो गया। उसके अवशिष्ट प्रदेश दक्षिणी अमरीका के पूर्वी भाग,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफ्रीका, प्रायद्वीपीय भारत और आस्ट्रेलिया के रूप में आज भी विद्यमान हैं। उस महाद्वीप को भूतत्त्वविद् गोण्डवानालैण्ड नाम देते हैं। मध्यकल्प अथवा द्वितीयक (मेंसाज़ोइक) के अंत तक उपर्युक्त भौगोलिक परिस्थिति परिवर्तित होने लगी थी। इसका कारण भौतात्त्विक उत्पात थे। टेथिस सागर का तल-प्रदेश ऊपर उठते-उठते उस सतह तक पहुँच गया जहाँ सागर-जल था। इस प्रकार टेथिस सागर का अस्तित्व समाप्त हो गया। लेकिन उसका जल गोण्डवानालैण्ड के निचले क्षेत्रों में जमा हो गया। इससे हिन्द महासागर की सृष्टि हुई। टेथिस सागर का तल-प्रदेश अधिकाधिक ऊँचा उठता ही गया। इस भौतात्त्विक **उत्थान** (Upheavel) के फलस्वरूप कुछ ऐसी पर्वत-श्रेणियाँ बनी जो चीन से लेकर यूरोप तक फैली हुई हैं। हिमालय भी इन्हीं में से एक है। संक्षेप में, इस प्रकार प्रायद्वीपीय भारत ('मूल भारत') गोण्डवानालैण्ड से पृथक होकर एक स्वतंत्र भूखण्ड बना। इसके साथ ही साथ 'मूल भारत' के उत्तर में स्थित टेथिस सागर का तल-प्रदेश ऊपर उठने और क्रमशः पर्वत श्रेणी में परिणत होने लगा। हिमालय पर्वत-श्रृंखला के निर्मित होने से भारत का वर्तमान स्वरूप उभरने लगा।

आरंभिक प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) तक हिमालय के उत्थान के कारण उसके और प्रायद्वीपीय भारत के बीच एक गहरी खाई-सी बन गई थी। इस खाई में टेथिस सागर का कुछ अवशिष्ट पानी खारे जल की खाड़ियों के रूप में भरा था। इसके ऊपर के पर्वत प्रदेश से इस खाई में बह कर गिरने वाली सैकड़ों धाराओं के साथ आने वाले मिट्टी कंकड़ पत्थर आदि से खाई धीरे-धीरे पटने लगी और इसके स्थान पर महान् भारतीय (सिंधु-गंगा) मैदान का निर्माण होने लगा।

पर्वत-श्रृंखलाओं के अनवरत उत्थान होते रहने के कारण कंकड़, मिट्टी और बालू आदि ले जाने वाली धारायें सदा उत्प्राणित होती रहीं। सिंधु-गंगा के मैदान सिंधु, गंगा तथा उनकी सहायक नदियों की रेत-मिट्टी से बहुत हाल में बनाया गया। भूतत्त्वविदों का अनुमान है कि आज से लगभग ५००० से ७००० वर्ष पहले ही ये मैदान सूख कर इतने कड़े हुए थे कि उन पर मनुष्य रह सके। इन मैदानों से संबद्ध एक जानने योग्य बात उत्तरी भारत की नदियों की प्रवाह-दिशा है। इस प्रदेश की प्रायः सभी प्रमुख नदियाँ आज दक्षिण-पूर्व या दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हैं। किंतु हिमालय पर्वत-श्रृंखला की सृष्टि के पूर्व टेथिस सागर के समय में उत्तर भारत की नदियां उत्तर से दक्षिण की ओर बहती थीं। आजकल की

CC-0. Mumukshu Bhawan Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिस्थिति तृतीयक (टर्शियरी) के उत्तरार्द्ध में होने लगी थी। इसके ठीक विपरीत प्रायद्वीपीय भारत के नदियों की प्रवाह-दिशा गोण्डवाना काल से उसी अवस्था में चली आ रही है जैसा हम उसे आज पाते हैं।

हिमालय में तीन समानान्तर पर्वत श्रेणियाँ हैं। ये न केवल विभिन्न ऊँचाइयों की हैं वरन् इनकी सृष्टि भी भिन्न-भिन्न समय में हुई थी। एक श्रृंखला उन पर्वत श्रेणियों की है जो सदा हिमाच्छादित रहती हैं और सबसे उत्तर में हैं। इन्हें **मुख्य हिमालय** (Main Himalayas) कहा जाता है। टेथिस सागर के तल-प्रदेश के उभरने और गोण्डवानालैण्ड के 'मूल भारत', अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के बीच की भूमि के डूबने में जिन भौतात्त्विक प्रक्रियाओं का हाथ था उन्हीं ने मुख्य हिमालय पर्वत-श्रेणियों का भी निर्माण किया। प्रायद्वीपीय भारत ('मूल भारत') की तरह टेथिस सागर का तल-प्रदेश भी कड़े पत्थर की **आदिम** (Archaean) अथवा **अजीव** (Azoic) चट्टानों का बना था। जल-जीव जो पृथ्वी पर सबसे पहले उत्पन्न हुए उनके मृत-अवशेष टेथिस सागर के तल-प्रदेश पर पड़े रहे। इसी कारण 'अजीव' चट्टानों पर भी जीवों के अवशेष मिले हैं। इसके अतिरिक्त सागर में गिरने वाली नदियाँ अपने साथ लाई हुई मिट्टी और बालू भी जमा करती रहीं। इससे 'अजीव' चट्टानों के ऊपर **जल-मल** (Sedimentary) चट्टानें स्तरीभूत होने लगीं। प्रथम उत्थान के फलस्वरूप मुख्य हिमालय पर्वत-श्रेणी बनी जिस का गर्भ भाग तो कड़े पत्थर की 'अजीव' चट्टानों का बना था; किंतु उसका शीर्ष भाग **स्तरीभूत** जल-मल चट्टानों (Stratified sedimentary rocks) का बना था, जिनमें प्रथम जल-जीवों के अवशेष भी थे। उस समय यह पर्वत-श्रृंखला आज जितनी ऊँची नहीं थी। पर्वत के बनते ही नदियाँ उसके ऊपरी सतह को काट-काट कर मिट्टी और बालू सागर में बहाने लगीं। इस प्रकार मुख्य हिमालय पर्वत-श्रेणी का जल-मल चट्टानों का आवरण नष्ट हो गया और गर्भ-भाग की 'अजीव' चट्टानें बाहर निकल आईं।

टेथिस सागर के तल-प्रदेश के उठने के बाद उसके अवशेष रूप में एक गहरी किंतु पतली खाई बच रही। पूर्व और पश्चिम में इसने खाड़ी का रूप धारण कर लिया। मुख्य हिमालय के बनने के बाद नदियाँ इस खाई में गिरने लगीं। उनके द्वारा लाई मिट्टी और बालू में चूने की मात्रा अधिक थी इस कारण खाई के तल-प्रदेश में स्तरीभूत होने वाली चट्टानों में चूर्ण-पाषाण (Limestone) का आधिक्य था। इन स्तरों के बीच में उन जल-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवों के अस्थि अवशेष भी जमा होते जाते थे जो खाड़ी-जल में पल्लवित और पुष्पित हो रहे थे। मध्यनूतन (माइओसीन्) काल में हिमालय का द्वितीय उत्थान हुआ। इसके परिणाम स्वरूप मुख्य हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ पहले से बहुत ऊँची उठीं। उसके दक्षिण की खाड़ी का तल-प्रदेश भी उठते-उठते हिमालय की एक नवीन पर्वत-श्रेणी के रूप में परिणित हो गया। इसे **लघुहिमालय** (Lesser Himalayas) कहा जाता है। लघु-हिमालय वे पर्वत-शृंखलायें हैं जो उच्चतम मुख्य हिमालय से सटी हुई उसके दक्षिण में विद्यमान हैं। जाड़े के दिनों में इन पर बर्फ़ जमा हो जाती है किंतु वर्ष के अधिकांश भाग में ये हिमाच्छादित नहीं रहती हैं।

लघु हिमालय की सृष्टि के फलस्वरूप हिमालय पर्वत-प्रदेश और प्रायद्विपीय भारत के बीच की खाई संकरी और कम गहरी हो गई थी। टेथिस सागर के अवशेष के रूप में अब सिंधु की खाड़ी और बंगाल के जलमग्न प्रदेश ही बच रहे थे। इस नई पर्वत-श्रेणी से जो नई-नई नदियाँ बहनी शुरू हुईं उनका जल एकत्र होकर एक महानदी के रूप में परिणित हो गया जो टेथिस (या हिमालय) सागर का एकमात्र अवशेष बच रही थी। यह महानदी आसाम से नैनीताल और शिमला होती हुई उत्तर-पश्चिम दिशा में पंजाब के उत्तर-पश्चिमी छोर तक और वहाँ से दक्षिण दिशा में बहती हुई सिंधु की खाड़ी में जा गिरती थी। इसकी विद्यमानता का पता १९१९ में सर एड्विन पैस्को (Pascol) और डॉ० पिल्ग्रिम (Pilgrim) दोनों को चला। सिंधु, ब्रह्मपुत्र और गंगा की आदि जननी होने के कारण सर पैस्को ने इस महानदी को "इण्डो-ब्रह्म" ("Indo-Brahm") नाम दिया। हरद्वार क्षेत्र की शिवालिक पहाड़ियों के नाम पर पिल्ग्रिम ने इस नदी को "शिवालिक नदी" कहना अधिक पसन्द किया। कई कारणों से यही नाम अधिक उपयुक्त पाया गया है।

हिमालय की तीसरी पर्वत-शृङ्खला लघु हिमालय और सिन्धु-गङ्गा के मैदान के बीच की वह पतली पट्टी है जो पश्चिम में बन्नू के मैदानों से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र की घाटी तक फैली हुई है। इसको वहिर्-हिमालय (Outer Himalayas) कहा जाता है। यह क्षेत्र कभी हिमाच्छादित नहीं होता क्योंकि इसकी अधिक-से-अधिक ऊँचाई ३००० फ़ीट से ४००० फ़ीट तक है। इसका अधिक प्रसिद्ध नाम शिवालिक शृङ्खला (Siwalik series) है। सिन्धु-गंगा की घाटी जिस प्रकार के जल-मल (बालू, मिट्टी आदि) से बनी है उसी प्रकार की सामग्री से शिवालिक शृङ्खला का भी निर्माण हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१५००० फ़ीट से १७००० फ़ीट तक चौड़ी यह स्तर-शृङ्खला बालु-पाषाणों, बालु-चट्टानों, मिट्टियों और बड़े-बड़े (जुड़े) पत्थर के ढोकों से बनी है। समय-समय पर होते रहने वाले भौतात्त्विक उत्पातों के कारण स्तरों में कहीं-कहीं **दरारें पड़ गई हैं** (faulting), वे **मुड़ गये हैं** (folding) और सपाट न रह कर तिरछे भी हो गये हैं (high angles of dip)। इन सब प्रभावों के कारण यह स्तर-शृङ्खला सिंधु-गंगा के मैदानों के स्तरों के से फुलके नहीं बल्कि ठोस और दबी हुई है। किन्हीं-किन्हीं जगहों पर टूट जाने पर भी शिवालिक अवधि (मध्य मध्यनूतन=मिडिल माइओसीन से निम्न मध्य प्रातिनूतन=लोअर मिडिल प्लाइस्टोसीन तक) में जमा हुई स्तर-शृङ्खला की वारंवारता भंग नहीं होने पायी है। शिवालिक शृङ्खला का निचला भाग जहाँ चमकीले (अबरक-मिश्रित) बालु-पाषाणों का वहाँ ऊपरी भाग में प्रायः चिकनी मिट्टी का बाहुल्य है जो कहीं-कहीं विशाल पत्थर-संग्रह से ढके पाये जाते हैं। इस स्तर-शृङ्खला के वैज्ञानिक अध्ययन से पता चला है कि यह जल-र्घाषत पदार्थों से बना है जो शिवालिक नदी की लंबी और चौड़ी घाटी में जमा होते रहे। वाडिया[1] का मत है कि निचले शिवालिक छिछली झीलों या पीछे हटते हुए समुद्र-कोणों में स्तरीभूत हुए थे। मध्यवाली चिकनी मिट्टी की मोटी परतें शिवालिक नदी के तल-प्रदेश में जमा होने वाले धूल-बालू आदि से बनी थीं। ऊपर के विशाल पत्थर-संग्रह पर्वत-निर्माण के समय बह निकलने वाले सोतों और झरनों द्वारा जमा किये गये होंगे।

जब शिवालिक नदी मिट्टी, बालू और कंकड़ आदि जमा कर टेथिस सागर के अवशेष भर रही थी तब उसके उत्तर में लघु हिमालय और उसके उत्तर में मुख्य हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ स्थित थीं। ये आज की तरह न तो वर्फ से ढकी रहती थीं और न ही वे उतनी ऊँची थीं जितनी आज हैं, हिमालय के उत्तर में भी एक सागर लहराता था। हिमालय अधिकतर वनाच्छादित था। शिवालिक की घाटी भी बहुत सघन वनों से ढकी हुई थी। निश्चय ही शिवालिक नदी उस समय एशिया की सबसे बड़ी नदी थी और उसकी घाटी स्थलचर जीवों के निर्वाह के लिए उपयुक्त और अनुकूल थी। इसलिये भाँति-भाँति के प्राणी आकर वहाँ बसने लगे। जीवाश्म साक्षियों से यह पता चलता है कि शिवालिक अवधि में शिवालिक

---

१. डी० एन० वाडिया, १९, जियॉलौजी आव् इण्डिया, पृष्ठ ३६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पशुओं का प्रांगिक उद्विकास (ऑर्गेनिक इवोल्यूशन) बहुत तीव्र गति से हुआ था। शिवालिक पशुवर्गों के बाहुल्य और उनका कामोविकास ये दो ऐसी विश्वसनीय साक्षियाँ थीं कि उनके ही आधार पर शिवालिक स्तर-शृङ्खला का आयु-निर्धारण किया जाता था। **आरम्भिक मध्य प्रातिनूतन** (अर्ली मिडिल प्लाइस्टोसीन) में हिमालय का तृतीय प्रमुख उत्थान हुआ। लघु-हिमालय और मुख्य हिमालय ऊँचा उठ कर वर्त्तमान अवस्था को प्राप्त हुए। शिवालिक नदी का तल-प्रदेश ऊपर उठ कर वहिर्-हिमालय या तल-प्रादेशिक हिमालय (Himalayan foothills) के रूप में हिमालय की तीसरी और सबसे दक्षिण की समानान्तर पर्वत-श्रेणी बन गया। महानदी शिवालिक तीन भागों में बँट गई। ब्रह्मपुत्र, गंगा और सिन्धु तथा उनकी सहायक नदियाँ अपनी वर्त्तमान अवस्था को प्राप्त हुईं। शिवालिक-शृङ्खला के निर्माण का तारतम्य समाप्त हो गया और उसके साथ ही समाप्त हो गई शिवालिक पशुवर्गों (विशेष रूप से पुरुषाभ वानरों) के निवास-स्थान में चलती रहने वाली **उद्विकास प्रकिया** (इवोल्यूशनरी प्रॉसेस)।

शिवालिक-शृङ्खला ब्रह्मपुत्र घाटी से पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश तक फैली है। इसके पूर्वी भाग की अपेक्षा पश्चिमी शिवालिक के सम्बन्ध में अधिक जानकारी है। पश्चिमी भाग में दक्षिणी पंजाब की **नमक की पहाड़ियाँ** (साल्ट रेंज) भी सम्मिलित हैं। इसके उत्तर में पुठवल पठार (Potwar plateau) है जो सिन्धु और झेलम नदियों के बीच के भाग में हिमालय के तल प्रदेश तक फैला है। पुठवल क्षेत्र में शिवालिक शृङ्खला को पुठवल शिवालिक (Potwar siwaliks) कहा जाता है। प्रागैतिहासिक अध्ययन के लिए सम्पूर्ण शिवालिक शृङ्खला में पुठवल शिवालिक सर्वोपयोगी है। यहीं अमरीकी भूतत्त्वविद, डी टेरा (De Terra) को पत्थर के उपकरण मिले थे। यहाँ शिवालिक शृङ्खला ही नहीं वरन शिवालिकोपरान्त निर्माण-प्रक्रियाओं और निर्माणों की साक्षियाँ भी सुरक्षित मिलती हैं। इस प्रकार यहाँ हमें **मध्यनूतन** (मिडिल माइओसीन) से **प्रातिनूतन** (प्लाइस्टोसीन) के अन्त तक की भौतात्त्विक रचनाओं का चित्र मिल जाता है। इसके अतिरिक्त कश्मीर घाटी से सटे होने के कारण हमें प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) के शिवालिक-स्तर-शृङ्खलाओं के आयु निर्धारण को अधिक विश्वस्त प्रमाण मिल सकते हैं। प्रागितिहासज्ञ को शिवालिक शृङ्खला में रुचि इसलिए और है कि इसके सबसे ऊपरी सतह में आदि मानव द्वारा निर्मित पत्थर के उपकरण मिले हैं। वैसे तो किसी भी स्तर-शृङ्खला के प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अंश से ही प्रागितिहासज्ञ को प्रत्यक्ष संबंध होता है किन्तु प्रातिनूतन का आरंभ कब हुआ इसको जानने के लिए **तृतीयक** (टर्शियरी) के उत्तरार्द्ध में क्या हुआ इससे परिचित होना चाहिए। इसी कारण शिवालिक शृङ्खला से पूरा-पूरा परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। शिवालिक-स्तर-शृङ्खला के संक्षिप्त विवरण अगले पृष्ठ की सारिणी में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसे नीचे से ऊपर की ओर पढ़ना चाहिए। बीच की रेखाएँ उन भौतात्त्विक व्यवधानों की ओर संकेत करती हैं जिनके कारण नीचे वाला स्तर मुड़ गया और उसके समतल न रह सकने के कारण ऊपर का स्तर ठीक ऊपर जमा न हो सका।

अगले पृष्ठ की सारणी के ध्यानपूर्वक अवलोकन से यह पता चलता है कि मध्यनूतन (माइओसीन) में आरंभ होकर शिवालिक शृङ्खला का जमा होना मध्य शिवालिक के धोक पठान स्तर तक अवरोध और व्यवधान के बिना चलता रहा। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने वाली बात यह है कि निम्न शिवालिक के चिंजी स्तर में वही पशुवर्ग प्रकार (Pontian) पाया गया है जो परवर्ती मध्य शिवालिक नागरी और धोक पठान स्तरों की विशेषता है। पोन्तिअन पशुवर्ग वाले इन शिवालिक स्तरों की प्रसिद्धि का एक कारण उनमें मिलने वाले पुरुषाभ वानर (ऐन्थ्रापॉयड् एप) जीवाश्म हैं। इन तीनों स्तरों में भी ये पुरुषाभ वानर अस्थि-अवशेष चिंजी और नागरी शिवालिक स्तरों में ही अधिक पाये गये हैं। धोक पठान स्तर में उनकी विद्यमानता अपेक्षाकृत बहुत कम है। प्रसिद्ध अतिनूतन (प्लाइओसीन) हिप्पेरी घोड़ा तथा सूखे मैदानों में चरने वाले ज़िराफ़, गाय-बैल आदि तथा मृग भी धोक पठान स्तर में बहुतायत से पाये गये हैं। यह अंतर महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे जलवायु-परिवर्त्तन की ओर संकेत होता है। चिंजी का लाल रंग का स्तर इस बात की सूचना देता है कि उस समय अतिवृष्टि और वनस्पति का आधिक्य था और जलवायु **अयनवृत्तीय** (ट्रॉपिकल) थी। नागरी स्तर में ताड़ के वृक्षों की विद्यमानता और इसका साँवला रंग **उप-अयनवृत्तीय** (सब-ट्रॉपिकल) जलवायु में जमा हुआ प्रतीत होता है। धोक पठान के भूरे रंग के बालु-पाषाण अवश्य इन दोनों से अधिक सूखे जलवायु में बने होंगे। इससे यह पता चलता है कि चिंजी काल की गर्म-आर्द्र अयनवृत्तीय (ट्रॉपिकल) जलवायु धीरे-धीरे उप-अयनवृत्तीय अर्थात् कम गर्म और शुष्क होती जा रही थी। इन स्तरों के पशुवर्गों में परिवर्तन भी जलवायु-परिवर्तन से तादात्म्य रखता है। यही कारण है कि अयनवृत्तीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवालिक स्तर-शृंखला के संक्षिप्त विवरण

प्रमुख उपविभाग	संग्रह-क्षेत्र	एकत्रित (स्तरीभूत) पदार्थ	भौतात्त्विक काल	पशुवर्ग प्रकार
उच्च शिवालिक (Upper Siwaliks)	घर्षित-विशाल प्रस्तर-पिण्ड (Boulder Conglomerate)	जमीन की मिट्टी, बालू, पत्थर से घिसा बालू और मुख्यत: जल-घर्षित-विशाल प्रस्तर-पिण्ड (Boulder Conglomerates)	आरंभिक-मध्य-प्रातिनूतन (Early Middle Pleistocene)	आधुनिक हाथी (Elephas namadicus); नर्मदा (Narbada fauna)
	पिंजर (Pinjor)	गुलाबी रंग का बालू और जल-एकत्रित मिट्टी (Soil)	निम्न प्रातिनूतन (Lower Pleistocene)	विलेफ्रेञ्चियन (Villefranchian) घोड़ा (Equus); गाय-बैल (Bos); हाथी (Eliphas)
	टैट्राट (Tatrot)	भूरे रंग के छोटे-छोटे जल-घर्षित पत्थर (gravels)		
मध्य शिवालिक (Middle Siwaiks)	धोक पठान (Dhok Pathan)	मटमैले रंग की चिकनी मिट्टी और साधारण मिट्टी; किंतु बाहुल्य खेत और भूरे रंग के बालु-पाषाणों और बालु-चट्टानों का है।	उच्च अतिनूतन (Upper Pliocene)	ड्रायोपिथेकस (Dryopithecus) पैलियोपिथेकस (Palaeopithecus) रामापिथेकस (Ramapithecus)

निम्न शिवालिक (Lower Siwaliks)	नागरी (Nagri)	मोटे-मोटे और बड़े बालु-पाषाणों का प्राधान्य है और लाल रंग के चिकनी मिट्टी और साधारण मिट्टी के चट्टान अपेक्षाकृत कम हैं।	मध्य अतिनूतन (Middle Pliocene)	Pontian	शिवापिथेकस (Sivapithecus) हाइलोपिथेकस् (Hylopithecus) ड्रायोपिथेकस (Dryopithecus)
	चिञ्जी (Chinji)	चमकीले लाल रंगके चिकनी मिट्टी (shales) और साधारण मिट्टी (clays) के गोलाकार ढेलों की प्रमुखता है। भूरे रंग के बालु पाषाण और पिंड से लगने वाले पदार्थ कम हैं।	निम्न अतिनूतन (Lower Pliocene)	पोन्तिअन	सुग्रीवापिथेकस (Sugrivapithecus) पैलियो पिथेकस (Palaeopithecus)
	कम्लिआल (Kamliyal)	कालापन लिये हुए कड़े बालु-पाषाण (sandstones) तथा लाल और बैंगनी रंग की चिकनी मिट्टी (shales) और पिण्ड से लगने वाले पदार्थ।	उच्च मध्यनूतन (Upper miocene)		
	मरी (Murree)	बालु-पाषाण (Sandstones) तथा चिकनी मिट्टी (shales)			

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जलवायु में पनपने वाले पुरुषाभ वानर (एन्थ्रोपॉएड एप्स्) चिंजी स्तर से धोक पठान स्तर की ओर अपेक्षाकृत कम होते जाते हैं और धोक पठान स्तर में खुले मैदानों में चरने वाले पशुओं की संख्या बढ़ती जाती है।

मध्य शिवालिक के अन्त तक जो जलवायु-परिवर्तन देखे गये वे अप्रत्याशित या अकारण नहीं थे। डी टेरा और पैटर्सन (H. De Terra and T.T. Paterson) ने टील्हर्ड डी चार्डिन (Teilhard de chardin) की सहायता से किये गये अपने सराहनीय शोधों द्वारा यह दिखलाया है कि यह उस विश्वव्यापी जलवायु-परिवर्तन की पूर्व-सूचना के समान था जिसमें उत्तरी गोलार्द्ध का अधिकांश भाग काफ़ी समय तक हिमाच्छादित रहा था। पीछे के विवरणों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि ऐसी दशा प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) काल में हुई थी। शिवालिक शृङ्खला के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इसके आरम्भ से मध्य शिवालिक के अन्तिम स्तर (धोक पठान) के जमा करने वाले निर्विघ्न क्रम का अन्त हुआ। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि शिवालिक शृङ्खला का ही अन्त हो गया। मध्य शिवालिक के जमा हो जाने के बाद पर्वत निर्माणकारी-भौतात्त्विक प्रक्रियाओं ने **व्यवधान** (Unconformity) उपस्थित किया, ऊपरी स्तर मुड़ गये और उनके ऊपर के उच्च शिवालिक स्तर नये सिरे से जमा होना शुरू हुए। इस नवीन जमाव-क्रम के साथ नये पशुवर्ग भी सम्बन्धित पाये गये हैं। आरंभिक तथा मध्य शिवालिक के हिप्पेरी घोड़े और अन्य पोन्तिअन (Pontian) पशुओं और पुरुषाभ वानरों का उच्च शिवालिक के आरम्भ से ही एकान्त अभाव पाया गया है। इसके स्थान पर हाथी (Elephas) **घोड़े** (Equus) तथा **गाय-बैलों** (Bos) का अचानक और एक साथ उच्च शिवालिक के आरंभ से ही पाया जाना ध्यान देने योग्य बात है। ये जन्तु एक नवीन पशुवर्ग के अंतर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। उसे विलेफ्रेन्चियन पशुवर्ग (Villefranchian fauna) कहा जाता है। पिछले एक अध्याय में हम यह बतला चुके हैं कि अधिकांश भूतत्त्वविद एवं प्रागितिहासज्ञ इन पशुओं की विद्यमानता को प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) के आगमन की निश्चित साक्षी मानते हैं। हमने यह भी देखा था कि १९४८ के पहले प्रायः अधिकांश प्रागितिहासज्ञ तो प्रातिनूतन की परिभाषा देने की आवश्यकता ही नहीं समझते थे। यदि कभी प्रातिनूतन की व्याख्या की भी जाती थी तो विलेफ्रेन्चियन पशुवर्ग को उसके अन्दर सम्मिलित नहीं किया जाता था। हमारे लिये यह अत्यन्त संतोष की बात है कि डी टेरा ने भारत के लिए ऐसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं किया था। उन्होंने टिल्हर्ड डी चार्डिन के साथ मिल कर मध्य शिवालिक के धोक पठान और उच्च शिवालिक के टैट्राट (Tatrot) स्तरों को पृथक् करने वाले व्यवधान (Unconformity)को और उससे भी अधिक उसके साथ होने वाले पोन्तिअन (Pontian) पशुवर्ग से विलेफ्रेञ्चिअन (Villefranchian) पशुवर्ग में परिवर्तन को प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) का सूचक माना है।

पुठवल शिवालिक क्षेत्र में टैट्राॅट् स्तर लगभग १००० फीट मोटा है। इसी से यह पता चलता है कि उस समय काफ़ी वर्षा हुई होगी और अनेक उमड़ती धाराओं ने उन पत्थरों को जमा किया होगा। इस स्तर में रासायनिक प्रक्रियाओं का न होना इस बात की ओर संकेत करता है कि इसके जमा होने के समय हिमाच्छादन रहा होगा। इसी प्रकार यह भी देखा गया है कि इस प्रथम उच्च शिवालिक स्तर में पशुओं की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। इससे इसके प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) के प्रथम हिमावर्तन (ग्लेशियल) के समय जमा होने का अनुमान अधिक पुष्ट हो जाता है। टैट्राॅट जल-घर्षित **पत्थरों** (ग्रैवेल्स) का रंग भूरा है। निर्माण-सामग्री में परवर्ती पिंजर (Pinjor) स्तर टैट्राॅट स्तर से सर्वथा भिन्न है। इसके गुलाबी बालू और मिट्टी के कण ऐसी जलवायु में जमा हुए होंगे जब रासायनिक क्रिया हो सकती थी। पशुवर्ग के दृष्टिकोण से पिंजर स्तर टैट्राॅट से भिन्न नहीं हैं। किन्तु इसमें पूर्ववर्ती स्तर की अपेक्षा विलेफ्रेंची पशुओं की संख्या कहीं अधिक है। इससे तथा स्तर के रंग से यह पता चलता है कि पिंजर काल में टैट्राॅट की सी ठंडक नहीं पड़ती थी। अतः यह अनुमान है कि पिंजर स्तर **प्रथम हिमप्रत्यावर्तन** (इण्टरग्लेशियल) काल में जमा हुआ होगा। यह उल्लेखनीय है कि इस स्तर में जिस प्रकार का हाथी (Elephas Hysudricus) पाया गया है वह काश्मीर के 'निम्न करेवा' निर्माण-स्तर में मिला था। इस प्रकार पिंजर की आयु की ठीक-ठीक पुष्टि हो जाती है।

पिंजर और उसके बाद के उच्च शिवालिक स्तर, घर्षित-विशाल-प्रस्तर-पिंड (Boulder conglomerate) के बीच में एक भौतात्त्विक व्यवधान (Unconformity) देखा गया है। इसका पता मुड़न और कटान से चलता है। व्यवधान के साथ ही पशुवर्ग में भी परिवर्तन पाया गया है। घर्षित-विशाल-प्रस्तर-पिण्ड स्तर में पाया गया हाथी (Elephas antiquus namadicus) अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक हैं। इसी कारण इस स्तर के पशुवर्ग को नर्मदा पशुवर्ग (Narbada fauna) पृथक् नाम दिया गया है जो नर्मदा और गोदावरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदियों की घाटियों में मध्य प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) में बहुतायत से थे। इस शिवालिक स्तर का अधिक महत्व इसमें पाये गये मानव-निर्मित उपकरणों के कारण है। इसको डी टेरा और पैटर्सन ने "प्राक-सोहन" (Pre-Sohan) उद्योग नाम दिया है। किंतु इस उच्च शिवालिक स्तर में जमा हो जाने पर द्वितीय हिमावर्तन (ग्लेशियल) के बाद एक बार फिर भू-उत्पात हुए। इसके फलस्वरूप महानदी शिवालिक का अस्तित्व ही मिट गया और उसका स्थान आधुनिक भारत की नदियों ने ले लिया। पुठवल पठार के शिवालिक शृंखला के ऊपर से होकर सिंधु की सहायक सोहन नदी बह निकली। उस क्षेत्र में इस नदी ने कई नदी-सोपान काट डाले हैं। शिवालिक शृंखला की समाप्ति के बाद के स्तरीय साक्षियों के रूप में इन नदी-सोपानों का विशेष महत्व है। शिवालिक शृंखला के साथ इनको सम्मिलित कर हमें उच्च मध्यनूतन (अपर माइओसीन) से प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) के अंत तक पूर्ण भौतात्त्विक चित्र उपलब्ध हो जाता है। इस वर्णन से यह नहीं समझना चाहिये कि सिंधु की अन्य सहायक नदियों या स्वयं सिंधु ने नदी-सोपान नहीं बनाये। किंतु सोहन के नदी-सोपानों में मानव-निर्मित उपकरणों के पाये जाने से उसका मूल्य कुछ अधिक है।

प्रथम नदी-सोपान---यह सोहन नदी की सतह से २२० फीट ऊँचा है और ऐसा अनुमान है कि उस समय यहाँ भैंस, गैंडा, घोड़ा आदि पशु रहते होंगे और जलवायु अति-शीतल नहीं थी। सोपान का स्वरूप और फिर से जमा हुए घर्षित-विशाल-प्रस्तर-पिण्ड इस बात के प्रतीक हैं कि इसका निर्माण जमा होने की प्रक्रिया से नहीं हुआ था। दूसरे शब्दों में यह **कटान-निर्मित** (इरोजनल) सोपान है जो द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन (इण्टर-ग्लेशियल) में बना था। इस सोपान में दो प्रकार के उद्योग पाये गये हैं जो समकालीन थे। पहला तो मद्रासीय एबेवीली-एश्यूली हैण्डैक्स उद्योग है। दूसरे उद्योग में पेबुल-उपकरण और फ्लेक उपकरणों का बाहुल्य है। डी टेरा ने इस उद्योग को 'सोहन' नाम दिया है। सिंधु नदी की घाटी में प्रथम नदी-सोपान की ऊँचाई ४१० फीट है।

द्वितीय नदी-सोपान--यह नदी-सोपान अपेक्षाकृत अधिक मोटा (३५० फीट) है। इसकी बनावट से इसके दो स्पष्ट भाग किये गये हैं। नीचे वाला अर्द्धांश छोटे-छोटे पत्थर के **टुकड़ों** (Basal gravel) से बना है। इसके ऊपर पीले रंग की 'लोएस' मिट्टी का मोटा आवरण है जिसे 'पुठवल लोएस' (Potwar Loess) कहा जाता है। ऐसा अनुमान है कि उस समय के अर्द्ध-

CC-0. Jangamwadi Math Collection / Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शुष्क जलवायु में रहने वाले मुख्य पशु भेड़िया, जंगली साँड़, घोड़ा और ऊँट आदि थे। सोहन नदी की सतह से इस नदी-सोपान की ऊँचाई १२० फीट है। इस सोपान के साथ जो उद्योग संबंधित हैं उसे अंतिम सोहन (Late Sohan) कहा गया है। सोपान के निम्न अर्द्धांश (Basal gravel) में अंतिम सोहन 'ए' और ऊपरी 'पुठवल लोएस' में अंतिम सोहन 'बी' उप-उद्योग संबद्ध पाये गये हैं। इसकी आयु तृतीय हिमावर्तन (ग्लेशियल) आँकी गई है।

तृतीय नदी-सोपान––तृतीय हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल्) का यह कटान-निर्मित नदी-सोपान सोहन नदी की वर्तमान सतह से केवल ८० फीट ऊँचा है। इस नदी-सोपान के साथ पत्थर के मानव-निर्मित उपकरण संबद्ध नहीं पाये गये हैं।

चतुर्थ नदी-सोपान––सोहन नदी द्वारा निर्मित यह प्रातिनूतन (प्लाइ-स्टोसीन) का अंतिम नदी-सोपान है। **उच्चयन-निर्मित** (ऐग्रेडेश्नल्) इस नदी-सोपान की सोहन नदी की सतह से ऊँचाई ४० फीट बताई गई है। इस नदी-सोपान के साथ पाये गये उपकरणों को 'उद्विकसित सोहन' (Later or Evolved Sohan) कहा गया है। इसके चौथे हिमावर्तन (ग्लेशियल्) काल के होने का अनुमान है।

पंचम नदी-सोपान––यह उच्चयन-निर्मित सोपान प्रातिनूतन की समाप्ति पर **आधुनिक** (Holocene) में बना प्रतीत होता है। डी टेरा ने इस स्तर पर लघु**-कापालिक आधुनिक** मानव के **अस्थि-पिंजर** (Dolicocephalic Homo Sapiens) तथा पुरापाषाण के बाद के उपकरण तथा अन्य प्रमाण पाये हैं। इस सोपान की ऊँचाई सोहन नदी की सतह से केवल २० फीट है।

सोहन नदी की घाटी में भौतात्त्विक स्तरों और प्रागैतिहासिक उद्योगों के ऊपर-वर्णित विवरण को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

द्वितीय हिमावर्तन (ग्लेशियल) काल के घर्षित-विशाल-प्रस्तर-पिण्ड (Boulder conglomerate) के ऊपरी भाग में बड़े-बड़े फ़्लेक पाये गये हैं। क्वार्टजाइट् (quartzite) और स्लेद के बने ये फ़्लेक "प्राक-सोहन" (Pre-Sohan) कहे गये हैं। रावलपिण्डी के पास ही एक स्थान पर द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन (इंटरग्लेशियल्) कालीन प्रथम नदी-सोपान के ऊपरी अंश के प्रमाण मिले हैं। यहाँ पर एश्यूली हैण्डैक्स, फ़्लेक और कोर मिले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। चौन्तरा (Chauntra) नामक स्थान पर तृतीय हिमावर्तन काल के (द्वितीय) नदी-सोपान के निचले अंश में पाये गये एकदम घिसे हुए पेबुल-उपकरण और हैण्डैक्सों के द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन काल में बनाये जाने का अनुमान है। इस प्रकार इस काल में दो समानान्तर पुरापाषाण परंपरायें विद्यमान पाई गई हैं। द्वितीय नदी-सोपान और तृतीय नदी-सोपान के निम्नतम भाग में घिसी हुई अवस्था में "अंत सोहन" उपकरण पाये गये हैं। इसमें पेबुल-उपकरणों के ऊपर फ़्लेकों और कोरों का आधिक्य है। द्वितीय नदी-सोपान के ऊपरी और निचले भागों के अनुसार "अंत-सोहन" उद्योग के भी दो भाग हैं। बहुत घिसे उपकरणों के अतिरिक्त तृतीय नदी-सोपान में पाये गये कुछ कम घिसे लेवलाएज फ़्लेकों से यह पता चलता है कि तृतीय हिमप्रत्यावर्तन (इंटरग्लेशियल) काल तक अंत-सोहन परंपरा चलती रही। परवर्त्ती चतुर्थ हिमावर्तन (ग्लेशियल) काल के चतुर्थ नदी-सोपान के स्तर में पाये गये उपकरण उत्तर-अंत-सोहन (Post Late Sohan) हैं। मोविअस इसे उद्विकसित सोहन (Evolved Sohan) कहते हैं।

करेवा झील और करेवा शृंखला

लघुहिमालय के लंबे चौड़े विस्तृत क्षेत्र में से दक्षिण-पश्चिमी कश्मीर का प्रदेश हमारे लिये बहुत उपयुक्त है। यहाँ हमें प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल के जलवायु-परिवर्तनों की सूचना और संकेत स्तरीय साक्षियों द्वारा मिलती हैं। पुठवल (शिवालिक) पठार के इससे सटे होने के कारण दक्षिण-पश्चिमी कश्मीर का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। यहाँ प्रातिनूतन में हिमाच्छादित और उससे सटे परी-हिमावर्तित प्रदेशों के स्तरीय निर्माणों और परिवर्तनों के संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन संभव है। इस प्रकार शिवालिक क्षेत्रों के प्रातिनूतनकालीन स्तरों की आयु की पुष्टि का जीवाश्मों के अतिरिक्त अन्य साक्षियाँ मिलती हैं।

प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) कालीन कश्मीर हिमालय की भौतात्त्विक अवस्था का वर्णन करने के लिये 'करेवा' शब्द का अर्थ बतलाना अनिवार्य हो जाता है। कश्मीर के लोग तो 'करेवा' शब्द को वर्णनात्मक ढंग से इस्तेमाल करते हैं। लीडेक्कर (Lydekker), मिडिल्मिस् (Middlemiss) और दूसरे **जीवाश्मविद्याविशेषज्ञों** (Palaeontologists) ने 'करेवा' को स्तरीय अर्थ में प्रयोग किया। **'करेवा'** (Karewa) अथवा करेवाशृंखला (Karewa

CC-0. Jammu Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Series) से तात्पर्य प्रातिनूतन कालीन हिमी **'करेवा' झील** के रुके जल में नदी के बहते जल द्वारा नई मिट्टी-बालू आदि के जमा होने के कारण बने किंतु भौतात्त्विक प्रक्रियाओं द्वारा **मुड़े हुए** (folded) **झील स्तरों** (lake beds) से है जो पीर पंजल पहाड़ियों के कश्मीर की ओर के किनारे पर हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई वैज्ञानिकों ने, जिनमें गॉडविन-ऑस्टेन (Godwin Austen) और लीडेक्कर (Lydekker) प्रमुख थे, यह मत व्यक्त किया था कि करेवा झील के निर्माण में पीर पंजल के उत्थान का बहुत योगदान था। इन्होंने तथा दैनेली (Dainelli) ने यह बताया है कि बरामुला से नीचे के एक स्थान पर इस झील का बहाव मार्ग था। डी टेरा ने यहाँ पानी में बँध कर रुके रहने को काफ़ी महत्त्वपूर्ण बतलाया है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष संबंध करेवा झील के निर्माण और करेवा स्तरों की रचना से है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि गॉडविन-आस्टेन और लीडेक्कर के झील के बहाव-मार्ग ने झेलम नदी के पर्वतों के बीच का सँकरा प्रवाह-मार्ग बनाया होगा जो बारामुला के पास आज भी विद्यमान है। डी टेरा इस मत का विरोध नहीं करते। बारामुला के निकट एक स्थान पर झेलम नदी मुड़ी हुई है। वहाँ नदी पहाड़ की एक ऊँची उभरी चोटी से होकर बहती है। ओएस्ट्रीक (Oestreich) के इस अनुमान से डी टेरा सहमत हैं कि प्राक्-हिमावर्तन (preglacial) काल में पीर पंजल के उत्थान के पहले झेलम नदी ने बालू और मिट्टी से इस स्थान की गहराई कम कर दी थी। इससे नदी की ढाल अब उतनी विषम नहीं रह गई थी। इसी समय पीर पंजल का उत्थान हुआ जो पहले मामूली था। इसके फलस्वरूप झेलम का कश्मीर घाटी के बाहर प्रवाह रुक गया और इससे घाटी में बाढ़ आ गई। पीर पंजल के और ऊपर उठने और उससे सटे हुए घाटी प्रदेश के धँस जाने से करेवा झील की रचना का कार्य लगभग पूरा हो गया। ऐसा सोचना ठीक नहीं होगा कि करेवा झील के पानी के लिये कश्मीर घाटी से बाहर निकलने का कोई भी मार्ग नहीं था। पानी अभी भी बाहर की ओर बहता था लेकिन पीर पंजल के ऊँचा उठ जाने के कारण अब वह केवल सोता रह गया था और नदी के पुराने मार्ग की दिशा प्राप्त नहीं कर सकता था। इस कारण चट्टानों के बीच के सँकरे रास्ते से बहने के लिये बाध्य होना पड़ा। चूँकि प्रवाह-जल आधारशिला तक नहीं पहुँच सका था, इस कारण झील का पानी बाहर नहीं बह सका। प्रथम हिमप्रत्यावर्तन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(इंटरग्लेशियल) के अंत में एक और भू-उत्पात हुआ। इससे पीर पंजल और ऊपर उठा और निम्न करेवा स्तर, जो उस समय तक झील में जमा हो चुके थे, बुरी तरह मुड़ गये पहाड़ी के पास दरार पड़ जाने से प्रवाह-जल झील की आधारशिला तक पहुँच गया। इस कारण द्वितीय हिमावर्तन (ग्लेशियल) काल में झील का विस्तार कम हो गया और उसकी सतह पहले से बहुत नीची हो गई। परवर्त्ती द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल) काल में झील के एक बार फिर गहरा होने के प्रमाण हैं और जमा होने की प्रक्रिया ने थोड़े समय के लिये वहिप्रवाह-मार्ग को बंद-सा कर दिया। झील का तल प्रदेश भी नीचे धँस गया था। किंतु इस हिमप्रत्यावर्तन काल के मध्य तक जल-वर्षा बहुत कम हो गई और बर्फ पिघलने से बनने वाला जल भी कम हो गया। पानी ने वहिप्रवाह-मार्ग प्राप्त कर लिया और ऊपर उठने के कारण घाटी एक बार तिरछी हो गई। तब झील का सारा पानी बह गया और उसी प्रदेश में जहाँ पहले झील थी झेलम नदी तथा उसकी सहायक नदियों ने नदी-सोपान काट डाले। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि करेवा नामक स्तरीय प्रमाण उसी नाम के एक झील में जमा हुए जिसका एक स्वाभाविक बहिर्प्रवाह मार्ग था। यह झील मिट्टी और बालू जमा होने के कारण भरती रही और इसकी सतह में भी परिवर्तन होते रहे जिसका बहुत कुछ कारण जलवायु का बदलना था।

"निम्न करेवा झील-तल" (Lower Karewa lake beds) शब्दावली सबसे पहले १८८३ में लीडेक्कर ने पीर पंजल पहाड़ियों के कश्मीर की ओर ढलान के पास मुड़े (folded) झील के रुके पानी में जमा हुए मोटे स्तरों के लिये इस्तेमाल किया था। १९१० ई० में मिडिल्मिस ने इन्हें **चतुर्थक** (क्वाटर्नरी) युग का बतलाया। पीर पंजल की ढाल पर ये ८० मील लंबे और ८ से १६ मील तक चौड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं। ऐसा अनुमान है कि ये स्तर-समूह २१६० फीट मोटे हैं। ये स्तर प्रथम हिमप्रत्यावर्तन (इंटरग्लेशियल) काल में बने थे यह जानकर आश्चर्य होता है। भौतात्त्विक प्रमाण इस ओर संकेत करते हैं कि उस समय मुख्य हिमालय और पीर पंजल दोनों ऊपर उठ रहे थे। इसके संतुलन के रूप में यदि कश्मीर घाटी, जो उस समय करेवा झील का तल-प्रदेश थी, कुछ धँसती रही हो तो जान कर अचंभा नहीं होना चाहिये। जल-वृष्टि उन दिनों वहाँ आज से कहीं अधिक होती थी। वर्षा के जल के अतिरिक्त ऊँची पर्वत चोटियों के स्थिर **हिमनदियों** (ग्लेशियर्स) से पिघल कर आता हुआ पानी भी अपने साथ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहा कर लाई हुई सामग्री करेवा झील में ही गिराता होगा।

निम्न करेवा स्तरों के प्रथम हिमप्रत्यावर्तन (इंटरग्लेशियल) से पहले के छोटे-छोटे पत्थरों का एक स्तर मिलता है जिसके नीचे रक्ताश्मकालीन (ट्रिआसिक) चूर्ण पत्थरों की आधारशिला मिलती है। सोम्बर (Sombur) नामक स्थान पर के निम्न करेवा स्तर को **अस्थि-तल** (Bone bed) कहा गया है। पीलापन लिये हुए-से हल्के भूरे रंग तक की मिट्टी में घोंघा, स्तन-पायी पशुओं, मछलियों और चिड़ियों के अस्थि अवशेष पाये गये हैं। इसी स्थान के निम्न करेवा अस्थि-तल में एक हाथी दाँत पाया गया जो बहुत ही अच्छी अवस्था में था। सीधी दाँत वाले हाथी (Elephas Plantigrous) के समान और समकालीन भारतीय हाथी (Elephas hysudricus) के दाँत और शरीर के दूसरे अंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इससे निम्न करेवा के आदि प्रातिनूतन (अर्ली प्लाइस्टोसीन्) कालीन होने का अनुमान ठीक निकलता है। शिवालिक शृङ्खला के समवर्त्ती स्तरों (टैट्राट–पिंजर) में भी इसी प्रकार के हाथी के अस्थावशेष के एक ही समय में निर्मित होने का प्रमाण पुष्ट हो जाता है। निम्न करेवा को मोड़ने वाले भौतात्त्विक व्यवधान का प्रतिरूप पिंजर और घर्षित-विशाल प्रस्तर पिण्ड उच्च शिवालिक स्तरों को एक दूसरे से पृथक करने वाला व्यवधान है।

उच्च करेवा स्तरों (Upper Karewa beds) की मोटाई ५५ फीट से २०० फीट तक पायी गई है। इसमें महीन धूल-कणों से बने पीले या चम-कीले भूरे रंग की परतों में कहीं-कहीं भूरे रंग के बालू की परतें पाई गई हैं। बालू की परत में एक स्थान पर मेरुदंडी पशु (Cervus sp.) और मीठे पानी की मछलियों के अवशेष के अतिरिक्त पशु अस्थि-अवशेषों का उच्च करेवा स्तरों में एकान्त अभाव है। मिट्टी (Silt) की परतें प्रायः आपस में जुड़ी हुई हैं। उनमें कुछ पेड़ों के पत्तों और घासों के निशान बने मिले हैं और कुछ ऐसी घासों के पराग पाये गये हैं जो कश्मीर में सूखे स्थान पर उगती हैं। इससे यह पता चलता है कि उच्च करेवा अवधि में जलवायु कम आर्द्र थी। जलवृष्टि कम होने से झील की सतह नीची भी हो गई थी, यह हम पीछे बतला चुके हैं। उच्च करेवा स्तरों का जिन पदार्थों से निर्माण हुआ है तथा तत्कालीन जलवायु के लक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय हवा बहुत चलती थी। इसी कारण झील में निर्मित (lacustrine) और नदियों द्वारा बहा कर लाये हुए (Fluvial) पदार्थों के साथ ही हवा द्वारा उड़ा कर लाये हुए (eolian) पदार्थों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी उच्च करेवा के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। महीन धूल-कण (silt) और घासों के पराग इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं।

कश्मीर में हिमयुग

डी टेरा और पैटर्सन के शोध-दल के पहले कई व्यक्तियों ने प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) कालीन कश्मीर का अध्ययन किया था। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अध्ययन दैनेली (Dainelli) का है। उन्होंने कश्मीर के हिमावर्तन-हिमप्रत्यावर्तन (ग्लेशियल-इन्टरग्लेशियल) का अपना चक्र प्रस्तुत किया है और आल्प्स के तत्कालीन चक्र से उसकी तुलना भी की है। डी टेरा ने इस विभाजन से अपनी असहमति प्रकट की है और उसके कारण बतलाये हैं। कश्मीर के प्रातिनूतन का डी टेरा का विभाजन आल्प्स प्रदेश के लिए प्रस्तुत किये गये पेंक और ब्रक्नर के विभाजन से पूरा-पूरा साम्य रखता है। नीचे हम इन तीनों विभाजनों की सुविधाजनक तुलना के लिये उन्हें एक चार्ट के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

	आल्प्स प्रदेश में हिमयुग	कश्मीर घाटी में हिमयुग	
	पेंक और ब्रक्नर का वर्गीकरण	दैनेली का वर्गीकरण	डी टेरा का वर्गीकरण
उत्तर प्रातिनूतन		चतुर्थ हिमावर्तन तृतीय हिमप्रत्यावर्तन	
अंतिम हिमावर्तन	चतुर्थ (वुर्म) हिमावर्तन	तृतीय हिमावर्तन	चतुर्थ (हिमालय) हिमावर्तन
अंतिम हिमप्रत्यावर्तन	तृतीय (रिस - वुर्म) हिमप्रत्यावर्तन	द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन	तृतीय (हिमालय) हिमप्रत्यावर्तन
उपांतिम हिमावर्तन	तृतीय (रिस) हिमावर्तन	द्वितीय हिमावर्तन	तृतीय (हिमालय) हिमावर्तन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपांतिम हिमप्रत्यावर्तन	द्वितीय (मिंडेल-रिस) हिमप्रत्यावर्तन	प्रथम हिमप्रत्यावर्तन (करेवा झीलका निर्माण और आरंभिक करेवा झील तल की रचना)	द्वितीय (हिमालय) हिमप्रत्यावर्तन
प्रागुपांतिम हिमावर्तन	द्वितीय (मिंडेल) हिमावर्तन	प्रथम हिमावर्तन	द्वितीय (हिमालय) हिमावर्तन
प्रागुपांतिम हिमप्रत्यावर्तन	प्रथम (गुंज–मिंडेल) हिमप्रत्यावर्तन		प्रथम (हिमालय) हिमप्रत्यावर्तन
आरंभिक हिमावर्तन	प्रथम (गुंज) हिमावर्तन		प्रथम (हिमालय) हिमावर्तन

डी टेरा कई कारणों से दैलेनी के वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करते। हमने पिछले पृष्ठों में यह देखा था कि करेवा झील का निर्माण प्रथम हिम-प्रत्यावर्तन (इंटर ग्लेशिअल) के पहले हो चुका था। निम्न करेवा स्तर आरंभिक प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में बने थे। साम्बर के भारतीय हाथी (Elephas hysudricus) के अस्थि-अवशेष इस बात के साक्षी हैं क्योंकि ऐसे ही अवशेष उच्च शिवालिक के टैट्राट-पिंजर स्तरों में पाये गये हैं। निम्न करेवा को मोड़ने वाली तथा पिंजर और घर्षित-विशाल-प्रस्तर पिंड स्तरों के बीच में व्यवधान उपस्थित करने वाली भौतात्त्विक प्रक्रियायें भी इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। इस प्रकार निम्न प्रातिनूतन (लोअर प्लाइस्टोसीन्) के उच्च शिवालिक टैट्राट-पिंजर और कश्मीर के प्राक् करेवा प्रस्तर-एकत्रण (Pre-Karewa gravels of Morain I) और निम्न करेवा स्तर का क्रमशः समकालीन होना इस प्रकार और सिद्ध होता है कि कश्मीर (हिमालय) के प्रथम हिमावर्तन (ग्लेशिअल) मोरेन घाटियों में शिवालिक के टैट्राट स्तर से मिलते देखे गये हैं।

मध्य प्रातिनूतन (मिडिल प्लाइस्टोसीन) में उच्च शिवालिक के अन्तिम स्तर में जो विशालकाय पत्थरों के आगार थे वे मुड़े हुए पिंजर स्तर के ऊपर जमा हुए थे। निम्न करेवा और उच्च करेवा के बीच में पाये जाने वाले पत्थरों की मोटी तह को करेवा प्रस्तर-समूह (Karewa fans) कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये पत्थर करेवा झील में द्वितीय हिमावर्तन (ग्लेशिअल) के अंत मोरेन हैं जो शिवालिक के घर्षित-विशाल-प्रस्तर-पिंड (बोल्डर कांग्लोमोरेट) के समकालीन और समवर्त्ती प्रतीत होते हैं। पुठवल पठार में तो इसके बाद प्रथम (कटान निर्मित) नदी-सोपान का निर्माण हुआ था। कश्मीर में करेवा झील में **नदी-प्रवाहित** (fluvial) **झील-उच्चयित** (lacustrine) और **वायु-संचालित** (eolian) बालू और मिट्टी के कणों से उच्च करेवा स्तर बना और प्रवाह मार्ग पा जाने पर झील सुखाकर झेलम और उसकी सहायक नदियों ने प्रथम (कटान-निर्मित) नदी-सोपान बना डाला। यह द्वितीय (हिमालय) हिमप्रत्यावर्तनकाल यूरोप के दूसरे या महान हिमप्रत्यावर्तन (Great Interglacial) से तुलना करने योग्य है। उच्च प्रातिनूतन (अपर प्लाइस्टोसीन) में पुठवल पठार और कश्मीर घाटी दोनों ही में पहले जैसी जमा होने की प्रवृत्ति के स्थान पर नदी-सोपानों का निर्माण हुआ। दोनों ही क्षेत्रों में द्वितीय नदी-सोपान (तृतीय हिमावर्तन कालीन उच्चयन-निर्मित) तृतीय नदी-सोपान (तृतीय हिमप्रत्यावर्तनकालीन कटान-निर्मित) और चतुर्थ नदी-सोपान (चतुर्थ हिमावर्तन उच्चयन निर्मित) और पंचम नदी-सोपान (उत्तर-प्रातिनूतन उच्चयन-निर्मित) प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) के अन्त तक की कहानी बताते हैं। आगे के पृष्ठ के चार्ट में हम दोनों क्षेत्रों का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

भारत में आदि - मानव

भारत में मानवीय अस्थावशेषों के अभाव का एक प्रमुख कारण यहाँ की अयनवृत्तीय (ट्रापिकल) जलवायु है। इस जलवायु में ये अवशेष प्रायः सुरक्षित नहीं रह पाते हैं। भारत में अब तक बहुत ही कम खोपड़ियाँ और अस्थि-पंजर पाये जा सके हैं और जो पाये गये हैं वे बहुत पुराने नहीं हैं। इसी कारण आदि मानव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अभी भी कल्पना ही सबसे उपयोगी साधन है। किन्तु पिछले दो दशकों में हुई जलवायु-संबंधी जीवाश्म-संबंधी और स्तरीय शोधों ने इन कल्पनाओं को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। १८३६ ई० में फ़ाक्नर (Falconer) और क्वाट्ली (Cuatley) को बर्हिहिमालय शृङ्खला में शिवालिक पहाड़ियों के पास पहला जीवाश्मित उच्चस्तन्य (प्राइमेट) मिला था तब से यह आशा की जाती रही है कि भारत किसी शिवालिक वानर (एप) से उत्पन्न हुए आदि मानव की जन्मभूमि रहा होगा। बहुत समय तक माना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाता रहा कि शिवालिक पशुओं की तीव्र उद्विकास स्थिति (Critical stage of evolution) हिमालय के उत्थान के समकालीन थी। डी टेरा ने इस मत के विपरीत बहुत से तथ्य संग्रहीत किये हैं। उनका कथन यह है कि शिवालिक क्षेत्र के पुरुषाभ वानर समूह में **प्रगतिशील विशेषीकरण** (progressive specialization) को प्रश्रय देने का एकमात्र श्रेय पर्वत-उत्थान को ही दे देना संभव नहीं प्रतीत होता। इन क्षेत्रों में पिछली जलवायु अवस्थाओं का स्तर-शृङ्खला के अध्ययन से पता चलता है। ऐसा अनुमान है कि उच्च मध्यनूतन (अपर माइओसीन) काल में **उष्ण कटिबन्ध** (ट्रापिकल बेल्ट) हिमालय की घाटियों तक फैला था। अतः यह स्पष्ट है कि उस समय की परिस्थिति आजकल से सर्वथा भिन्न रही होगी। शिवालीय शृंङ्खला अथवा बर्हिहिमालय क्षेत्र में उस समय उष्ण-प्रिय पशु-वर्ग निवास करते रहे होंगे। ये पशु निम्न और मध्य अतिनूतन (प्लाइओसीन) काल में भी वहीं रहते थे।

पशुओं के अवशेष और स्तरों की शृंखला इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं कि उष्ण-कटिबन्ध धीरे-धीरे दक्षिण की ओर खिसक रहा था। मध्य शिवालिक धोक पठान (उच्च अतिनूतन) का उत्तरार्द्ध अधिक ठंडी जलवायु में बना था। इस जलवायु परिवर्तन के साथ ही शिवालिक क्षेत्र में पशुवर्ग भी कम होने लगे थे क्योंकि वे अपने निवास-स्थान को छोड़ दक्षिण और पूर्व की ओर जाने लगे थे। पूर्व की ओर जाने वाले शिवालिक स्तनपायी पशु दक्षिण एशिया में कुछ समय तक पड़े रहे थे। वहाँ मलाया के पशुवर्ग से आदान-प्रदान हुआ होगा। ब्रह्मा के तटीय प्रदेश होकर ही ये शिवालिक पशु मलाया के निचले डेल्टा क्षेत्र और दक्षिण चीन में आये होंगे। अपनी यात्रा के अन्तिम चरण में ये पशु-वर्ग **अतिनूतन** (प्लाइओसीन) के अन्त होते-होते जावा पहुँच गये होंगे। डी टेरा ने बड़ी सावधानी से सारी परिस्थितियों का विश्लेषण किया है। जावा के ट्रिनिल स्तर (Trinil bed) में शिवालिक पशुओं की विद्यमानता इस बात की ओर निर्देश करता है कि किसी वानर के जावा मानव में उद्विकसित करने में इन पशुओं का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान था। आदि और मध्य प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) कालीन जावा के स्तरों में पाये गये चौबीस **पशु-परिवारों** (genera) में से सोलह पशु-परिवार भारतीय उत्पत्ति के हैं। यह तथ्य बहुत महत्त्व का है। अपनी उपरि-वर्णित यात्रा-मार्ग में ये जलवायु अनुकूलित पशुओं के अनुकूल निवास-स्थल मिले होंगे। इसके साथ ही भिन्न-

पुठवल पठार और कश्मीर घाटी का तुलनात्मक अध्ययन

		पुठवल (शिवालिक) पठार		कश्मीर घाटी
		चतुर्थक (क्वार्टनरी) की स्तरीय घटनाएँ	संबंधित पाषाण उद्योग	चतुर्थक की स्तरीय घटनाएँ और संबंधित पाषाण उद्योग
	आधुनिक (होलोसीन)	पंचम नदी-सोपान (उच्चयन-निर्मित)	सिंधु घाटी की सभ्यता नवपाषाण सक्खर तथा रोहरी आद्य नवपाषाण (Proto-neolithic) तथा लघु-पाषाण उद्योग	वृहत् पाषाण वुर्ज़हम के नवपाषाण सेल्ट सांबर और पाम्पुर के आद्य नव-पाषाण उद्योग पंचम नदी-सोपान (उच्चयन-निर्मित)
उच्च प्रातिनूतन	अंतिम् हिमावर्तन (वुर्म)	चतुर्थ नदी-सोपान (उच्चयन निर्मित)	पिंडी घेब एवं ढोक पठान का उद्विकसित सोहन उद्योग	चतुर्थ नदी-सोपान (उच्चयन-निर्मित)
	अंतिम हिमप्रत्यावर्तन (रिस-वुर्म)	तृतीय नदी-सोपान (कटान-निर्मित)	अंत सोहन के लेवलाएज फ़्लेक	तृतीय नदी-सोपान (कटान-निर्मित)
	उपांतिम हिमावर्तन (रिस्)	द्वितीय नदी-सोपान कटान-निर्मित	अंत सोहन B अंत सोहन A (पेबुल उपकरण एश्यूली मुख्यतः फ़्लेक)	द्वीतीय नदी-सोपान (उच्चयन-निर्मित)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य प्रातिनूतन	उपांतिम हिमप्रत्यावर्तन (मिंडेल-रिस्)	प्रथम नदी-सोपान (कटान-निर्मित)	समकालीन मद्रासीय ऐबेवीली एश्यूली हैण्डैक्स (चौन्तरा) आदि सोहन (A→B→C) के पेबुल उपकरण तथा फ़्लेक	प्रथम नदी-सोपान (कटान-निर्मित) उच्च करेवा
	प्रागुपांतिम हिमावर्तन (मिंडेल)	घर्षित-विशाल प्रस्तर पिंड	"प्राक-सोहन" अथवा पंजाब फ़्लेक उद्योग	करेवा प्रस्तर-पुंज (द्वितीय मोरेन)
निम्न प्रातिनूतन	प्रागुपांतिम हिमप्रत्यावर्तन (गुंज-मिंडेल)	पिंजर स्तर		निम्न करेवा (करेवा झील का निर्माण)
	आरंभिक हिमावर्तन (गुंज)	टैट्राट् स्तर		प्राक-करेवा प्रस्तर पिंड (प्रथम मोरेन)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिन्न प्रकार के देशों से होकर जाने के परिणाम-स्वरूप उनकी उद्‌विकास-प्रक्रिया तीव्रतर हो गई होगी। अतः बहुत संभव है कि भविष्य के शोधों से यह पता चले कि जावा मानव का पूर्वज कोई शिवालिक पुरुषाभ वानर था।

हिमालय के शिवालिक क्षेत्र से पशुओं का वह समूह जो दक्षिण की ओर गया था उसने आजकल की सिंधु-गंगा की घाटी का प्रदेश पार किया होगा और मध्य भारत की ओर गया होगा। नर्मदा घाटी में शिवालिक पशुओं की विद्यमानता इस कल्पना की पुष्टि करती है। ऊपर हमने यह मान लिया है कि अपना निवास-स्थान छोड़ने के समय शिवालिक पशु तीव्र उद्‌विकास स्थिति में थे और यह भी अनुमान लगाया है कि पूर्व एशिया के आदि मानव की उत्पत्ति में भी इनका उल्लेखनीय योगदान रहा होगा। इनके आधार पर मध्य भारत में कहीं पुरापाषाण मानव के जीवाश्म पाने का अनुमान कोरी कल्पना मात्र नहीं मानी जानी चाहिए। डी टेरा और ज्वाएनर दोनों ही इस प्रकार के मानव जीवाश्म के पाये जाने की बहुत आशा रखते हैं। ज्वाएनर ने तो यहाँ तक कह डाला है कि आदि मानव के आदि-निवास-प्रदेश के रूप में यूरोप, पूर्वी एशिया और अफ्रीका की बारियाँ क्रमशः बीत गई हैं और अब भारत की बारी आ चुकी है। डी टेरा ने भी आदि मानव संबंधी सभी भावी शोधों में भारत को प्रमुख स्थान दिया है।

उपर्युक्त वर्णन में उष्ण कटिबन्ध के क्रमशः दक्षिण की ओर खिसकने का केवल एक परिणाम बतलाया गया है—शिवालिक पशुओं का अपने मूल निवास-क्षेत्र का परित्याग। इसका उतना ही महत्त्वपूर्ण परिणाम उष्ण कटिबंधी भूमि का निर्माण करने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं का दक्षिणगामी होना था। इस तथ्य का भारतीय प्रागितिहास से संबंध बताने के पहले यह बता देना आवश्यक है कि भूमि-निर्माण क्या है और किस प्रकार होता है तथा इसका जलवायु-परिवर्तन से क्या संबंध है। जिसको हम साधारण रूप से भूमि या धरती कहते हैं और जिसमें सभी प्रकार की वनस्पतियाँ उगाई जाती हैं वह नीचे के चट्टान से रासायनिक रूप से पृथक् होकर बनी है। इस काम में वातावरण (जलवायु) का योगदान बहुत अधिक होता है क्योंकि जलवृष्टि होना या न होना वातावरण पर ही निर्भर करता है। जलवृष्टि से धरती भीग जाती है। भाप बन कर उड़ने और पेड़-पौधों द्वारा ले लेने के बाद जो जल बचता है वह धीरे-धीरे धरती में प्रवेश करने लगता है। यह जल धरती के अन्दर के जल-सतह तक पहुँचने की चेष्टा करता है किन्तु वहाँ तक वह शुद्ध रूप में पहुँच नहीं पाता। धरती की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सतह पर अनेक प्रकार की सड़ी-गली वनस्पतियों में से बहुत से पदार्थ इस जल में घुल जाते हैं और भीतर चट्टानों आदि में से अनेक रासायनिक तत्त्व भी इस घोल में सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार यह घोल साधारण जल न रह कर अम्ली गुणों से युक्त होता है और कड़े से कड़े चट्टानों को भी गला देने की शक्ति रखता है। बड़ी आसानी से घुल जाने वाले क्षार, सोडा, चूना और पोटाश होते हैं। सिलिका, एल्यूमिनियम आक्साइड और लोहा (आयरन आक्साइड) उतनी सरलता से नहीं घुलते हैं। एल्यूमिनियम और सिलिका प्रधान धरती में चिकनी मिट्टी का बाहुल्य होता है। सिलिका ही अकेले प्रमुख हो तो क्वार्ट्ज जैसा सख्त पदार्थ बनता है। सिलिका रहित और एल्यूमिना एवं लोहा प्रधान धरती लाल होती है। इसको लैटेराइट (Laterite) कहा जाता है।

लैटेराइट और उसकी उत्पत्ति

लैटेराइट् की उत्पत्ति और निर्माण का भारतीय प्रागितिहास से बहुत गहरा संबंध है। वे चट्टानें जो टूट कर और रासायनिक क्रियाओं से प्रभावित होकर लैटेराइट को जन्म देते हैं उनमें नीस (Gneiss), ग्रैनाइट् (Granite) और बैसैल्ट (Basalt) प्रमुख हैं। उपर्युक्त प्रकार के रासायनिक घोल की क्रिया के फलस्वरूप इन चट्टानों में से पहले क्वार्टज या कैल्साइट (calcite), सेरिसाइट (sericite) और केओलिन (Kaolin) आदि के ढोके बन जाते हैं क्योंकि फेल्स्पर (Felspars) और उससे संबंधित खनिजों पर प्रभाव पहले होता है। बाद में लोहा-मैग्नीशियम वर्ग के खनिजों से क्लोराइट, टैल्क (Talc) बनते हैं और आयरन आक्साइड अलग हो जाता है। रासायनिक क्रिया यदि थोड़ी और होती रही तो चट्टानों में से क्षार और चूना आदि निकल जाते हैं। तब बच रहता है घिसा हुआ मिट्टी का अंश जो प्रमुख रूप से एलुमिना (Alumina) और लोहे (Iron) का रासायनिक रूप से जल मिश्रित सिलिकेट (Silicate) है, यही लैटेराइट कहलाता है। यह तो स्पष्ट है कि लैटेराइट उष्णकटिबंध (Tropics) में ही निर्मित होता है। उष्णकटिबंध में भी उपर्युक्त चट्टानों से लैटेराइट वहीं बन सका है जहाँ केवल बहुत काफी पानी बरसता ही नहीं बल्कि पानी जमा भी रहता है। इसी कारण भूमि का बहुत कम ढालवाँ अथवा समतल होना अत्यावश्यक है जिससे पानी वहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुक सके और रासायनिक घोल चट्टानों पर रासायनिक प्रभाव डाल सके। इन सब तथ्यों के साथ यह भी जानने योग्य बात है कि अनवरत जल-वृष्टि लैटेराइट के बनने के लिए अनुकूल अवस्था नहीं है। मौसम का इस ढंग से एकांतरण होना चाहिए कि जहाँ वर्ष के कुछ भाग में घोर वृष्टि हो वहीं उसका एक भाग वृष्टि-रहित भी हो। ऐसी स्थिति पश्चिमी घाट के मालावार तट में पायी जाती है। इसी कारण वहाँ आज लैटेराइट् का निर्माण होता है।

नर्मदा नदी की घाटी में पाये गये पशुओं में हाथी [Elephas antiquus (namadicus)] का होना महत्त्वपूर्ण बात थी। डी टेरा ने इस (नर्मदा) पशुवर्ग को उच्च शिवालिक के विशाल-प्रस्तर-पिण्ड (वोल्डर काङ्ग्लोमेरट) स्तर से संबद्ध माना था। नर्मदा घाटी में भी इस प्रकार के पशुवर्ग और आरंभ पुरापाषाण उपकरणों को मध्य प्रातिनूतन (मिडिल प्लाइस्टोसीन) काल का बताया गया है।[1] नर्मदा क्षेत्र में दो स्तरों वाले तीन जमाव-चक्र (Cycles of Sedimentation) देखे गये हैं। दो स्तरों वाले प्रत्येक चक्र में से निचला स्तर पत्थर के टुकड़ों (ग्रैवेल्स) का बना है और **कटान** (Erosion) के समय बना प्रतीत होता है। ऊपर वाली मिट्टी सिल्ट का स्तर जमा होने से बनी है। **अध्यारोहण विधि** (लॉ आव सुपर्पोजीशन) के अनुसार तीन चक्र क्रमशः निम्न वर्ग, उच्च वर्ग और रिगर या काली मिट्टी वर्ग हैं। निम्न वर्ग से भी नीचे लैटेराइट स्तर पाया गया। नर्मदा की घाटी में लैटेराइट का अभाव और नदी के कगारों की ढलान पर उसका पाया जाना उल्लेखनीय तथ्य है। निम्न वर्ग के निचले ग्रैवल स्तर के नीचे लैटेराइट् पाया तो गया है किन्तु इन दोनों के बीच में **व्यवधान** (Unconformity) है। इससे यह पता चलता है कि लैटेराइट् निम्न वर्ग वाले चक्र से एक पृथक् जमाव चक्र द्वारा जमा किया गया था। नदी के किनारों पर लैटेराइट्-प्रभावित ग्रैवेल स्तर अधिक मोटा नहीं है, इससे बहुत संभावना है कि नदी ने लैटेराइट को वहा दिया हो। शायद इसके साथ ही लैटेराइट के ऊपर वाला स्तर भी बह गया हो जो लैटेराइट और निम्न नर्मदा वर्ग के सबसे निचले स्तर के बीच में रहा होगा। इसके अतिरिक्त यह भी संभावना हो सकती है कि यह स्तर ५०० फीट मोटे मध्य

---

१. डी टेरा और पैटर्सन, १९३९, पृष्ठ ३१३-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रातिनूतन कालीन नर्मदा स्तरों के बीच छिपा हो। इस प्रकार नर्मदा लैटेराइट आरंभ प्रातिनूतन काल में निर्मित हुआ प्रतीत होता है।

नर्मदा घाटी में लैटेराइट की विद्यमानता के आधार पर ही यह आशा प्रकट की थी कि उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर के निकट भी लैटेराइट् ग्रैवेल अवश्य पाये जाने चाहिये।[2] १९४६ में प्रोफेसर एफ० ई० ज्वाएनर के नतृत्व में जो दल मिर्ज़ापुर जिले में गया था उसने रावर्टसगंज के निकट लुसाखाई में क्वार्टज़ाइट आधार पर लैटेराइट् विद्यमान पाया। अभी इस प्रदेश के लैटराइट के संबंध में कुछ अधिक कहना संभव नहीं। लेकिन रिहंद नदी और नर्मदा नदी में एक साम्य है। दोनों नदियों के उद्गम स्थान कर्क रेखा से थोड़ी दक्षिण में लगभग एक ही अक्षांश पर हैं। रिहन्द घाटी और नर्मदा घाटी कर्क रेखा से समान दूरी पर हैं। अतः यह बहुत संभव है कि दोनों क्षेत्रों में एक ही प्रकार की जलवायु-अवस्थाओं ने एक ही काल (अर्थात् निम्न प्रातिनूतन) में समान प्रकार के लैटेराइट बनाये हों।[3]

डी टेरा के १९३५ के हिमालय हिमावर्तन हिमप्रत्यावर्तन के अध्ययन से पहले बर्किट ने दक्षिण-पूर्व भारत के पाषाण युग के अध्ययन के साथ प्रायद्वीपीय भारत के पुराजलवायु के ज्ञान का द्वार **वृष्ट्यावर्तन-वृष्टिप्रत्यावर्तन** (फ़्लूविअल-इंटर-फ़्लूविअल) का चक्र प्रस्तुत कर खोल दिया। कैमियड् के साथ[4] मिल कर् उन्होंने मद्रास से उत्तर पूर्वी तट पर लैटेराइट की विद्यमानता की ओर संकेत किया और यह मत प्रकट किया कि यह इस क्षेत्र में मानव के आने के पहले बना था। यह बहुत महत्त्वपूर्ण घोपणा सिद्ध हुई हैं। बर्किट ने इस क्षेत्र (आंध्र प्रदेश के कर्नूल के निकट) में हुए सात परिवर्तनों की सूचना दी है। अध्यारोहण विधि के अनुसार इनको इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

१. दीर्घकालिक वृष्टयावर्तन (आरंभ प्रातिनूतन); २. शुष्क अवधि;
३. तीव्र वृष्टयावर्तन; ४. शुष्क अवधि (मध्य प्रातिनूतन);
५. आर्द्र वृष्टयावर्तन (उच्च प्रातिनूतन); ६. शुष्क अवधि;

---

२. वही, पृष्ठ ३१३

३. वी० डी० कृष्णस्वामी और के० वी० सुन्दरराजन, १९५१, 'द लिथिक टूल-इण्डस्ट्रीज आव् द सिंगरौली बेसिन', ऐंशियन्ट इण्डिया, नंबर ७, पृष्ठ ४४

४. एल० ए० कैमियड ऐण्ड एम० सी० बर्किट, १९३० 'फ्रेश लाइट ऑन द स्टोन एज इन साउथ-ईस्ट इण्डिया', ऐण्टिक्विटी, भाग ४, संख्या १५, पृष्ठ ३२७-३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. वर्त्तमान जलवायु (उत्तर-प्रातिनूतन)।

संक्षेप में बर्किट के अध्ययन के अनुसार कर्नूल के पास कृष्णाघाटी में लैटेराइट् आरंभ प्रातिनूतन काल में बना था।

मद्रास के पलार मैदान में पैटर्सन और कृष्णस्वामी ने जो स्तर-श्रृंखला पाई है उससे इस क्षेत्र में लैटेराइट के निर्माण और निर्माण काल पर बहुत प्रकाश पड़ता है। यहाँ आधारशिला तृतीयक युग से भी पहले रंचित स्तर करते हैं। उन पर प्रातिनूतन काल के बोल्डर-पिण्ड का स्तर टिका पाया गया है। पुनरुच्चयित लैटेराइट स्तर इसके ऊपर है। यह प्रायद्वीप के भीतरी भागों में बने लैटेराइट् के हवा से उड़ा कर यहाँ लाने से बना था। इसके बाद केतिल्यार नदी ने तीन नदी-सोपान काटे हैं। उपकरणों की समानता के आधार पर मद्रास का बोल्डर-पिण्ड पुठवल शिवालिक के बोल्डर-पिण्ड के समकालीन अर्थात् मध्य प्रातिनूतन काल का माना गया है। इस प्रकार मद्रास का **पुनरुच्चयित लैटेराइट** (Detrital laterite) भी मध्य प्रातिनूतन (मिडिल प्लाइस्टोसीन्) काल का हुआ। श्री धरणी सेन[५] ने मयूरभंज के कुलियाना लैटेराइट् की आयु भी मध्य प्रातिनूतन के अन्दर द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन काल बतायी है।

प्रोफ़ेसर ज्वाएनर ने उत्तरी गुजरात में 'शुष्क' और आर्द्र जलवायु चक्रों के आवर्तन-प्रत्यावर्तन का विस्तृत अध्ययन किया है। विभिन्न **गड़ी धरतियों** (Buried Soils) का अवलोकन कर ही वे उपर्युक्त तथ्यों को प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके हैं। प्रोफेसर ज्वायनर ने साबरमती नदी की घाटी की स्तर-श्रृंखला अध्यारोहण के क्रम से इस प्रकार प्रस्तुत की है:

(क) लैटेराइट पपड़ियाँ (Lateritic crusts) (आर्द्र)
(ख) **चितकबरी मिट्टी** (mottled clay) (शुष्क)
(ग) जुड़े ग्रैवेल (Cemented Gravel) : (आर्द्र)
(घ) सिल्ट (Silt) : (शुष्क)
(ङ) लाल भूमि (Red Soil) : (आर्द्र)
(च) मुख्य शुष्क स्थिति (main Dry Phase) (बहुत शुष्क)
(छ) **चिपटी धरती** (Flat land Surface) : (कुछ आर्द्र)

---

५. डी० सेन, १९५४, "लोअर पैलियालिथिक कल्चर-काम्प्लेक्स ऐण्ड क्रॉनालाजी इन इण्डिया" प्रेसिडेन्शियल ऐड्रेस : सेक्शन आव् ऐन्थ्रोपॉलॉजी ऐण्ड आर्कियॉलॉजी, इण्डियन साइन्स कांग्रेस, हैदराबाद सेशन, पृष्ठ १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ज) बालू का टीला (Dune Phase) (शुष्क)

(झ) भूमि : आर्द्र

(ञ) निकटतम शुष्क अवस्था (Latest Dry Phase) (शुष्क) और

(ट) आधुनिक अवस्था (Modern Phase): (शुष्क और आर्द्र दोनों ही)।

लैटेराइट के संबंध में प्रोफ़ेसर ज्वाएनर का मत यह है कि इस प्रदेश में यह निश्चित रूप से प्राक-पुरापाषाण काल का है और कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि इसकी उत्पत्ति **द्वितीयक** या मध्यकल्प (सेकेण्डरी अथवा मेसोज़ोइक) युग में हुई हो।[६]

---

६. एफ० ई० ज्वाएनर, १९५०, स्टोन एज ऐण्ड प्लाइस्टोसीन क्रॉनॉलॉजी इन गुजरात, डेकन कालेज, पूना, पृष्ठ २१-२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ११

भारत में पुरापाषाण

भारत में **आदि पुरापाषाण** (अर्ली पैलियालिथिक) फ़्लेक-संस्कृति का मुख्य केन्द्र पंजाब में है। फ़्लेक के साथ पेबुल-उपकरण और पेबुल-कोर तो पाये गये हैं किंतु द्वितल कोरों अथवा हैण्डैक्सों का, एक स्थान छोड़ कर, एकांत अभाव है। इस पेबुल उपकरण एवं फ़्लेक प्रधान संस्कृति को सोहन परंपरा कहा गया है।

प्राक्-सोहन (अथवा पंजाब) फ़्लेक उद्योग--सोहन नदी की घाटी में पाये जाने वाले मानव-निर्मित सर्वप्रथम उपकरण काफ़ी घिसे हुए, बेढंगे और बड़े फ़्लेक हैं। ये (पुठवल) उच्च शिवालिक के बोल्डर-पिण्ड स्तर की ऊपरी सतहों से प्राप्त किये गये हैं। ऐसा सोचा जाता है कि ये उपकरण शायद उस समय बनाये गये होंगे जब कि बोल्डर-पिण्ड अभी जमा ही हो रहा था। इस आधार पर द्वितीय **हिमावर्तन** (ग्लेशियल) काल का समय इनके लिये निर्धारित किया गया है। किंतु डॉ० संकालिया का मत यह है कि ये सर्वप्रथम भारतीय उपकरण प्रथम **हिमप्रत्यावर्तन** (इण्टर ग्लेशियल) के लगभग अंत होते-होते बनाये गये होंगे। उनके अनुसार द्वितीय हिमावर्तन काल की ठंड, झंझावात-पूर्ण मौसम और भीषण जलवृष्टि में यह पता चलता है कि बोल्डर-पिण्ड क्षेत्र उस समय मानव-निवास के योग्य और उपयुक्त नहीं रहा था।[1] बहुत बड़े और मोटे प्राक-सोहन (पंजाब) फ़्लेक बहुत कुछ क्रोमेरी फ़्लेकों से मिलते-जुलते हैं। क्वार्टज़ाइट के इन फ़्लेकों की मुख्य सतहों पर चिपटे **संघात का अर्धशंकु** (बल्ब आव पर्कशन्) हैं। अकृत्रिम या प्राकृतिक संघात-स्थल मुख्य फ़्लेक-सतह से १०० से १२० डिग्री तक का कोण बनाता है। फ़्लेक की अफ़्लेकीकृत ऊपरी सतह पर पत्थर का बिना गढ़ा अंश अथवा कार्टेक्स बहुत देखा जा सकता है। एक को

---

१. एच० डी० संकालिया, "पैलियालिथिक, नियालिथिक ऐण्ड कॉपर एजेज" आर० सी० मजूमदार ऐण्ड ए० डी० पुशाल्कर संपादित द हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर आव् द इण्डियन पीपुल : द वेदिक एज, पृष्ठ १२३-१२४, जार्ज अलेन ऐण्ड अन्विन् लिमिटेड, लन्दन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोड़ कर अन्य किसी उपकरण पर **पुनर्गढ़न** ('रीटचिंग्) के लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते हैं। किनारे टूटे हुए हैं किंतु यह कहना कठिन होगा कि यह अपने आप हुआ है या उपकरण इस्तेमाल करने के कारण।

"सोहन परंपरा"

आदि सोहन (Early Sohan) A→B→C:

सोहन के प्रथम नदी-सोपान के साथ पाये गये आदि सोहन उद्योगों को द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन (इंटरग्लेशियल) काल का कहा गया है हालाँकि कुछ आदि सोहन पूर्ववर्त्ती बोल्डर-पिण्ड में और अन्य कुछ घिसी हालत में परवर्त्ती द्वितीय नदी-सोपान के निचले अंश में पाये गये हैं। उपकरणों की **दशा** (स्टेट आव पिजर्वेशन) और आवरण की रासायनिक **रंगाई** (पैटिनेशन) के आधार पर डॉ० पैटर्सन ने आदि सोहन उपकरणों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया है : अधिक रासायनिक रंगाई (पैटिनेशन) और काफ़ी घिसे उपकरण (वर्ग A); गहरी पैटिनेशन और बिना घिसे उपकरण (वर्ग B); और कम पैटिनेशन और काफ़ी ताजे उपकरण (वर्ग C)। इस (आदि सोहन) उद्योग के मुख्य उपकरण **"चिपटे आधार"** वाले ("Flat based") और "गोलाकार ("rounded") पेबुल उपकरण हैं। ये उपकरण क्वार्टज़ाइट और पंजल ट्रैप पत्थरों पर बनाये गये हैं। वर्ग A से वर्ग C की ओर विकसित होते देखे जाते हैं क्योंकि उपकरण क्रमशः पहले की अपेक्षा छोटे और सुघड़ बनते जाते हैं। वर्ग A में केवल पेबुल-उपकरण ही हैं, फ़्लेक बिल्कुल नहीं हैं। वर्ग B में पेबुल-उपकरणों के साथ कुछ क्लैक्टोन प्रकार के फ़्लेक उपकरण भी हैं। इन फ़्लेकों के **आघात स्थल** (स्ट्राइकिंग प्लैटफार्म) अकृत्रिम हैं और मुख्य फ़्लेक सतह से विषम कोण बनाते हैं। इनके ऊपरी सतह पर काफ़ी कार्टेक्स छूटा है और असुघड़ प्राथमिक फ़्लेकीकरण के निशान हैं और कुछ **सोपान-पद** (स्टेप) फ़्लेकीकरण भी की गई प्रतीत होती है। पेबुल उपकरण जो वर्ग A के पेबुल-उपकरणों से छोटे और अच्छे बने हैं अभी भी प्रबल हैं। वर्ग C के पेबुल-उपकरण और विषम-कोण वाले फ़्लेक पूर्ववर्त्ती वर्ग के इन उपकरणों से अच्छे बने हैं। इस वर्ग में कुछ साधारण कृत्रिम आघात-स्थल वाले कुछ "आद्य-लेवलायज" (Proto-Levalloise) फ़्लेक भी हैं। उपर्युक्त दो प्रकार के फ़्लेकों से संबंधित क्लैक्टोनी और आद्य-लेवालायज़ कोर उन सभी वर्गों में पाये गये हैं जिनमें ये फ़्लेक मिले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ० पैटर्सन के "चिपटे-आधार" वाले पेबुल उपकरण की निचली सतह चिपटी या लगभग-चिपटी होती है। यह प्राकृतिक रूप से (अपने आप) टूटी या जान-बूझ कर गढ़ी हुई होती है। उपकरण के आधार से ५० से ८० डिग्री तक का कोण बनता हुआ मोटा **कार्यांग** (वर्किंग एज्) इसी सतह की ओर से बनाया गया है। डॉ० मोविअस के वर्गीकरण के अनुसार ये उपकरण पेबुल चापर/स्क्रेपर की श्रेणी में ही रक्खे जा सकेंगे। डॉ० पैटर्सन का "गोलाकार" पेबुल उपकरण चिकने गोल या अंडाकार पेबुलों को एक किनारे पर गढ़ कर तैयार किया जाता था। इस उपकरण का **समंत अंत** (बट् एण्ड) कार्टेक्स युक्त चिकना बिना गढ़ा गोलाकार अंश होता था। इन "गोलाकार" पेबुल उपकरणों में से कुछ का कार्यांग तो केवल एकतल गढ़ कर बनाया गया है। ये **एकतल** (यूनीफ़ेस्) 'गोलाकार' पेबुल उपकरण मोविअस के पेबुल चॉपर/स्क्रेपर हैं। किंतु कुछ गोलाकार पेबुल उपकरण द्वितल हैं। ये उपकरण दोनों तलों पर एक छोर पर **एकान्वेक** (आल्टर्नेट) फ़्लेक निकाल कर बनाये गये हैं। इस एकान्वेक **फ़्लेकीकरण** (आल्ट्र्नेट फ़्लेकिंग) के परिणामस्वरूप उपकरणों के कार्यांग चौड़े डब्ल्यू (W) के समान टेढ़े हो गये हैं। ये मोविअस के वास्तविक 'चॉपिंगुपकरण हैं।

रावल्पिंडी के निकट डी टेरा ने आदि सोहन की ही आयु के मद्रासीय (एबेवीली-एश्यूली) परंपरा के हैण्डैक्स, कोर और फ़्लेक पाये थे।

अंत सोहन (Late Sohan) A **एवं** B

तृतीय हिमावर्तन (द्वितीय नदी-सोपान) काल के इस उद्योग और इसके **पूर्ववर्त्ती** आदि-सोहन उद्योग में रक्त संबंध प्रतीत होता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि ये दोनों पुरापाषाण उद्योग एक ही परंपरा के क्रमशः विकसित और आरंभिक अंश हैं। यह स्मरणीय है कि प्राक्-सोहन (पंजाब) फ़्लेक उद्योग और आदि सोहन उद्योग में इस प्रकार के रक्त-संबंध के कोई लक्षण नहीं पाये जाते हैं। **स्तरीय** (स्ट्रेटिग्रैफिकल) और उपकरण-प्रकार (टाइपॉलॉजी) के आधार पर अंत सोहन उद्योग को अंत-सोहन A और अंत-सोहन B इन दो भागों में विभाजित किया जाता है। **उच्चयन निर्मित** (एग्रेडेश्नल) द्वितीय नदी-सोपान के निचले अर्द्धांश **आधार-ग्रैवेल** (बेसल ग्रैवेल) स्तर से अंत-सोहन A के और ऊपरी अर्द्धांश पुठवल लोएस स्तर के अंत-सोहन B के उपकरण पाये गये हैं। आधार ग्रैवेल स्तर के निचले भाग में बह कर आये हुए आदि-सोहन उपकरण घिसी अवस्था में पाये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंत-सोहन A उद्योग में काफी पेबुल उपकरण हैं। ये आदि-सोहन C पेबुल-उपकरणों से छोटे और अच्छे बने ही नहीं बल्कि उन्हीं से विकसित हुए प्रतीत होते हैं। किंतु इस उद्योग (अंत-सोहन A) में फ़्लेकों और संबंधित कोरों की संख्या पेबुल उपकरणों से कहीं अधिक है। अधिकतर फ़्लेक क्लैक्टोन प्रकार के से हैं जिनके अकृत्रिम संघात-स्थल मुख्य फ़्लेक सतह से विषम कोण बनाते हैं। कुछ फ़्लेकों के ऊपरी सतहों को ध्यानपूर्वक देखने से यह पता चलता है कि जिन कोरों से वे निकाले गये होंगे वे 'कछुआ कोरों' की तरह सावधानी से बनाये गये थे। कुछ दूसरे लेवलाएज़ी प्रकार के फ़्लेकों के संघात-स्थल "पुलिसमैनहैट" प्रकार के गढ़े गये हैं।

अंत सोहन B में केवल थोड़े से पेबुल-उपकरण पाये गये हैं। इस उद्योग के ताजे-से और बिल्कुल बिना घिसे हुए उपकरण मुख्य रूप से फ़्लेक और ब्लेड हैं। लगभग पचास प्रतिशत फ़्लेक उपकरणों के संघात-स्थल कृत्रिम (गढ़े हुए) हैं। इनके ऊपरी सतह फ़्लेक निकालने के पहले कोर को गढ़ कर तैयार किये जाने की ओर संकेत करते हैं। फ़्लेकों पर **पुनर्गढ़न** (रीटचिंग्) के निशान नहीं दिखलाई पड़ते हैं। बाकी आधे फ़्लेक लंबे फ़्लेक या ब्लेड कहे जा सकते हैं। कोर क्लैक्टोन प्रकार के-से डिस्काकार और कुछ कछुवा कोरों की तरह तैयार किये हुए कोर भी हैं। सब मिला कर यह उद्योग पश्चिमी यूरोप के अंत लेवलाएज़ी उद्योगों से मिलता-जुलता-सा है।

चौन्तरा उद्योग :—सोहन घाटी में इस महत्त्वपूर्ण स्थान से तृतीय हिमावर्तन काल के द्वितीय नदी-सोपान के स्तर से उपकरण एकत्र किये गये हैं। कुछ घिसे हुए सबसे पुराने उपकरणों के बारे में यह अनुमान किया जाता है कि वे प्रथम नदी-सोपान के समय (द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन) में बनाये गये होंगे। सोहन घाटी में चौन्तरा ही एक ऐसा स्थान है जहाँ मद्रासीय हैण्डैक्स परंपरा और सोहन पेबुल-उपकरण और फ़्लेक परंपरा को साथ-साथ उद्विकसित होते देखा गया है; हालाँकि यहाँ भी दोनों परंपराएँ एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। उपकरण प्रकार और उपकरणों की दशा के आधार पर इस उद्योग के उपकरणों को निम्न-लिखित वर्गों में विभाजित किया गया है। (१) प्राचीनतम वर्ग (The Oldest Group) में बड़े-बड़े पेबुलकोर आदि एबे-वीली (अर्ली एबेवीलिएन) प्रकार के हैण्डैक्स और कुछ प्राक-सोहन तरह के असुघड़ फ़्लेक हैं जिनके अकृत्रिम संघात-स्थल विषम फ़्लेक कोण बनाते हैं। सभी वस्तुओं पर गहरा पैटिनेशन् (रासायनिक रंगाई) है और वे सभी बहुत घिसी हुई हैं। (२) मध्य वर्ग (The Middle Group) के मध्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एश्यूली प्रकार के हैण्डैक्स केवल कम घिसे ही नहीं हैं बल्कि स्वाकृति (सु+आकृति) वाले हैं और अच्छे बनाये भी गये हैं (३) नवीनतम वर्ग (The Youngest Group) में बिना घिसे, ताजे से अंत एश्यूली प्रकार के हैण्डैक्स हैं। इन पर पुनर्गढ़न और **नियंत्रित फ़्लेकीकरण** (कण्ट्रोल्ड फ़्लेकिंग्) के निशान हैं। कुछ अंत सोहन प्रकार के डिस्काकार कोर, कई कृत्रिम (गढ़े हुए) संघात-स्थल वाले फ़्लेक और एक ब्लेड भी पाये गये हैं।

'उद्विकसित सोहन' ('Evolved Sohan') : धोक पठान और पिण्डी घेव नामक स्थानों पर अन्त पुरापाषाण उद्योगों के कुछ उपकरण मिले हैं। डी टेरा ने इनको उच्चयन-निर्मित चतुर्थ नदी-सोपान के साथ संबद्ध किया है। इस प्रकार ये चतुर्थ हिमावर्तन (ग्लेशियल) काल में बनाये गये होंगे। इस उद्योग के पेबुल उपकरण आदि सोहन उद्योग के "चिपटे-आधार" वाले और "गोलाकार" पेबुल चॉपर/स्क्रेपरों से मिलते-जुलते हैं यद्यपि वे आदि सोहन उपकरणों से कुछ छोटे हैं। छोटे-छोटे डिस्काकार कोर भी पाये गये हैं। अंत सोहन A के क्लैक्टोन के-से फ़्लेक बहुत संख्या में मिले हैं। इनकी ऊपरी सतह पर समानान्तर प्राथमिक फ़्लेकीकरण के निशान हैं।

मद्रासीय हैण्डैक्स् परंपरा

डॉ॰ पैटर्सन् और कृष्णस्वामी ने मद्रास के तटीय मैदान में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) के भौतात्त्विक स्तर-निर्माणों के बारे में प्रकाश डाला है। इसके संबंध में हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं।

मद्रास के निकट वादामदुराई तालाब पर पाये गये उपकरणों को डा॰ पैटर्सन ने तीन वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग (The First Group के उपकरण बोल्डर-पिण्ड में पाये गये थे। इस प्रकार ये लैटेराइट् के पहले अर्थात् द्वितीय हिमावर्तन (ग्लेशियल) काल के हैं। उपकरण घिसे हुए हैं और उन पर इतना गहरा पैटिनेशन (रासायनिक रंगाई) है कि सफेद रंग की एक परत-सी बन गई है, विशेष रूप से कार्टेक्स पर। इस वर्ग को आगे आदि और अंत श्रेणियों में विभाजित किया गया है। आदि श्रेणी में टेढ़े-मेढ़े आकार के असुघड़ एबेवीली प्रकार के हैण्डैक्स हैं। इनका समंत-अंत मोटा है और इनके दोनों तलों पर काफ़ी कॉर्टेक्स विद्यमान है। फ़्लेक चिन्ह की गहराई और बेढंगापन से पता चलता है कि फ़्लेक पत्थर के हथौड़े से निकाले गये होंगे। अंडाकार या वृत्ताकार कोर लंबे और बेढंगे हैं और उनका वर्गीकरण कठिन है। फ़्लेक चिह्न सक्रम नहीं है। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रेणी के फ़्लेकों की ऊपरी सतह पर बहुत आदिम प्रकार के प्राथमिक फ़्लेकीकरण के निशान हैं। और उन पर काफी कॉर्टेक्स भी पाया जाता है। इस श्रेणी के सभी उपकरणों पर बहुत गहरा श्वेत पैटिनेशन है जो एक परत-सा लगता है। अंत श्रेणी के हैण्डैक्सों पर साधारणतः निर्बद्ध फ़्लेकीकरण बहुत है लेकिन उन पर पहले से अधिक सोपान-पद (स्टेप) फ़्लेकीकरण के चिह्न हैं। अधिक सुडौल आकार वाले ये हैण्डैक्स आदि एश्यूली प्रकारों के-से लगते हैं। कोरों पर यथेष्ट **सक्रम एकान्वेक** (रेगुलर आल्टर्नेट) प्रकार के फ़्लेकीकरण के निशान हैं। इस श्रेणी के ये डिस्काकार कोर निश्चित ही आदि श्रेणी के कोरों से अधिक विकसित हैं। फ़्लेकों की ऊपरी सतहों पर कार्टेक्स कम और प्राथमिक फ़्लेकीकरण अधिक है लेकिन पुनर्गढ़न के प्रमाण नहीं मिलते हैं। फ़्लेकों के संघात-स्थल अकृत्रिम हैं। संक्षेप में, इस श्रेणी के उपकरण आदि श्रेणी के उपकरणों से उपकरण-प्रकार में अधिक विकसित हैं और उन पर पैटिनेशन भी कम गहरा है।

द्वितीय वर्ग (The Second Group) के हैण्डैक्सों पर सोपान-पद (स्टेप) फ़्लेकीकरण पहले से अधिक साफ है और फ़्लेक-चिह्न चिपटे हैं। इस वर्ग के सुडौल आकृति वाले ओवेट और बादामाकार हैण्डैक्स मध्य एश्यूली प्रकार के हैं। कोर डिस्काकार है और उन पर प्रथम वर्ग की अंत श्रेणी के कोरों की अपेक्षा अधिक सक्रम फ़्लेकीकरण की गई है। सभी फ़्लेकों के **आघात-स्थल** (स्ट्राइकिंग प्लैटफार्म्स) अकृत्रिम या प्राकृतिक हैं। फ़्लेकों के ऊपरी सतहों पर प्राथमिक फ़्लेकीकरण तो अधिक है परंतु द्वितीयक पुनर्गढ़न के कोई लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते हैं। इस वर्ग के सभी उपकरणों पर लैटेराइट् के संपर्क के कारण गहरे लाल धब्बे स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

बहुत हल्का पैटिनेशन और लैटेराइट के संपर्क के कारण होने वाले लाल रंगों के धब्बों के सर्वथा अभाव के कारण यह पता चलता है कि तृतीय वर्ग (The Third Group) के उपकरण **पुनरुच्चयित** (डेट्रिटल) लैटेराइट के बाद के हैं। ओवेटों पर छोटे-छोटे चपटे फ़्लेक चिह्न हैं। लंबे और नोकीले लेकिन पेबुल समंत अंत वाले हैण्डैक्सों पर लंबी परंतु स्पष्ट फ़्लेकीकरण की गई है। ऐसी संभावना है कि अंत एश्यूली प्रकार के ये हैण्डैक्स काष्ठ या बेलनाकार हथौड़ा प्रविधि से बनाये गये होंगे। डिस्काकार कोरों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कोर हैं जिनके एक या दोनों छोरों पर कृत्रिम संघात-स्थल के अंश हैं। ये चिपटे कोर लंबे अंडाकार या वर्गाकार हैं। अकृत्रिम संघात-स्थल वाले फ़्लेकों पर कार्टेक्स नहीं है और वे काफी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतले हैं। उनमें से कई पार्श्व-स्क्रेपर की तरह गढ़े गये हैं। इस वर्ग के उपकरण कदाचित् उसी आयु के हैं जिस आयु के प्रथम नदी-सोपान के ग्रैवेल (तृतीय हिमावर्तन) हैं।

अतिरम्पक्कम के द्वितीय नदी-सोपान के आधार लैटेराइट ग्रैवेल में अंत एश्यूली हैण्डैक्सों और क्लीवरों के साथ कोर और फ़्लेक भी पाये गये हैं। कई उपकरण जो घिसे हुए हैं निर्माण-वैशिष्ट्य के दृष्टिकोण से वादामदुराई तालाब के पहले दो वर्गों के उपकरणों के समान हैं। किंतु अधिकांश उपकरण बिना घिसे हुए और ताजे से हैं। इन हल्के पैटिनेशन वाले उपकरणों को डा० पैटर्सन उसी आयु का मानते हैं जिस आयु के तृतीय (वादामदुराई) वर्ग के उपकरण थे, अर्थात् प्रथम नदी-सोपान के ग्रैवेल के समय के। हैण्डैक्स अधिकतर फ़्लेक पर बनाये गये हैं। इन बादामाकार तथा जिह्वाकार फ़्लेकों पर बने हैण्डैक्सों की निचली सतहें छोटे-छोटे, चपटे और स्पष्ट फ़्लेक निकाल कर सोपान-पद (स्टेप) फ़्लेकीकरण द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से पुनर्गढ़ित किये गये हैं। इन हैण्डैक्सों के आकार ८ इंच लंबे और ६ इंच चौड़े से लेकर २ इंच लंबे और २ इंच चौड़े तक हैं। इस प्रकार बड़े और छोटे दोनों आकारों के उपकरण वर्गाकार-से लगते हैं। एकाध S ऐंठन वाले उपकरण भी पाये गये हैं। क्लीवरों की बहुतायत है। हैण्डैक्सों की तरह क्लीवर भी फ़्लेकों पर बनाये गये हैं। किंतु हैण्डैक्सों के ठीक भिन्न इनकी मुख्य फ़्लेक सतहें बिल्कुल ही नहीं या बहुत ही थोड़ी गढ़ी गई हैं। कुछ क्लीवर त्रिकोणाकार के हैं। इनके समंत (बट) अंत नुकीले और पार्श्व उठे हुए हैं। किंतु आधिकांश क्लीवर आयताकार हैं और उनके समंत-अंत **उन्नतोदर** (कान्वेक्स) या सीधे हैं। **कार्यांग** (वर्किंग एण्ड) के दृष्टिकोण से बढ़ती हुई संख्या के अनुसार क्लीवरों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:—(१) सबसे कम संख्या वाले क्लीवरों के कार्यांग **नतोदर** (कांकेव) या उन्नतोदर (कान्वेक्स) हैं, (२) उनसे अधिक संख्या तिरछे (आब्लीक) कार्यांग वाले क्लीवरों की है, (३) उपकरणों के मुख्य अक्षों (ऐक्सीज़) से समकोण बनाने वाले सीधे कार्यांग वाले क्लीवर सबसे अधिक संख्या में हैं। क्लीवरों के समानान्तर चतुर्भुज के से क्रास-सेक्सन् उनके दक्षिणी अफ्रीका की वाल (Vaal) प्रविधि द्वारा बनाये गये होने का संदेह होता है। कोर जिन पर सक्रम एकान्वेक (आल्टर्नेट) फ़्लेकीकरण की गई है प्रायः डिस्काकार हैं। कुछ अधिक अंडाकार कोर बिना पूरे गये हैण्डैक्स से लगते हैं। कुछ दूसरे कोर जिनके किनारे पुन-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गंढ़ित लगते हैं शायद उपकरण की तरह इस्तेमाल भी किये गये होंगे। फ़्लेकों के संघात-स्थल कृत्रिम (गढ़े हुए) हैं। इनमें से अधिकांश फ़्लेकों की ऊपरी सतहों पर चारों ओर प्राथमिक फ़्लेकीकरण की गई हैं। कुछ स्क्रेपरों को पार्श्व-स्क्रेपर या **दंतुर-स्क्रेपरों** (नाच्ड्-स्क्रेपर) की तरह पुनर्गढ़ित भी किया गया है।

द्वितीय नदी-सोपान के ऊपरी अर्द्धांश अर्थात् सिल्ट से जो लैटेराइट ग्रैवेल के ऊपर जमा है, और उसके ऊपर से बिल्कुल ताज़े-से और बिना धब्बे वाले कोर और फ़्लेक पाये गये हैं। कोर और कुछ नहीं बल्कि बड़े, चपटे और चौड़े फ़्लेक हैं जिनके किनारे मुख्य फ़्लेक सतह की ओर से चारों ओर से गढ़े गये हैं। बहुत ही कम फ़्लेक ऐसे हैं जिनके आघात स्थल अकृत्रिम (फ़ैसेटेड) हैं, हालाँकि फ़्लेकों पर स्वच्छ द्वितीयक पुनर्गढ़न किये गये हैं। इसी नदी-सोपान के सिल्ट की तल से डिस्काकार और चपटे कोर, हैण्डैक्स और फ़्लेक एकत्र किये गये हैं। इन उपकरणों पर रासायनिक रंगाई (पॅटिनेशन) के कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते हैं।

उपर्युक्त विस्तृत विवरण के उपरांत लेकिन उसी के आधार पर भारतीय पुरापाषाण का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है। भारतीय पुरापाषाण परंपरा को उद्योगों में हिमालय हिमयुग चक्र और पंजाब के पुठवल क्षेत्र के उच्च शिवालिक और उसके बाद के सोपान-श्रृंखला के आधार पर निश्चित आयु वाले उद्योगों में विभाजित किया जा सकता है। **आदि प्रातिनूतन** (अर्ली प्लाइस्टोसीन) स्तरों से अभी तक मानव-निर्मित असंदिग्ध उपकरण नहीं पाये जा सके हैं। उत्तर पश्चिमी भारत में सबसे पुराना पुरापाषाण उद्योग प्राक-सोहन (या पंजाब) फ़्लेक उद्योग है। यह पूर्वी इंग्लैण्ड के क्रोमेरी उद्योग से मिलता-जुलता है। हमने यह देखा है कि यह उद्योग उच्च शिवालिक के सबसे ऊपर वाले मध्य प्रातिनूतन (द्वितीय हिमावर्तन ग्लेशियल) कालीन बोल्डर-पिण्ड स्तर में आरंभ और समाप्त हुआ था।

इसके बाद के उद्योग उन कुछ सीमित स्तरीय प्रदेशों में पाये गये हैं जो मध्य और उच्च प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) काल के नदी-सोपानों के साथ-साथ बने थे। सिंधु और सोहन नदियों के किनारे प्रथम नदी-सोपान से द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन (इण्टरग्लेशियल) काल का आदि सोहन उद्योग पाया गया है। उत्तरी भारत में केन्द्रीभूत इस उद्योग में पेबुल चॉपरचॉपिंग-उपकरण और फ़्लेकों के साथ क्लैक्टो-लेवलायेजी प्रकार के कोर भी पाये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये हैं। अपनी ही स्वतंत्र दिशा में उद्विकसित होने वाली सोहन संस्कृति की, तत्कालीन भारतीय संस्कृतियों से पृथक्, विशेषता यह है कि इसमें प्रस्तर-उपकरण-श्रृंखला के तीन लक्षण पेबुल-उपकरण, पेबुल-कोर और फ़्लेक अविभाज्य रूप से संबद्ध पाये जाते हैं और एकाध अपवादों को छोड़ कर इस क्षेत्र में परंपरा द्वितल कोरों (हैण्डैक्सों) के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हैं। संपूर्ण सोहन संस्कृति द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन काल से लेकर चतुर्थ हिमावर्तन (ग्लेशियल) काल तक चलती रही थी।

इससे सर्वथा पृथक कोर-उपकरण परंपरा है जिसके मुख्य तत्व द्वितल हैण्डैक्स और क्लीवर हैं। यह परंपरा प्रायद्वीपीय भारत के अधिकांश भाग में फैली है और इसका मुख्य केन्द्र दक्षिण-पूर्व तटीय-प्रदेश है। इसी प्रकार की कोर-उपकरण परंपरायें पश्चिमी यूरोप और अफ्रीका में भी पाई गई हैं। यह याद रखना चाहिये कि भारत में आरंभिक अवस्थाओं में एबेवीली-आदि एश्यूली प्रकार के कोर पर बने द्वितल हैण्डैक्स पाये गये हैं। लेकिन अंतिम अवस्थाओं में इनके साथ ही फ़्लेक पर बने हैण्डैक्स और क्लीवर पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रायद्वीपीय भारत में आरंभ में हैण्डैक्स केवल कोर-प्रविधि द्वारा बनाये गये और कालांतर में ही हैण्डैक्स और क्लीवर बनाने के लिये फ़्लेक-प्रविधि भी काम में लाई गई। किंतु अफ्रीका में आरंभ से ही कोर एवं फ़्लेक दोनों प्रविधियाँ ही काम में लाई गई हैं। इस अंतर के अतिरिक्त भारत मद्रासीय और अफ्रीकी द्वितल कोर परंपराओं में यथेष्ट साम्य है। उद्विकसित अवस्था में मद्रासीय हैण्डैक्स-क्लीवर परंपरा में सोहन प्रकार के कोर फ़्लेक पाये गये हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के श्री धरणी सेन[२] भारत में तीन पाषाण-युगीन परंपराओं की विद्यमानता के पक्षपाती हैं। प्रथम, वह पेबुल-उपकरण और फ़्लेक परंपरा है जो उत्तरी भारत में पायी जाती है और उसका केन्द्र-स्थान पुठवल शिवालिक में सोहन घाटी है। द्वितीय, यूरोप और अफ्रीका के एबेवीली-एश्यूली के सदृश द्वितल कोर (हैण्डैक्स-क्लीवर) परंपरा जिसको मद्रासीय कहा गया है क्योंकि उसका केन्द्र विन्दु मद्रास और उसके निकटवर्ती प्रदेश हैं। तृतीय, पूर्वी अफ्रीका के काफ़ुवन-ओल्डोवन के समान और वैसी ही प्रविधि द्वारा बनाई गई पेबुल-उपकरण परंपरा है। अंतिम के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि यह अफ्रीकी उपकरण हैण्डैक्स की उत्पत्ति से

२. धरणी सेन, १९५४, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ३

पहले के हैं। ऐसा अनुमान है कि अफ्रीकी हैण्डैक्स परंपरा काफुवन-ओल्डोवन पेबुल-उपकरण परंपरा से विकसित हुई थी। यूरोप में ऐसी किसी भी परंपरा की साक्षियाँ नहीं मलती हैं हालाँकि इसके सम्बन्ध में यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि यूरोपीय एबेवीली-एश्यूली हैण्डैक्स परंपरा मूल रूप से वहाँ उद्भूत नहीं हुई थी। एशिया या अफ्रीका में उत्पन्न होकर यह यूरोप में विकसित हुई थी जो उसका छोर था। प्रोफेसर मोविअस और श्री सेन[3] ने यह मत व्यक्त किया है कि दक्षिण भारत में हैण्डैक्सों से पूर्व और उनकी आधारशिला के रूप में आदिम पेबुल-उपकरणों के विद्यमान होने के लक्षण पाये जाते हैं। ये हैण्डैक्सों से पहले उत्पन्न होकर उनके साथ-साथ चलते हैं। हैण्डैक्सों के विकसित होने पर इन आदिम पेबुल-उपकरणों का महत्त्व गौण हो जाता है और धीरे-धीरे ये उनमें आत्मसात् होते हैं। मद्रास में ये आदिम पेबुल-उपकरण वहाँ के बोल्डर-पिण्ड से पाये गये हैं इसलिये वे द्वितीय हिमावर्तन काल के हुए। उसके समकालीन उच्च शिवालिक पुठवल बोल्डर-पिण्ड से केवल प्राक्-सोहन फ्लेक मिले हैं, पेबुल-उपकरण नहीं। पुठवल शिवालिक क्षेत्र में तो पेबुल-उपकरण मुख्य सोहन परंपरा के आरंभ के साथ सबसे पहले द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन (इण्टर-ग्लेशियल) कालीन प्रथम नदी-सोपान के स्तरों से निकाले गये हैं।

उत्तर-पश्चिम भारत में पेबुल-उपकरण हैण्डैक्स से मुक्त होकर क्लैक्टो-लेवलाएज़ी फ्लेकों से संवद्ध मिलते हैं। आरंभ (आदि सोहन) में पेबुल-उपकरणों का प्राधान्य है जो आगे चल कर फ्लेक से कहीं कम हो जाते हैं (अंत सोहन) डॉ० मोविअस का मत है कि यह उद्योग द्वितल कोरों (हैण्डैक्सों) से मुक्त एक ऐसी आदि पुरापाषाण संस्कृति-समूह (अर्ली पैलियालिथिक कल्चर **काम्प्लेक्स**) का अंग है जिसका प्रसार उत्तरी भारत, दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन में हुआ। डॉ० मोविअस इस "संस्कृति-समूह" को विस्तार में "पूर्वी" मानते हैं और इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से उत्तरी भारत के आदि सोहन (Early Sohan), ब्रह्मा के आदि एन्येथियन (Early Anyathian) और चीन के चाउ-कूतिएन (Choukoutien) उद्योग सम्मिलित करते हैं। यह चॉपर/चॉपिंगुपकरण परंपरा इससे पूर्ववर्त्ती आदिम पेबुल-उपकरणों से संबंधित थी ऐसा उनका अनुमान है। यह सर्वथा पृथक्, असंबद्ध, स्वतंत्र रूप से दूसरे क्षेत्रों में विकसित दूसरी पुरापाषाण संस्कृति-समूह, मोविअस

---

३. वही, पृष्ठ ५-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मतानुसार, एबेवीली-एश्यूली द्वितल कोर (हैण्डैक्स) परंपरा है। अफ्रीका, यूरोप, दक्षिण-पश्चिम एशिया और प्रायद्वीपी भारत में प्रसारित यह परंपरा अपने विस्तार में "पश्चिमी" है। इन दोनों के पुरापाषाण उपकरण परंपराओं के निर्माता कौन थे इस सम्बन्ध में भी डॉ० मोविअस ने कुछ वैज्ञानिक अनुमान लगाये हैं। चीन में चाइना मैन (Sinanthropus) और जावा के Pithecanthropus के साथ चॉपर/चॉपिंगुपकरण के पाये जाने के आधार पर यह सोचा जाता है कि इस "पूर्वी" परंपरा के निर्माता सिनैन्थ्रोपॅस पिथेकेन्थ्रोपस (Prehoninians) परिवार के रहे होंगे। लेकिन "पश्चिमी" द्वितल कोर (हैण्डैक्स) परंपरा के निर्माता अवश्य ही किसी दूसरे परिवार के उपमानव रहे होंगे जो पिथेकेन्थ्रोपस-सिनेन्थ्रोपस परिवार के उपमानवों से भी अधिक आदिम रहे होंगे। इस प्रकार का मत अभी अधिक रूप से काल्पनिक ही है।

श्री धरणी सेन डॉ० मोविअस की उपर्युक्त व्याख्या को स्वीकार नहीं करते हैं। भारत को वे मुख्य रूप से द्वितल कोर उपकरण का क्षेत्र मानते हैं। उनका मत यह है कि अफ्रीका की तरह भारत भी इस परंपरा का एक अन्य मूल (उत्पत्ति) क्षेत्र था। अफ्रीका में प्राक-द्वितल कोर पेबुल उपकरणों का होना सर्वमान्य है। भारत के हैण्डैक्स परंपरा में भी आरंभ में कुछ पेबुल-उपकरण पाये जाते हैं। चूंकि भारत और अफ्रीका की ये परंपरायें लगभग समान रूप से ही उद्विकसित हुई हैं इसलिये यहाँ भी अफ्रीका की तरह प्राक-द्वितल कोर परंपरा के होने की आशा करना श्री सेन व्यर्थ नहीं मानते हैं। एशियाई प्रागितिहास में सोहन परंपरा की स्थिति श्री सेन डॉ० मोविअस की तरह सुगम नहीं मानते हैं क्योंकि भारत, ब्रह्मा, जावा और चीन के बीच की दूरी प्रागैतिहासिक उपकरणों के दृष्टिकोण से तय नहीं हो पाई है। श्री सेन यह मानते हैं कि यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि सोहन संस्कृति का मूल स्रोत दक्षिण-पूर्वी एशिया में है अथवा यूरेशिया महाखण्ड के मध्य में। व्यक्तिगत रूप से वे परवर्त्ती मत को अधिक पुष्ट मानते हैं और सोहन को इस फ़्लेक-उपकरण परंपरा का पूर्वी छोर मानते हैं। संक्षेप में, श्री सेन[४] का मत यह है कि भारत में दो पृथक् पुरापाषाण परंपरायें हैं। एक परंपरा तो मुख्य रूप से दक्षिणी है और मूल रूप से भारतीय उत्पत्ति की है। यह परंपरा पश्चिम की ओर फैली है।

४. वही, पृष्ठ १८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरी परंपरा का प्रमुख क्षेत्र उत्तरी भारत है। यह परंपरा भारत से कहीं बाहर उद्भूत होकर पश्चिम दिशा की ओर से भारत में आयी थी। यह महत्त्वपूर्ण है कि श्री सेन दूसरी (सोहन) को मुख्य रूप से फ़्लेक परंपरा मानते हैं। इसका कारण यह है कि उत्तरी (सोहन) परंपरा के पेबुल-उपकरण दक्षिणी (मद्रासीय) परंपरा के पेबुल-उपकरणों से सुघड़ और स्वच्छ बने हैं और उनसे बाद के हैं। श्री धरणी सेन इस संभावना को असंभाव्य नहीं मानते हैं कि शायद एक आदिम पेबुल-परंपरा ही सबसे पहली प्रस्तर-उपकरण परंपरा हो सकती है जो दक्षिण में तो द्वितल कोर-उपकरणों से संबद्ध हो जाती है लेकिन उत्तर में इसके प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहती है।[५]

अब हम देश के कुछ उन प्रमुख क्षेत्रों का वर्णन करेंगे जहाँ पुरापाषाण पाये जाने की सूचना मिली है।

नर्मदा घाटी--इस घाटी के होशंगाबाद और नरसिंहपुर नामक दो स्थानों पर प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) स्तरीय क्रम का अध्ययन एक शतक पूर्व १८६० ई० में किया गया था। उसके बाद इस घाटी के प्रातिनूतन कालीन स्तर-शृङ्खला, पशुवर्ग और उपकरण प्रकारों और उनके परस्पर संबंधों का सविस्तार अध्ययन डी टेरा और पैटर्सन के नेतृत्व में आये हुए येल-कैम्ब्रिज वैज्ञानिक मंडली (Yale Cambridge Expedition) ने किया। यहाँ पर उच्च शिवालिक के बोल्डर-पिण्ड के-से स्तनपायी पशुओं--विशेष रूप से एक हाथी [Elephas antiquus (namadicus)]--का पाया जाना बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके अतिरिक्त भारत के दो प्रमुख पुरापाषाण परंपराओं (सोहन और मद्रासीय) के केन्द्रीय स्थानों के बीच में स्थित होने के कारण इस क्षेत्र की उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है। यहाँ प्राक्-प्रथम वर्ग चक्र से लैटेराइट जमा हुआ। इसके अतिरिक्त डी टेरा ने तीन वर्गों की चर्चा की है जो तीन पृथक जमाव-चक्रों के द्वारा जमा किये गये थे और एक दूसरे से व्यवधानों (Unconformities) से अलग किये गये प्रतीत होते हैं। प्रत्येक जमाव-चक्र दो स्तरों का है। नीचे वाला स्तर ग्रैवेल (छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़ों) से बना है और उसके ऊपर मिट्टी (सिल्ट) और बालू की परत पायी जाती है। यह प्रक्रिया तीनो वर्गों में एक-सी ही है। प्रथम या निम्न वर्ग (Th First or the Lower Group) का निम्न अर्द्धांश निम्न आधार ग्रैवेल (The Lower Basal Gravel) है और उसके ऊपर गुलाबी प्रस्तर-घर्षित

५. वही, पृष्ठ ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिट्टी (The Pink Concretionary clay) है। द्वितीय या उच्च वर्ग (The Second or the Upper Group) एक उच्च ग्रैवेल (The Upper Gravel) और **गुलाबी मिट्टी** (The Pink clay) इन दो स्तरों से बना है। तृतीय या काली (कपास) मिट्टी वर्ग (The Third or the Cotton soil Group) में काली मिट्टी का आधार ग्रैवेल (The Basal Gravel of the Cotton soil) और उसके ऊपर काली (कपास) मिट्टी या रिगर (The Cotton soil or Regur) ये दो स्तर हैं।

निम्न वर्ग के निम्न आधार ग्रैवल स्तर से ही नर्मदा पशुवर्ग और उपकरण मिलने लगते हैं। उच्च शिवालिक बोल्डर पिण्ड के प्राक्-सोहन प्रकार का-सा बड़ा फ़्लेक मिला है जिसका अर्द्धशंकु (बल्ब) काफी बड़ा है। इसके अतिरिक्त एब्बेवीली हैण्डैक्स एश्यूली उपकरण और कोर भी पाये गये हैं। ये सभी उपकरण काफी घिसे हैं लेकिन एक एश्यूली क्लीवर मिला है जिसके किनारे बहुत तेज हैं। ऊपर का गुलाबी सिल्टी मिट्टी वाला स्तर शायद उस समय जमा किया गया था जब उस समय नदी लंबे-चौड़े भूभाग में धीरे-धीरे बहा करती होगी; इस कारण वायु-संचालित पदार्थों का भी इनके निर्माण में योगदान हुआ था। इस सिल्टी मिट्टी में कई बिना घिसे फ़्लेक और एक ताजा-सा एश्यूली द्वितल कोर मिला है। इस वर्ग की शिषता यह प्रतीत होती है कि बहुत घिसे हुए एब्बीवीली हैण्डैक्सों और फ़्लेकों के साथ-साथ घिसे हुए और ताजे से एश्यूली द्वितल कोर उपकरण भी पाये गये हैं। इससे डी टेरा इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि एश्यूली उपकरण निम्न वर्ग के आरंभ से ही बनाये जाने लगे थे।[६]

निम्न (नर्मदा) वर्ग और उच्च (नर्मदा) वर्ग एक दूसरे से एक **व्यवधान** द्वारा पृथक किये गये हैं। वर्त्तमान साक्षियों के आधार पर जीवाश्मित पशुवर्गों के दृष्टिकोण से उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि दोनों में मध्य प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) प्रकार के ही पशुओं के अवशेष पाये गये हैं। इस वर्ग के उच्च ग्रैवेल स्तर के तल में घिसे हुए एश्यूली हैण्डैक्सों के पाये जाने से इस वर्ग का उद्योग पूर्ववर्त्ती वर्ग से विकसित हुआ प्रतीत होता है। इस वर्ग की मुख्य विशेषता क्वार्टजाइट और ट्रैप से बने कोरों और फ़्लेकों के कारण है। इनमें से अधिकांश बिना घिसे हैं और डी टेरा के मतानुसार अंत् सोहन उद्योग के

६. डी टेरा और पैटर्सन, १९३९, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ३१६-३१७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकार के हैं। इसी आधार पर उन्होंने नर्मदा उच्च वर्ग उद्योग को अंत सोहन समकालीन माना है।[७]

नर्मदा घाटी के अध्ययन के बाद डी टेरा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस क्षेत्र में उपर्युक्त तीन भौतात्त्विक चक्रों के बीच व्यवधान है। पहले दो चक्रों (निम्न और उच्च वर्गों) के मेरुदण्डी पशु मध्य प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) प्रकार के हैं। इन चक्रों के स्तरों से आदि पुरापाषाण के द्वितल कोर-उपकरण (हैण्डैक्स) और सोहन प्रकार के उपकरण पाये गये हैं। उनका तर्क यह है कि यदि केवल पशुओं के आधार पर ही नर्मदा घाटी के स्तरों को प्रमुख पुठवल शिवालिक स्तरीय क्षेत्रों से संबद्ध करने की चेष्टा की गई तो निम्न (नर्मदा) वर्ग पुठवल बोल्डर-पिण्ड के समकालीन होगा। उपकरणों के आधार पर यह ठीक नहीं बैठता है क्योंकि डी टेरा के मतानुसार एक ही प्रकार का उद्योग इन दो क्षेत्रों में पृथक-पृथक समय में नहीं हुए होंगे।[८] इसी आधार पर वे नर्मदा स्तरों को पुठवल के नदी सोपानों से संबद्ध करना ठीक मानते हैं। इस संबंध का आधार भौतात्त्विक साक्षियाँ नहीं बल्कि उपकरण प्रकारों में साम्य है। निम्न (नर्मदा) वर्ग में घिसे एबेवीली हैण्डैक्सों के अतिरिक्त वास्तविक एश्यूली और आदि सोहन प्रकार के उपकरण भी पाये गये। इस आधार पर डी टेरा निम्नवर्ग को पुठवल (पंजाब) क्षेत्र में प्रथम और द्वितीय नदी-सोपानों के समकालीन मानते हैं। चूंकि उच्च (नर्मदा) वर्ग में बिना घिसे, ताजे-से अंत सोहन प्रकार के उपकरण हैं इसलिए वे इस वर्ग को पुठवल क्षेत्र के तृतीय और चतुर्थ नदी-सोपानों के समय का बतलाते हैं।[९] डी टेरा के इस तुलनात्मक अध्ययन को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है--(१) निम्न आधार ग्रैवेल=प्रथम (सोहन) नदी-सोपान; गुलाबी प्रस्तर घर्षित मिट्टी=द्वितीय (सोहन) नदी-सोपान [निम्न (नर्मदा) वर्ग] (२) उच्च ग्रैवेल=तृतीय (सोहन) नदी-सोपान; गुलाबी मिट्टी=चतुर्थ (सोहन) नदी-सोपान [उच्च (नर्मद) वर्ग] (३) काली (कपास) मिट्टी वर्ग=पंचम (सोहन) नदी-सोपान=उत्तर-प्रातिनूतन।

इस प्रसंग को समाप्त करने के पहले यह स्पष्ट कर देना ठीक होगा कि डी टेरा का यह अन्योन्य सम्बन्ध (कोरिलेशन) उपकरण-प्रकारों के आधार

---

७. वही, पृष्ठ ३१९
८. वही, पृष्ठ ३२०
९. वही, पृष्ठ ३२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर त्रुटिहीन नहीं है। वास्तव में सोहन परंपरा के मुख्य उद्योग—आदि सोहन और अंत सोहन—प्रथम और द्वितीय सोहन नदी-सोपानों के साथ संबंधित पाये गये हैं। इसलिये आदि सोहन को प्रथम और द्वितीय नदी-सोपान काल का और अंत सोहन को तृतीय और चतुर्थ सोपान काल का बता कर उनको क्रमशः निम्न (नर्मदा) वर्ग और उच्च (नर्मदा) वर्ग से संबंधित करने की जो चेष्टा डी टेरा ने की है वह ठीक नहीं प्रतीत होती है।

गुजरात : **ब्रूस फ़ूट** (Bruce Foote) ने सबसे पहले साबरमती नदी के **स्तरीकरण** (स्ट्रेटिग्रैफी) का सुन्दर विवरण दिया था। १६४१ के बाद से पूना के डा० एच० डी० संकालिया ने उत्तरी (साबरमती घाटी) और मध्य (ओरसंग नदी की घाटी) गुजरात में कई प्रागैतिहासिक शोध मंडलियों का नेतृत्व किया। इसके परिणाम-स्वरूप साबरमती नदी की घाटी में हदोल (Hadol) और पेधामली (Pedhamli) नामक स्थानों से पुरापाषाण उपकरण खोद कर निम्न स्तर ग्रैवेल-पिण्ड (Gravel Conglomorate) और उसके ऊपर के लाल सिल्ट स्तर से निकाले गये हैं। उपकरण निम्न-लिखित प्रकार के हैं—कई तरह के हैण्डैक्स, क्लीवर, फ़्लेक, स्क्रेपर और पेबुल उपकरण। ये सभी क्वार्टज़ाइट पर बनाये गये हैं। इनमें से कुछ घिसे या आधे घिसे हैं परन्तु अधिकांश उपकरण बिना घिसे हुए (ताजे-से) हैं।

एक शब्द में गुजरात पुरापाषाण उद्योग को द्वितल कोर (हैण्डैक्स) उद्योग कहा जा सकता है क्योंकि हैण्डैक्स यहाँ का मुख्य उपकरण है। डॉ० संकालिया इस उद्योग के क्रमिक विकास का कोई स्तरीय प्रमाण नहीं पा सके हैं। ऊपरी स्तर (लाल सिल्ट) में सबसे अच्छे प्रकार के बादामाकार, ओवेट और अंडाकार हैण्डैक्सों के साथ-साथ काफी आदिम हैण्डैक्स भी मिले हैं। सब मिला कर निचले और ऊपरी स्तरों में कोई विशेष अंतर नहीं मिलने के कारण ही गुजरात एक "मिश्रित उद्योग" कहा जा सकता है। इस मिश्रित उद्योग में स्तरीय आधार पर नहीं बल्कि (उपकरण) निर्माण वैशिष्ट्य के आधार पर दो धाराएँ देखी गई हैं। प्रथम या **'अनुत्तम'** (इन्फ़ीरियर) धारा यूरोप के एबेवीली और मद्रास के बोल्डर-पिण्ड से मिलती-जुलती है। इसकी विशेषता इसके उपकरणों के विषम किनारों, रूक्ष क्रम-रहित फ़्लेकीकरण और अनिश्चित स्थानों पर कार्टेक्स की विद्यमानता है। इससे भिन्न द्वितीय या **'उत्तम'** (सुपीरिअर) धारा में सुडौल आकृति, सम किनारे, उत्तम निर्बन्ध (फ्री) तथा सोपान-पद (स्टेप) फ़्लेकीकरण, कार्टेक्स या बिना कार्टेक्स वाले नोकीले, त्रिकोणाकार भारी समंत-अंत वाले हैण्डैक्स,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोटे और बड़े ओवेट, तथा क्लीवर आदि हैं। प्रकार में ये उपकरण सोहन घाटी के चौन्तरा, मद्रास के अतिरम्-पक्कम् सोपान या यूरोपीय एश्यूलन के से हैं।

१९४९ ई० में प्रोफेसर ज्वाएनर ने साबरमती, माही ओरसंग आदि नदियों में स्तरीय अध्ययन किया। उनके निर्णय डा० संकालिया के शोधों की पुष्टि करते हैं और उनको और आगे ले जाते हैं। डॉ० ज़्वाएनर ने गुजरात में स्तरीय अध्ययन के आधार पर वहाँ के पुरा-जलवायु का एक **अनुक्रम** (सीक्वेन्स्) प्रस्तुत किया है। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) में हुए **वृष्ट्यावर्तन** (प्लूविअल) और **वृष्टिप्रत्यावर्तन** (इण्टर प्लूविअल) के समान ही **आर्द्र** (ह्यूमिड) और **शुष्क** (ड्राई) जलवायु के चक्र गुजरात में भी देखे गये हैं। डॉ० ज्वाएनर के वर्णन के अनुसार सबसे निचला स्तर आर्द्र जलवायु में बने (क) लैटेराइट परतों का है उसके बाद में जो (ख) चितकबरे रंग की मिट्टी की परतें हैं वे लैटेराइट से कम आर्द्र जलवायु में जमा हुई होंगी। नदी द्वारा लाये हुए पेबुलों द्वारा जिन्हें नदी ने चादर की तरह चितकबरे मिट्टी के स्तर पर बिछा दिया उसे ढँक लिया। इस (ग) जुड़े हुए गैवेल स्तर का निर्माण **आर्द्र** जलवायु में हुआ होगा। इस स्तर से पुरापाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। जब जलवायु फिर **शुष्क** हुई तब नदी ने अपना बालू और सिल्ट जमाकर इस (घ) सिल्ट स्तर का निर्माण किया। इस स्तर से भी पुरापाषाण उपकरण पाये गये हैं। नदी ने **उच्चयन** (ऐग्रेडेशन) द्वारा एक बार फिर (ङ) लाल भूमि का निर्माण किया। उस समय सांबरमती घाटी सूखे वनों या छोटी-छोटी झाड़ियों से ढँकी रही होगी और जलवायु **आर्द्र** होगी। इसके बाद भी नदी जमा करने का काम करती रही लेकिन वह अब बालू और सिल्ट ही जमा कर पाती थी। जलवायु के **शुष्क** होने के साथ ही **वायु-संचालित** (इयोलियन) प्रक्रियाओं द्वारा बालू की मात्रा के बढ़ जाने से ही (च) मुख्य शुष्क स्तर का निर्माण हुआ होगा जिसने लाल मिट्टी को छिपा लिया। (छ) भूमि की पतली पट्टी जो बहुत-कुछ वायु-संचालित प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित हुई थी (आर्द्र जलवायु) वह दो बालुकामय स्तरों के बीच चिपट रह गई है क्योंकि आगामी स्तर (ज) बालू का टीला है। इसके जमा होने के समय जलवायु **शुष्क** हो गई थी। थोड़ी-सी **आर्द्रता** में थोड़े समय के लिए बालू के टीले पर (झ) भूमि बन गई थी। इस भूमि वाले स्तर में मानव निर्मित लघु पाषाण मिले हैं जिनके साथ मिट्टी के बर्तन असंबद्ध हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसको (ञ) सबसे अंतिम शुष्क जलवायु में बने स्तर ने ढँक लिया है। इस स्तर में मिट्टी के बर्तन और कृषि की साक्षियाँ मिली हैं। ऐसा अनुमान है कि इसमें लौह युग तक की संस्कृतियों के प्रमाण मिलते हैं। सबसे अंत में है (ह) आधुनिक धरती जिसके बनने के समय जलवायु पूर्ववर्त्ती स्तर के समय की जलवायु की अपेक्षा आर्द्रतर रही होगी।

जिस गुजरात पुरापाषाण उद्योग का वर्णन पिछले पैराग्राफ़ों में किया गया है वह डॉ० संकालिया और डॉ० ज़्वाएनर दोनों के ही अनुसार (क) लैटेराइट परत (क) के बाद का है। पुरापाषाण उपकरण जुड़े हुए ग्रैवेल स्तर (ग) और उसके ऊपर वाले सिल्ट स्तर (घ) से ही पाये गये हैं। ये बहुत पुराने प्रतीत होते हैं और निश्चय ही प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) काल में बने होंगे। गुजरात उद्योग का आयु निर्धारण करने के लिए उपकरण प्रकार का साम्य ही मुख्य आधार है क्योंकि गुजरात के शुष्क-आर्द्र जलवायु-चक्र का उत्तर भारत के हिमावर्त्तन-हिमप्रत्यावर्त्तन से संबंध स्थापित नहीं किया जा सका है। यह मानते हुए कि डी॰ टेरा का सोहन का आयु-निर्धारण ठीक ज़्वाएनर ने गुजरात पुरापाषाण को उपांतिम (तृतीय) हिमावर्त्तन या उससे थोड़े से बाद समय का माना है।[१०]

काण्डिव्ली : डॉ० ज़्वाएनर के गुजरात के **पुराजलवायु** के अध्ययन के बहुत पहले, १९३२ ई० में लेफ्टिनेण्ट टाड (K.R.U. Todd) ने बम्बई के पास **काण्डिव्ली** नामक स्थान पर स्तरीय अनुक्रम के आधार पर वहाँ के पुराजलवायु को **वृष्ट्यावर्तन** (प्लूविअल)-**वृष्टि-प्रत्यावर्तन** (इंटर प्लूविअल) चक्र के रूप में प्रस्तुत किया था। लेकिन डॉ० ज़्वाएनर के अध्ययन से **काण्डिव्ली** के स्तरों को साबरमती के क्रम में देखा जा सकता है। **काण्डिव्ली** का **बेसाल्ट** चट्टान के आधार पर टिका सबसे निचला स्तर **निम्न मिट्टी** (Lower clay) का है जो नीलापन लिये हुए भूरे रंग का है। डॉ० सुब्बाराव का मत है[११] कि यह गुजरात के चितकबरी मिट्टी (ख) स्तर के समकालीन है। इसके बाद के दो स्तर ललाई लिये हुए भूरा निम्न ग्रैवेल (Lower Gravel) जो लैटेराइट् प्रभावित लगता है ; और उसके ऊपर का नीला मध्य मिट्टी (middle clay) वाला स्तर है। ये दोनों एक ही

---

१०. फ्रेडेरिक ई० ज़्वाएनर, १९५०, स्टोन एज ऐण्ड प्लाइस्टोसीन क्रोनोलॉजी इन गुजरात, पृष्ठ ४४, डकन कॉलेज, पूना।

११. वेणुपदी सुब्बाराव, १९५८, द पर्सोनालिटी आव् इण्डिया, पृष्ठ ६४, फकल्टी आव् आर्ट्स, एम० एस० यूनिवर्सिटी आव् बड़ौदा, बड़ौदा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्चयन चक्र (ऐग्रेडेशनल साइकिल) द्वारा जमा किये गये प्रतीत होते हैं। इसके ऊपर क्रमशः **उच्च ग्रैवेल** (Upper Gravel) और **उच्च मिट्टी** (Upper clay) स्तर हैं जो वैसे ही एक दूसरे उच्चयन चक्र के परिणाम-स्वरूप रचित मालूम होते हैं।

काण्डिवली के प्रत्येक स्तर से पुरापाषाण (पैलियालिथिक) उपकरण प्राप्त हुए हैं। (१) निम्न मिट्टी स्तर से रूक्ष उपकरण और फ़्लेक पाये गये हैं। उस स्तर के चॉपर, कोर और स्क्रेपर आदि क्लैक्टोन या आदि सोहन प्रकार के से लगते हैं। निम्न ग्रैवेल के निचले भाग से तो एबेवली और क्लैक्टोनी प्रकार के चर्ट और शेल पर बने कुछ घिसे से उपकरण पाये गये हैं। इस स्तर के ऊपरी अंशों से ताजे से क्लैक्टोन उपकरणों के अतिरिक्त अंत एश्यूली प्रकार के क्लीवरों और हैण्डैक्सों के साथ एश्यूल प्रविधि से गढ़े गए फ़्लेक भी पाये गये हैं। आगामी मध्य मिट्टी स्तर के शीर्ष पर फ़्लेक पर बने छोटे-छोटे हैण्डैक्सों के अतिरिक्त फ़्लेक, कोर, स्क्रेपर, ब्लेड आदि भी पाये गये हैं जिनके आधार पर इस उद्योग को ब्लेड उद्योग कहा जा सकता है। उच्च ग्रैवेल स्तर के ऊपर परतों में ब्लेड और ब्यूरीन उद्योग के साथ ही साथ एक पशु के अस्थ्यावशेष पाये गये हैं जो शायद नर्मदा हाथी (Elephas antiquus namadicus) रहा होगा। इस प्रदेश का अंतिम (उच्च मिट्टी) स्तर एक शब्द में ब्यूरीन उद्योग से विभूषित प्रतीत होता है। इस स्तर से बहुपहल (पॉलीडेड्रल) और कोण ब्यूरीनों के साथ ही **चञ्चवाकार** (पैरट-वीक) ब्यूरीन पाये गये हैं। पश्चिमी यूरोप के मापदंड से इस उद्योग को ऑरिग्नेशी का सा कहा जा सकता है। श्री वी० डी० कृष्णस्वामी ने **काण्डिव्ली** उद्योग को मद्रास के लैटेराइट के समकालीन बताया है।[१२]

उच्च गोदावरी : गोदावरी नदी के किनारे बसे औरंगाबाद जिले के पैथान नामक स्थान पर जुड़े **ग्रैवेल स्तर** से Elephas namadicus की एक खोपड़ी आज से लगभग सौ वर्ष पहले फ़ावजर ने प्राप्त की थी। १९०४ में पिल्ग्रिम को भी नन्दूर नामक स्थान से दरियाई घोड़ा का निचला जबड़ा और एक हाथी (Elephas namadicus) की खोपड़ी का एक हिस्सा मिला। तब से इस उच्च गोदावरी क्षेत्र का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया। पैथान के निकट वाइन (Wynne) ने १८६३ ई० में एक फ़्लेक पाया था।

---

१२. वी० डी० कृष्णस्वामी, १९४७, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९४३ में डॉ० संकालिया ने नासिक जिले के निफ़द (Niphad) नामक स्थान से कुछ उपकरण पाये थे जो डिस्काकार और लंबे कोरों से बनाये गये हैं। निचले ग्रैवेल स्तर में पाये गये इन कोरों और फ़्लेकों का वर्गीकरण करने में डॉ० संकालिया और डॉ० ज़्वाएनर दोनों असफल रहे। इसका कारण यह था कि साधारण रूप से उपकरण प्रकार में तो वे नवपाषाण (neolithic) के उपकरणों से लगते थे, किन्तु स्तरीय आधार पर वे निश्चित रूप से प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) काल के लगते हैं। प्रो० ज़्वाएनर का मत है कि शायद ये उपकरण नहीं, बल्कि अवशिष्ट फ़्लेक मात्र हैं।[१३]

नेवासा उद्योग : बंबई राज्य के अहमदनगर जिले में नेवासा (Nevasa) एक छोटा-सा कस्बा है। उच्च गोदावरी क्षेत्र में ही यह क़स्बा गोदावरी की एक सहायक प्रवर (Pravara) नदी के दोनों किनारों पर बसा है। आधारभूत भौतात्त्विक स्तर **बसाल्ट** (दक्खन) ट्रैप चट्टानों का बना है, जो शायद **उच्च खटीकाल** (अपर क्रिटेशिम्मस्) या **आदि** आद्यनूतन (अर्ली ईओसीन) काल में बना था। इसके ऊपर ग्रैवेल के तीन स्तर हैं। इन्हें क्रमशः प्रथम ग्रैवेल, (या आधार ग्रैवेल--Basal Gravel), द्वितीय ग्रैवल (या मध्य ग्रैवेल--middle Gravel) और तृतीय ग्रैवेल (या उच्च ग्रैवेल--Upper Gravel) कहा जा सकता है। ये सब स्तर आर्द्र जलवायु में बने हुए प्रतीत होते हैं। यह याद रखने योग्य है कि इन ग्रैवेल स्तरों के बीच मिट्टी की परतें अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु की ओर संकेत करती हैं। तृतीय (या उच्च) ग्रैवेल स्तर के ऊपर हल्के भूरे सिल्ट का काफी मोटा स्तर है। सबसे ऊपर काली (कपास) मिट्टी का आधुनिक स्तर है जो आर्द्रता में जमा होने की ओर संकेत करता है। डॉ० संकालिया भूरे सिल्ट के निर्माण के महत्त्व के संबंध में अपनी **अज्ञता** स्वीकार करते हैं लेकिन आर्द्र-शुष्क जलवायु-चक्र की विद्यमानता के बारे में निश्चित मत है।[१४] जुड़े हुए आधार (प्रथम) ग्रैवेल स्तर से पाँच जीवाश्मों के अंश पाये गये हैं जो गोवंशी पशुओं (Bos और Booid) के हैं। एक निचला जबड़ा Bos namadicus का है।

नर्वदा के अतिरिक्त नेवासा ही प्रायद्वीपीय भारत में एक ऐसा स्थान है जहाँ पुरापाषाण उपकरणों के साथ उसी स्तर में पशु जीवाश्म (एनिमल

---

१३. एफ़० ई० ज़्वाएनर, १९५०, पृष्ठ ३८

१४. एच० डी० संकालिया, १९५६, 'एनिमल-फासिल्स् ऐण्ड पैलियालिथिक इण्डस्ट्रीज़ फ्राम द प्रवर एट नेवासा, 'डिस्ट्रिक्ट अहमदनगर,' 'एन्शिएण्ट इंडिया नं० १२', पृष्ठ ३७.

फ़ॉसिल्स) संबंधित मिले हैं। स्तरीभूत गोवंशी पशु (Bos namadicus) के निचले जबड़े की नर्वदा से तुलना करने पर नेवासा के आधार ग्रैवेल पुरापाषाण उद्योग को मध्य प्रातिनूतन (मिडिल प्लाइस्टोसीन) काल का माना गया है।[१५] इस हैण्डैक्स-क्लीवर प्रधान उद्योग के अंत एबेवीली और आदि-मध्य एश्यूली प्रकार के उपकरण भी इसकी पुष्टि करते हैं। इस स्तर के उपकरण ट्रैप और डोलेराइट (Dolerite) पत्थरों से बनाये गये हैं और इनको प्रथम श्रेणी के उपकरणों के अंतर्गत रखा गया है। इस वर्णन का यह अर्थ कदापि नहीं कि प्रथम श्रेणी के उपकरण द्वितीय और तृतीय ग्रैवेल स्तरों में पाये ही नहीं गये हैं। इस श्रेणी के मुख्य उपकरण हैं पेबुल संमत वाले बादामाकार और मछली के से **(पिरी फार्म)** हैण्डैक्स, क्लैक्टोन प्रविधि द्वारा बनाये गये क्लीवर, नुकीले कार्यांग और मोटे समंत-अंत **(बट्-एण्ड)** वाले फ्लेक, एक डिस्काकार पेबुल कोर, जो केवल आधी दूर सोपान-पद (स्टेप) फ्लेकीकरण प्रविधि द्वारा गढ़ा गया है, कुछ भूरे गढ़े कोर या कुठार प्रस्तर और एक कोर पर बना **विशेष हैण्डैक्स** (Tabular handaxe on Core)। यह श्रेणी नेवासा पुरापाषाण उपकरण-निर्माणकारी पहली और पुरानी परंपरा है जिसे डॉ० संकालिया हैण्डैक्स-क्लीवर परंपरा (Handaxe-cleaver tradition) कहते हैं।

द्वितीय नेवासा पुरापाषाण श्रेणी के उपकरण ट्रैप और डोलेराइट के स्थान पर एजेट (Agate), चर्ट (chert), चाल्सेडनी (Chalcedony) और जैस्फ़र (Jasper) जैसे चमकीले पत्थरों पर बनाये गये हैं। मुख्य उपकरण ये थे : अकृतिम संघात स्थल, चिकनी मुख्य सतह और गढ़े या बिना गढ़े ऊपरी सतह वाले फ्लेक ; बिना गढ़े चपटे आधार वाले क्लैक्टोनी कोर, पार्श्वगढ़ित ब्लेड, पार्श्व स्क्रेपर, ब्लेड पर बना ब्यूरीन, छिद्रक (ऑल) जैसे नुकीले उपकरण और लेवलायेज़ फ्लेक। इस श्रेणी के उपकरणों का प्राधान्य द्वितीय-तृतीय ग्रैवेल स्तरों में है। कालांतर की इस नेवासा पुरापाषाण परंपरा को डॉ० संकालिया **फ्लेक-एवं-ब्लेड परंपरा** (Flake and Blade tradition) नाम देते हैं। इस परंपरा वाले स्तरों में हैण्डैक्स भी पाये गये हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुछ समय तक प्रथम (हैण्डैक्स-क्लीवर) परंपरा और द्वितीय (फ्लेक और ब्लेड) परंपरा साथ-साथ चलती रही किंतु धीरे-धीरे दूसरी ने पहली को आत्मसात् कर लिया होगा।[१६]

---

१५. वही, पृष्ठ ३९.
१६. वही, पृष्ठ ४०.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्नूल : आन्ध्र प्रदेश के इस क्षेत्र का भारतीय प्रागितिहास के आधुनिक वैज्ञानिक जगत में एक विशेष स्थान है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि दक्षिण-पूर्व भारत के इसी प्रदेश के उपकरणों और उनके बनने के समय के जलवायु के बारे में लिखकर बर्किट और कैमिएड[१७] ने भारतीय प्रागितिहास को दृढ़ भौतात्त्विक आधार पर रखने का नवीन और मार्ग-प्रदर्शक प्रयत्न किया। इन लोगों ने यहाँ चार प्रस्तर संस्कृतियों की विद्यमानता पायी जो चार भिन्न-भिन्न कालों के हैं, इनके स्तरीय प्रमाण हैं। ये क्वार्टज़ाइट् पर बने हैण्डैक्स उद्योगों से आरम्भ होकर क्वार्ट्ज़ और एजेट पर बने लघुपाषाणों तक हैं। ये उद्योग एक ही उद्योग-स्थल पर नहीं पाये गये थे और प्रत्येक उद्योग में उपकरण-निर्माण-प्रविधियों के बदलने के साथ ही स्तर भी बदलते पाये गये हैं। इन्हीं के आधार पर बर्किट ने **वृष्ट्यावर्तन-वृष्टिप्रत्यावर्तन** (प्लूवियल-इण्टरप्लूवियल) चक्र प्रस्तुत किया था। यह बहुत महत्वपूर्ण बात थी कि आदि पुरापाषाण से लेकर मध्यपाषाण समय तक के दक्षिण-पूर्व भारत और दक्षिणी अफ्रीका के जलवायु चक्र एक समान पाये गये। ठीक इसी प्रकार ऊपरी स्वरूप और निर्माण-प्रविधि के आधार पर कर्नूल पुरापाषाण उद्योगों के जो विभाग किये गये थे वे दक्षिण अफ्रीकाके उद्योगों से बिल्कुल मिलते-जुलते थे।

उपर्युक्त वर्णन से यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि कर्नूल उद्योग मुख्य रूप से **द्वितल कोर** (हैण्डैक्स) उद्योग है। सबसे पहला उद्योग द्वितल कोर उपकरणों का है जो शुष्क अंश से आरंभ होकर परवर्त्ती तीव्र वृष्ट्यावर्तन जलवायु तक चलता रहा था। इस प्रथम श्रेणी के क्रमहीन या टेढ़े-मेढ़े किनारे वाले मोटे समंत-अंत और कार्टेक्स स्थान-स्थान पर विद्यमान रहें ऐसे ऐब्रेवीली-एश्यूली प्रकार के उपकरणों का प्राधान्य है। कार्यांग नोकीला होता है और उपकरण घिसी हुई अवस्था में हैं। हैण्डैक्सों के अतिरिक्त क्लीवर, ओवेट और कोर तथा कोर स्क्रेपर भी हैं। द्वितीय श्रेणी में फ़्लेक उद्योग हैं। इस उद्योग का पूर्वार्द्ध, जो शुष्क जलवायु में बना था, क्वार्टज़ाइट, बालू-प्रस्तर और चाल्सेडनी के हैण्डैक्स और क्लीवर प्रधान है जो मध्य से अंत एश्यूली प्रकार के हैं। उत्तरार्द्ध में क्लेक्टोनी फ़्लेक, ब्लेडनुमा और ब्यूरीन के से फ़्लेकों के अतिरिक्त कुछ कृत्रिम संघात-स्थल वाले लेवलाएज़ फ़्लेक भी हैं। यह उद्योग आर्द्र जलवायु में बना था। तृतीय

---

१७. एम० सी० बर्किट एण्ड एल० एल० कैमिएड, १९३०, 'फ्रेश लाइट ऑन द स्टोन एज़ आफ़ साउथ-ईस्ट एशिया', ऐण्टिक्विटी, भाग ४, पृष्ठ ३२७-४०

श्रेणी में लीडेनाइट पर बने पतले पार्श्व-गढ़ित ब्लेड, अंत-स्क्रेपर, और ब्यूरीन हैं, इसी कारण इसको ब्लेड और ब्यूरीन उद्योग कहा गया है। चतुर्थ या अंतिम श्रेणी में लघुपाषाणों का प्राधान्य है जो एजेट् और क्वार्टजाइट पर बने हैं। छोटे-छोटे कोर, स्क्रेपर के अतिरिक्त चन्द्राकार और त्रिकोणाकार लघुपाषाण भी पाये गये हैं।

मयूरभंज:—१९४० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के नृतत्त्व विभाग ने तत्कालीन देशी राज्य मयूरभंज के कुलियाना (Kuliana) नामक स्थान पर खुदाई की थी। यह क्षेत्र अब उड़ीसा राज्य में मिला दिया गया है। सर्वश्री निर्मल कुमार वसु और धरणी सेन ने मयूरभंज में **स्तरीय अनुक्रम** (स्ट्रेटिग्रैफिकल सीक्वेन्स) का अध्ययन किया है। वे लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये कुलियाना (मयूरभंज) भौतात्त्विक स्तर एकान्वेक होने वाले आर्द्र और शुष्क जलवायु चक्रों से बने हैं। स्तरों की शृंखला को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है: (१) सब से नीचे अज्ञात गहराई वाली हल्के भूरे रंग की चिपचिपी मिट्टी की परतें हैं। (२) इसके ऊपर गठा हुआ चितकबरे रंग का चिकने पत्थर (पेबुल) मिश्रित लैटेराइट का स्तर है। (३) लैटेराइट स्तर बोल्डर पिण्ड की एक मोटी तह से ढका हुआ है। यह बोल्डर-पिण्ड पत्थर से घिस कर बनी हुई मिट्टी की एक पतली के द्वारा दो भागों में विभाजित पाया जाता है। बोल्डर-पिण्ड स्तर के ऊपर कछार (नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी या एलूवियम) स्तर पाया गया है। बोल्डर पिण्ड के दोनों उपविभागों से प्रस्तर उपकरण पाये गये हैं। श्री सेन का मत है कि प्रकार के आधार पर ऊपरी उपविभाग से पाये गये उपकरण मद्रास के **पुनरुच्चयित** (डेट्रितल) लैटेराइट के निम्नतम स्तर के उपकरणों के समान लगते हैं, क्योंकि दोनों ही स्थानों पर ऐबेवीली प्रकार के हैण्डैक्स और पेबुल चॉपर पाये गये हैं।[१८] लेकिन अधिकांश मयूरभंज द्वितल कोर (हैण्डैक्स) और पेबुल उपकरण मद्रासीय बोल्डर पिण्ड के उपकरण जैसे हैं। जो कुछ फ़्लेक मिले हैं वे **उच्च शिवालिक** (पुठवल) बोल्डर-पिण्ड के विशाल प्राक् सोहन (Pre-Sohan) फ़्लेकों से तुलना करने योग्य हैं।

सिंगरौली क्षेत्र (दक्षिणी मिर्जापुर): १८८३ ई० में ही जे० काकबर्न (J. Cockburn) ने दक्षिणी मिर्जापुर जिले के सिंगरौली क्षेत्र से कुछ पुरापाषाण उपकरण प्राप्त किये थे। १९३५ ई० में डी० टेरा ने मिर्जापुर

१८. धरणी सेन, १९५४, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १२.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र के भौतात्त्विक महत्त्व की ओर संकेत किया था; किंतु वे स्वयं उस क्षेत्र का अध्ययन नहीं कर सके। नर्मदा में सोहन और मद्रासीय परम्पराओं के संगम और वैसा ही कुछ आभास गुजरात में मिला है। मयूरभंज के कुलियाना में मद्रासीय द्वितल कोर उद्योग की छाप के कारण सिंगरौली क्षेत्र का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। श्री कृष्णस्वामी इस क्षेत्र में १९४९ के आरंभ में स्वयं गये और वहाँ पुरापाषाण उद्योग-स्थलों को खोज निकाला। १९४९ में प्रो० ज़्वायनर के नेतृत्व में जो **वैज्ञानिक** मंडली मिर्जापुर गई थी उसमें श्री कृष्णस्वामी भी एक सदस्य थे।

सिंगरौली क्षेत्र के केवल तीन उपकरण श्वेत वीन क्वार्टज़ (vein quarts) के बने हैं अन्यथा सभी क्वार्टजाइट पर बनाये गये हैं। श्री कृष्णस्वामी के संग्रह में अधिकता एबेवीली-एश्यूली द्वितल हैण्डैक्सों और क्लीवरों की है जो पूरे संग्रह के ४२·७% हैं। इनमें ३४·५% हैण्डैक्स और ८·२% क्लीवर हैं। इस प्रकार आधार-भूत रूप से सिंगरौली क्षेत्र मद्रासीय हैण्डैक्स परंपरा का उद्योग है। सोहन के चापर/चापिगुपकरण प्रकार के उपकरण केवल १६·४% ही हैं। कोर और कोर स्क्रेपर पूरे संग्रह के ७·३% हैं। शेष ३३·६% फ़्लेक उपकरण। फ़्लेकों में प्राधान्य आद्य-लेवलाएज़ (प्रोटो) प्रकार का है जो पूरे संग्रह का १८·२% है। ८·२% फ़्लेक क्लैक्टोन प्रकार के हैं। ७·२% फ़्लेकों के अकृत्रिम संघात-स्थल उनके लेवलाएज़ होने की ओर संकेत करते हैं।

श्रीकृष्णस्वामी सिंगरौली उद्योग को मयूरभंज के समान मुख्य रूप से द्वितल कोर उद्योग मानते हैं।[१९] दोनों स्थानों में क्वार्टजाइट पर बने एबेवीली-एश्यूली हैण्डैक्स, कई प्रकार के क्लीवर, कोर उपकरण और क्लेक्टोन फ़्लेक भी पाये गये हैं। उनका मत है कि सिंगरौली क्षेत्र की अपेक्षा मयूरभंज में प्रगति धीमी रही है। सिंगरौली उद्योग के आद्य-लेवेलाएज़ और पूर्ण लेवेलाएज़ फ़्लेक इस तथ्य के परिचायक माने जा सकते हैं। इस प्रगति का कारण वे सोहन फ़्लेकीकरण प्रविधि को मानते हैं, क्योंकि शायद उसी की प्रेरणा के कारण ऐसा हो सका था।

---

१९. वी० डी० कृष्णस्वामी एण्ड के० वी० सुन्दराजन, १९५१, पार्श्वोद्वरित, पृष्ठ ४९-५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १२

भारतीय मध्यपाषाण-लघुपाषाण और संबद्ध उद्योग

भारतीय **पुरापाषाण** का **भौतात्त्विक** आधार बहुत कम मालूम है लेकिन **उत्तर पुरापाषाण** (पोस्ट पैलियालिथिक) भारतीय **संस्कृतियों** के संबन्ध में तो हम आधारहीन से ही हैं। **भौतात्त्विक आधुनिक** (होलोसीन्) का आरंभ किस तरह की जलवायु संबन्धी परिस्थितियों में हुआ इस सम्बन्ध में अभी कुछ भी ज्ञान न होने के कारण भारत के उत्तर पाषाण उद्योगों को उसी अर्थ में 'मध्य पाषाण' कहना उचित नहीं होगा जिस अर्थ में हम यूरोपीय **उत्तर प्रातिनूतन** (पोस्ट प्लाइस्टोसीन्) **उद्योगों** और **उद्योग-समूहों** के लिये इस शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। तत्कालीन (मध्य-पाषाण) लोगों के जीवन की जो झाँकियाँ हमें यूरोपीय **प्रागितिहास** पुस्तकों में वर्णित मिलती हैं वैसा कोई भी विवरण भारतीय प्रागितिहास के वर्तमान ज्ञान-भण्डार के आधार पर प्रस्तुत करना संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में भारतीय मध्य-पाषाण की उच्च वन्यता के बारे में हमारा ज्ञान नहीं के बराबर है। भारत में लघुपाषाणों की भरमार है किंतु उत्तरी यूरोप में जिस प्रकार भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों से **पुच्छल अस्त्राग्र** (हैण्ड-प्वाइंट), **कुठार** (ऐक्स) या **लघुपाषाण** (माइक्रालिथ) संस्कृतियाँ सम्बन्धित मिलती हैं वैसी कोई विशेषता हमें भारतवर्ष में अभी तक देखने को नहीं मिली है। भारतीय प्रागितिहास के इस अंश में हम विभिन्न प्रकार के लघुउद्योगों के अतिरिक्त कुछ ऐसे उद्योगों का भी वर्णन करेंगे जिन्हें **उपकरण प्रकार** (टाइपॉलॉजी) और **निर्माण-वैशिष्ट्य** (टेक्नॉलॉजी) के अनुसार **अपि-पुरापाषाण** (इपी-पैलियॉलिथिक) और **आद्य नवपाषाण** (प्रोटोनियॉलिथिक) कहा जा सकता है।

भारत में प्रागितिहास में प्रगति की चर्चा करते हुए श्री कृष्णस्वामी ने एक स्थान पर[1] यह मत व्यक्त किया है कि उत्तर भारत के **हैण्डैक्स**

---

१. वी० डी० कृष्णस्वामी, १६५३, "प्रॉग्रेस इन प्रीहिस्ट्री" ऐन्शियन्ट इण्डिया नं ६, पृष्ठ ६३, डाइरेक्टर जनरल ऑव् आर्कियोलॉजी इन इण्डिया, नई दिल्ली।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्योगों के बाद **लेवलाएजी प्रविधि** प्रधान फ़्लेक उद्योगों का समय आया था। इस प्रकार के किसी लाक्षणिक उद्योग का उदाहरण उन्होंने नहीं दिया है लेकिन उपर्युक्त बात पुठवल क्षेत्र के 'उद्विकसित सोहन' उद्योग का विवरण देते हुए कही गई है जिसको भौतात्विक आधुनिक (होलोसीन) के अन्तर्गत रखा गया है। इस उद्योग की विशेषताओं का वर्णन हमने पिछले अध्याय में ही कर दिया था। यह ठीक है कि टॉड को १९३२ में पिण्डीघेव में अज्ञात आयु के प्रस्तर-उपकरणों का पता चला था जिसे पैटर्सन ने हाल ही का बताया था। किन्तु डी टेरा ने पंजाब (पुठवल) के चतुर्थ **हिमावर्तन** (ग्लेशियल) कालीन चतुर्थ नदी-सोपान से सहसंबन्धित किया था। इसलिये इस उद्योग को पुरा-पाषाण उद्योग मानना ही उचित होगा। मध्य प्रदेश में रीवाँ के पास मोढ़ाना पहाड़ की गुफा की खुदाई करने पर श्री ए० सी० कार्लेइल (A. C. Corlleyle) को लघु-पाषाणों के नीचे लम्बे फ़्लेक उपकरण मिले। ये उपकरण यूरोप के अंत **मग्दलेनी ब्लेड** और **ब्यूरीन** उद्योग के उपकरणों के समान लगते हैं। भौतात्त्विक आधुनिक (होलोसीन्) काल के इन उपकरणों को अपि-पुरापाषाण ही कहा जा सकता है।

भारतवर्ष में दो ही ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पर पूर्ण और प्रत्यक्ष स्तरीय अनुक्रम में आरंभिक कोर से लेकर लघु-पाषाणों तक क्रमिक विकास देखने को मिलता है। एक क्षेत्र तो पूर्वी घाट के निकट कर्नूल जिले के वे स्थान हैं जिनका अध्ययन बर्किट और कैमिएड ने किया था। दूसरा क्षेत्र बंबई शहर के निकट पश्चिमी तट पर स्थित कांडिव्ली और मार्वे नामक स्थान है जिनके प्रागैतिहासिक महत्त्व की सूचना सर्व प्रथम लेफ्टिनेंट टॉड ने दी। इन दोनों क्षेत्रों में एक अंतर है। बर्किट और कैमिएड ने कर्नूल-अनुक्रम तीन विभिन्न उद्योगस्थलों में पाये गये उपकरणों के आधार पर तैयार किया था। इसके विपरीत काण्डिव्ली उद्योग शृंखला पूरी की पूरी एक ही स्थान पर पायी गयी थी।

कर्नूल में मुख्य रूप से तीन स्थान उल्लेखनीय हैं—गिद्दलूर, नन्दीकनामा दर्रा तथा निम्न गोदावरी। इन सब स्थानों पर पाये गये उपकरणों के आधार पर किये गये विभागों में से प्रथम (हैण्डैक्स) श्रेणी से इस समय हमारा कोई संपर्क नहीं है। द्वितीय (गिद्दलूर) श्रेणी के फ़्लेकों के बारे में हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं। बर्किट और कैमिएड की तृतीय (नन्दीकनामा) श्रेणी के यूरोपीय उच्च पुरापाषाण के से उपकरण हैं। **लीडेनाइट** के ब्यूरीन, **स्क्रेपर,** पतले **पार्श्वपुनर्गढ़ित ब्लेड,** चिकनाने वाले उपकरणों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के साथ **अर्धचन्द्राकार** लघुपाषाण इस अपि-पुरापाषाण उद्योग को कालान्तर के लघुपाषाण उद्योग से सम्बद्ध करता है। चतुर्थ (निम्न गोदावरी) श्रेणी के क्वार्ट्ज और एजेट के लघुपाषाण पूर्ववर्ती अर्धचन्द्राकार आद्य-लघुपाषाणों से छोटे हैं और **ज्यामितिक** आकार के हैं।

काण्डिव्ली में इसी प्रकार का अनुक्रम (सीक्वेंस्) देखने को मिलता है। वहाँ क्लैक्टोनी एवं अश्यूली उद्योग के बाद वाले स्तर से ब्लेड-फ़्लेक उपकरण पाये गये हैं। इसके उपरान्त ब्लेड और ब्यूरीन उपकरणों के दो स्तर हैं जिनमें से ऊपरी स्तर के अधिक विकसित उपकरण **आद्य-लघुपाषाण** (प्रोटो-माइक्रालिथ्) से लगते हैं। सबसे ऊपरी आधुनिक मिट्टी की सतह के आसपास से लघुपाषाण उद्योग पाये गये हैं। काण्डिव्ली से ३ मील पश्चिम मार्वे नामक स्थान से कुछ लघुपाषाण मिट्टी के बर्तनों के साथ पाये गये हैं। इस लघुपाषाण उद्योग के अर्धचन्द्राकार, **छिद्रक**, ब्लेड और ब्यूरीन **चर्ट, चाल्सेडन** और **एजेट्** पत्थरों के बने हैं और ऊपर से केवल ६ इंच मोटे स्तर में ही पाये गये हैं। छः इंच के स्तर के नीचे चट्टान की आधारशिला पायी गयी है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ऊपरी मिट्टी वाले स्तर से ब्लेड और ब्यूरीन छोटे होते जाते हैं और उनको लघु-पाषाण (या आद्य-लघुपाषाण) उद्योग के अंतर्गत रखा जा सकता है। वास्तविक लघु पाषाण उद्योग काण्डिव्ली से सम्बन्धित माने गये हैं। इसी का विकसित रूप आदिम मिट्टी के बर्तनों के साथ संबद्ध मार्वे लघुपाषाणों में देखा जा सकता है।

काण्डिव्ली	कर्नूल	जलवायु	भौतात्विक काल
काण्डिव्ली सतह और मार्वे (लघु-पाषाण उद्योग)	चतुर्थ निम्न गोदावरी-श्रेणी	(५) वर्तमान जैसी	
क़ाण्डिव्ली	तृतीय (नंदीकनामादर्री) श्रेणी	(६) शुष्क जलवायु	उत्तर प्रातिनूतन
उच्च मिट्टी	उच्च		
उच्च ग्रैवेल्	निम्न	आर्द्र जलवायु	उच्च प्रातिनूतन
मध्य मिट्टी	द्वितीय (गिद्दलूर) श्रेणी	शुष्क जलवायु	मध्य प्रातिनूतन

१९४६ ई० में डॉ० बेन्दपुदी सुब्बाराव[२] (Bendapudi Subbarao) ने

२. बेन्दपुदी सुब्बाराव, १९४८, स्टोन एज कल्चर्स ऑव् बेलारी, पूना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संगनकल्लू में खुदायी की। संगनकल्लू गाँव बेलारी शहर से उत्तर पश्चिम तीन मील की दूरी पर बसा है। वहाँ गाँव के उत्तर में पहाड़ियों की शृंखला में सबसे पश्चिम वाली पहाड़ी की चोटी पर खुदायी की गई थी। इस स्थान की प्राप्त पुरातात्विक सामग्री को सुब्बाराव ने ३ **निवास कालों** (Phases I-III) में बाँटी है। सबसे प्राचीन और प्रथम निवास काल (Phase I) **ट्रैप** और **बालुप्रस्तर** के बने गहरे **पैटिनेशन** वाले फ़्लेकों और उनके साथ संबन्धित **क्वार्टज़** और चर्ट के लघुपाषाणों के लिये जो बहुत सुघड़ता से नहीं बने हैं, उल्लेखनीय हैं। ४०० के लगभग फ़्लेक पाये गये हैं। इनमें दो प्रमुख प्रकार हैं—लंबे फ़्लेक और छोटे-मोटे फ़्लेक। इन सब पर गहरा भूरा पैटिनेशन है। लम्बे फ़्लेकों के संघात-स्थल सादे, फ़्लेक कोण २००° के लगभग, संघात के अर्धशंकु बड़े हैं। उनपर लम्बे फ़्लेक चिह्न हैं, जो लेवलाएज़ की सी प्रविधि द्वारा बनाये गये मालूम पड़ते हैं, छोटे-मोटे फ़्लेक भी लेवलाएज़ की सी ही प्रविधि से बनाये गये प्रतीत होते हैं। अधिकांश फ़्लेकों में निम्न फ़्लेक स्तर बिना गढ़े छोड़ दिये गये हैं। ऊपरी सतह पर चारों ओर के किनारों पर एक स्थान से केन्द्रीभूत फ़्लेक निकाले गये हैं। संक्षेप में संगनकल्लू की यह उत्तर पुरापाषाण फ़्लेक उद्योग लघुपाषाण ब्लेड उद्योग लगता है और वास्तविक लघुपाषाणों का पूर्वगामी है भी। इसलिये इसको भी अपि-पुरापाषाण उद्योगों का एक नमूना माना जाना चाहिये।

अभी तक के वर्णन में उन्हीं उद्योगों की चर्चा की गयी है जिनमें **उच्च पुरापाषाण** के से **उपकरणों** का बाहुल्य पाया गया है। लघुपाषाण शब्द का प्रयोग भी हुआ है; हालाँकि इसकी पूरी व्याख्या नहीं की जा सकी है। यद्यपि यह ठीक है कि लघुपाषाण उद्योगों में प्रायः छोटे-छोटे उपकरण होते हैं जिनकी लम्बाई एक इंच के आसपास होती है। लेकिन कभी २ या ३ इंच तक लम्बे प्रस्तर उपकरणों को भी लघुपाषाण कह दिया जाता है। इसी कारण कुछ विद्वान लघु-पाषाण को सुविधाजनक नामकरण मात्र मानते हैं। भारत में उतने प्रकार के लघुपाषाण नहीं पाये जाते हैं जितने कुछ यूरोपीय देशों में देखे गये हैं। लेकिन फिलीस्तीन के **नतूफ़ी** (Natufian) और उत्तरी अफ्रीका के **उच्च कप्सियन** (Upper Capsion), **सेबीलियन** (Sebilian) और **ओरोनियन** (Orenian) संस्कृतियों के लघुपाषाण भारत में भी मिलते हैं। हमारे देश के लघुपाषाण उद्योगों में ब्यूरीन, विशेष रूप से लघु ब्यूरीन, बहुत ही नाममात्र को पाये गये हैं। ब्यूरीन (ग्रेवर) मुख-ब्लेड के एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छोर से टेढ़ा फ़्लेक कर बनाया गया है। किन्तु उनको उन फ़्लेक चिन्हों से पृथक करने में सावधानी बरतनी पड़ती है जो बगल से अधूरे ही निकले हैं। शायद इसलिये कि कोर की पूरी लम्बाई से स्पष्टता से निकालने की जगह आधे या चौथाई भाग से अनिच्छा से खींच लिया गया। छिद्रक कहे जाने वाले लघु-पाषाणों को एक पतले ब्लेड के दोनों बगलों से दो तिरछे फ़्लेक निकाल कर बनाया गया है जिससे एक नोक बन जाय। अर्ध-चन्द्राकार (Lunates) सीधे और चन्द्राकार पार्श्व ब्लेड प्रायः सभी उद्योग स्थलों पर बहुतायत से मिले हैं। **त्रिकोण** और **समलंब चतुर्भुजाकार** लघु-पाषाण बहुत कम पाये गये हैं। **अंत-स्क्रेपर, डिस्क स्क्रेपर** और **कोर-स्क्रेपर** त्रिकोणों आदि से अधिक हैं और अधिक स्थानों पर पाये गये हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लघु-पाषाण प्रायः जैस्पर, एजेट, कार्नेलियम, फ़्लिण्ट, चाल्सेडनी, क्वार्टज़ और चर्ट आदि के बनाये गये हैं। और मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार के हैं : **पार्श्व-गढ़ित** और **दन्तुर ब्लेड**, अर्धचन्द्राकार, समलंब चतुर्भुजाकार, त्रिकोणाकार लघु-पाषाण, **चंच्वाकार ग्रेवर, लघु-ब्यूरीन** तथा अन्त एवं पार्श्व स्क्रेपर आदि।

भारतीय **उपखण्ड** (सब-काण्टिनेण्ट) में पेशावर ज़िले के जमालगढ़ी स्थान से तिन्नेवली ज़िले के अनेक स्थानों तक और कराची से लेकर उड़ीसा के सरायकेला क्षेत्र तक के लंबे चौड़े प्रदेश में बहुत-सी जगहों पर लघु-पाषाण पाये गये हैं। अधिकांश लघुपाषाण सतह पर से एकत्र किये गये थे। स्तरीय साक्षियों के अभाव में इन लघु-पाषाणों को मध्य पाषाण काल का कह देना भूल होगी। कई स्थानों पर लघु-पाषाण लौह-युग के महा-पाषाण (मेगालिथिक) स्मारकों के साथ मिले हैं। अन्य कई स्थानों पर लघु-पाषाणों के साथ मिट्टी के बर्तन संबंधित पाये गये हैं जिनकी आयु निश्चित रूप से मालूम है। विभिन्न स्थानों पर मिले लघु-पाषाणों के आकार-प्रकार और निर्माण-प्रविधि तथा उनके विकीरण माध्यमों के सावधानी से अध्ययन करने पर उनमें प्रादेशिक भिन्नता मिलने की संभावना है। इसी के साथ यह भी कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भौगोलिक अवस्थाओं और सांस्कृतिक विकास के विभिन्न स्तरों के साथ संयुक्त उपकरण के रूप लघुपाषाण भिन्न भिन्न कालों में मध्य पाषाण से ऐतिहासिक काल तक इस्तेमाल किये गये थे। लघु पाषाणों की प्रादेशिक भिन्नताओं के सम्बन्ध में ले० टॉड और कर्नल गार्डन के मत उल्लेखनीय हैं। १६३६ ई० में ले० टॉड ने यह मत व्यक्त किया था कि आकार, दशा और पैटिनेशन के आधार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर तटीय प्रदेशों के लघु-पाषाण देश के भीतरी भागों में पाये गये लघु-पाषाणों की अपेक्षा पुराने हैं। और भीतरी भागों में केवल अर्धचन्द्राकार, ब्लेड और कोर ही पाये जाते हैं। कर्नल गार्डन यह तो मानते हैं कि तटीय लघुपाषाण पुराने हो सकते हैं किन्तु वे इनमें और देश के भीतरी भागों में पाये गये लघु-पाषाणों में प्रकार की भिन्नता पाते हैं। तटीय लघु पाषाण उद्योग सादे, कम विकसित और रूक्ष लगते हैं और उपकरण बड़े बड़े हैं, यह कर्नल गार्डन का मत है। वे यह भी कहते हैं कि ब्यूरीन केवल तटीय प्रदेशों में ही मिलते हैं परन्तु सीधे और चन्द्राकार पार्श्वगढ़ित ब्लेड, अर्ध-चन्द्राकार लघुपाषाणादि प्रायः सभी जगहों पर पाये जाते हैं।

सिंगरौली : मिर्जापुर ज़िले का **सिंगरौली क्षेत्र** केवल पुरापाषाण उपकरणों के लिये ही नहीं बल्कि लघु-पाषाणों के लिये भी उल्लेखनीय है। ऊपरी सतह से ४ फी० नीचे पाये गये सिंगरौली लघुपाषाण इस ओर संकेत करते हैं कि पुरापाषाण के बाद यहाँ के नदी-तटों पर लघु-पाषाण उद्योग विकसित हुए थे। शायद इसका कारण बढ़ती हुई शुष्कता थी। इस उद्योग के उपकरण **दुधिया वीन क्वार्ट्ज** (Vein quartz) के बने हैं। कदाचित् इसी कारण उनके निर्माण में सुघड़ता नहीं आ सकी है। बड़ी रोचक और स्मरणीय बात यह है कि पास ही में बादा, बघेलखण्ड और बुन्देल खण्ड से चर्ट और चाल्सेडनी के लघु-पाषाण प्राप्त हुए हैं। श्री कृष्णास्वामी ने सिंगरौली क्षेत्र से ७५ उपकरण पाये हैं। इस मिश्रित लघु-पाषाण उद्योग में मुख्य रूप से **अज्यामितिक** प्रकार के समानान्तर किनारों वाले ब्लेड **अस्त्राग्र** और अर्धचन्द्राकार पाये गये हैं। बहुत कम उपकरण ऐसे हैं जो पूरे गढ़े गये हैं और पुनर्गढ़न तो बहुत कम देखने को मिलता है। सर्वश्री कृष्णास्वामी और सुन्दरराजन का मत यह है कि यह (सिंग-रौली-उद्योग) विकृत उच्च पुरापाषाण ब्लेड **परंपरा**-सी लगती है।[3] मिट्टी के बर्तनों के सम्पर्क से रहित होने के कारण इस तथा-कथित स्तरीय लघु-पाषाण उद्योग के आरंभिक मध्यपाषाण काल के होने की संभावना व्यक्त की गयी है।[4]

सबसे अधिक संख्या **भुथरे पार्श्व ब्लेडों** (Blunted-backed blades) की

---

३. वी० डी० कृष्णस्वामी और के० वी० सुन्दरराजन, १९५१, पार्श्वोद्धरित।

४. वही, पृष्ठ ६०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। इनमें से कुछ पर केवल रूक्ष प्राथमिक **फ़्लेक-चिह्न** हैं जिन पर किसी प्रकार के गढ़न के चिह्न नहीं हैं। यद्यपि शेष भुथरे पार्श्व ब्लेडों में जान-बूझ कर पार्श्व गढ़न कुछ ही में हैं फिर भी इनके कार्यांग काफी **पुनर्गढ़न** (रीटचिंग) के बाद बनाये गये हैं। अधिकांश भुथरे पार्श्व ब्लेडों के किनारे इस्तेमाल करने के कारण **दन्तुर** हो गये प्रतीत होते हैं। समानान्तर किनारों वाले ब्लेडों के दोनों किनारे तेज हैं और बीच में माध्यमिक उभार है। निचला भाग चिपटा प्राथमिक फ़्लेक सतह होता है। अर्धचन्द्राकार लघु-पाषाण (ल्यूनेट्स) **वृत्तखण्ड** (आर्क) तथा **त्रिज्या** (कार्ड) दोनों ही रूपों में पुनर्गढ़न द्वारा भुथरे पार्श्व वाले हैं। कुछ चन्द्राकार रूक्ष हैं और कुछ में अच्छा पुनर्गढ़न देखने को मिलता है। कुछ उपकरण क्लैक्टोनी फ़्लेक के किनारों को गढ़ कर **बादामाकार** अस्त्राग्र बना दिये गये हैं। एक अस्त्राग्र अन्य उपकरणों से बड़ा और भाला-अग्र लगता है। यह **हृदयाकार** है और इस पर चारों ओर **निपीड़ प्रविधि** द्वारा सुन्दर पुनर्गढ़न (द्वितीय फ़्लेकीकरण) किया गया है। यह दो इंच लंबा और दो इंच चौड़ा उपकरण यूरोपीय अंत **एश्यूली** या **आदि मुस्तीरी** हृदयाकार **कू-द-पुआँ** (Cordiform handaxe) सा लगता है। इनके अतिरिक्त कई कोर और फ़्लेक हैं जिनमें से कुछ स्क्रेपर की तरह बनाये गये हैं। कुछ, कदाचित अचानक ही बन गये छिद्रक इस्तेमाल किये गये लगते हैं। दो फ़्लेकों में ग्रेवर या ब्यूरीन मुख की विद्यमानता प्रतीत-सी होती है। इनके अतिरिक्त ब्यूरीन इस (सिंगरौली) उद्योग में अपनी अनुपस्थिति के कारण ही उल्लेखनीय है। कुछ उपकरण **तीर-अग्र** से लगते हैं और उनमें स्कन्ध भी विद्यमान लगता है। कुछ ब्लेड वास्तव में तीर-अग्र की तरह बनाये भी गये हैं।

पिछले दो अध्यायों में हमने देखा था कि नर्मदा घाटी में उच्च वर्ग के स्तरों के द्वितीय **जमाव चक्र** द्वारा जमा किये जाने के बाद प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) समाप्त हो गया। तृतीय जमाव चक्र द्वारा एक नवीन स्तर-शृङ्खला जमा हुई। इसको डी॰ टेरा ने पंचम (पंजाब) **नदी-सोपान** से संबद्ध किया है। इसमें आधार ग्रेवल फ़िलण्ट, चाल्सेड्नी, ट्रैप, स्लेट और क्वार्टजाइट तथा जैस्पर आदि से बना है। इसके ऊपर भूरी (सिल्टी) मिट्टी का स्तर है जिसे "कपास-मिट्टी" कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ विशेष मालूम नहीं है। ऐसा अनुमान है कि जिस समय ये बने होंगे तब वनस्पति आजकल से कहीं अधिक रही होगी। आधारभूत ग्रैवेल और बालू के स्तर से फ़्लेकों का संग्रह प्राप्त हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसमें उपकरण पूर्ववर्ती उपकरणों से सर्वथा भिन्न फ़्लिण्ट या जैस्पर पर बने हैं। इनके निर्माण की प्रविधि भी भिन्न है। इस फ़्लेक उद्योग में बड़े कोरों और हैण्डैक्सों का सर्वथा अभाव है और प्राधान्य स्क्रेपरों और ब्लेड उपकरणों का है। डी० टेरा ने यह मत व्यक्त किया है कि उपर्युक्त लघु-पाषाण उद्योग 'आद्य-नवपाषाण' (प्रोटो नियालिथिक) सा लगता है और हो सकता है कि यह उससे भी बाद का उद्योग हो और हाल में विद्यमान रहा हो।[५]

गुजरात : डी० टेरा के नर्मदा घाटी उद्योग क्षेत्र के पास ही महेश्वर में डॉ० संकालिया ने अध्ययन किया है। वहाँ उन्हें कपास (काली) मिट्टी स्तर के ऊपर १० फी० मोटी परतें जमा मिली हैं जिनमें **उत्तर नवपाषाण** (Chalcolithic) संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। डॉ० संकालिया को महेश्वर के कपास मिट्टी स्तर से कई जैस्पर के स्क्रेपर और ग्रैवेल स्तर से फ़्लेक और कोर मिले हैं। चूँकि महेश्वर की स्तर-श्रृङ्खला नेवासा की स्तर-श्रृंखला के ही समान है, इस कारण महेश्वर के स्क्रेपर, फ़्लेक और कोर हाल के बने नहीं मालूम होते हैं। इसी के आधार पर डॉ० संकालिया डी० टेरा के तृतीय (नर्मदा) वर्ग के फ़्लेक-ब्लेड उद्योग को हाल का नहीं बल्कि काफी पुराना मानते हैं।[६] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नर्मदा कपास-मिट्टी फ़्लेक-ब्लेड उद्योग 'आद्य नवपाषाण' (प्रोटोनियालिथिक) नहीं, वरन प्रकार तथा आयु दोनों में ही 'अपि-पुरापाषाण' (इपी-पैलियालिथिक) सा प्रतीत होता है।

पूरे गुजरात से सैंकड़ों लघुपाषाण सतह पर से एकत्र करके तथा खुदाई करने पर मिले हैं। ये उपकरण साबरमती के किनारे तथा भीतरी भागों की **लोयसी पहाड़ियों** से प्राप्त हुए हैं। ऐसी ही एक पहाड़ी **उद्योग-स्थल** (साइट) लंघनाज़ के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान के लघुपाषाण उद्योग का बहुत महत्व है। डॉ० ज्वाएनर और डॉ० संकालिया द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के आधार पर हम लंघनाज़ लघुपाषाण उद्योग का पृथक विवरण प्रस्तुत करेंगे। इसके पहले साधारण गुजरात लघु-पाषाणों के सम्बन्ध में दो-चार बातें बताना अधिक उपयुक्त होगा।

गुजरात लघुपाषाणों को ज्यामितिक (Geometric) और अज्यामितिक

---

५. डी० टेरा और पैटर्सन, १९३९, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ३२०
६. एच० डी० संकालिया, १९५६, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ ३६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(Non-Geometric) वर्गों में विभाजित करना संभव नहीं है क्योंकि इसकी स्तरीय आधारों पर पुष्टि नहीं की जा सकती है। इसलिये इसको मिश्रित (लघु पाषाण) उद्योग ही कहा जा सकता है। एक शब्द में, उत्तम कोटि के बहुत ही कम लघु-पाषाण पाये गये हैं। अधिकांश केवल प्राथमिक फ़्लेक हैं जिन पर बहुत कम या बिल्कुल ही **द्वितीयक फ़्लेकीकरण** (पुनर्गढ़न) नहीं है। सबसे अधिक संख्या पार्श्व पर गढ़े अर्धचन्द्राकार (Lunets Crescents) लघुपाषाणों की है। चपटे या उभरे पीठ वाले लम्बे या छोटे ब्लेड भी पाये गये हैं। छोटे-छोटे **डिस्क** के समान **गोलाकार या बेलनाकार कोर** भी हैं। स्क्रेपर वर्गाकार या आयताकार तथा गोलाकार हैं। कुछ त्रिकोण, अर्ध-त्रिकोण या समलंब चतुर्भुज आकार के ज्यामितिक लघुपाषाण भी हैं। ब्यूरीन का एकान्त अभाव है और अस्त्राग्र भी बहुत ही कम हैं। संक्षेप में गुजरात लघुपाषाण उद्योग में आयताकार ब्लेड, अर्ध चन्द्राकार ब्लेड, स्क्रेपर, अस्त्राग्र और कोर हैं।[७] गुजरात, विशेष रूप से लंघनाज में लघु-पाषाण ऊपरी ३ फी० तक ही मिट्टी के बर्तनों के साथ पाये गये हैं। मानव खोपड़ियाँ तथा पशुओं के अस्थि-अवशेष **जीवाश्मित** अवस्था में पाये गये हैं। इन प्रमाणों के आधार पर डा० संकालिया गुजरात लघुपाषाणों को बहुत पुराना मानते हैं। शायद यह मध्य पाषाण काल के भी हो सकते हैं।[८]

लंघनाज : १९४२, ४४, ४७ तथा ४९ ई० में डा० संकालिया ने वर्तमान बम्बई राज्य और निकट भविष्य में बनने वाले गुजरात राज्य के मेहसना (Mehsana) जिले के **लंघनाज** की लोयसी पहाड़ी की खुदाई की। इसके परिणाम-स्वरूप उन्हें बहुत से लघुपाषाण, पशुओं के अस्थ्यवशेष तथा ७ मानव अस्थि-पंजर प्राप्त हुए। उन्हें उस स्तर की ठीक-ठीक विशेषता का पता न चल सका। प्रो० ज्वाएनर ने स्तर-शृङ्खला और जलवायु-परिवर्तन के उपयुक्त **न्यासों** (डेटा) से अध्ययन को पूर्ण कर दिया। १९४९ में जब वे भी लंघनाज गये तब कुछ और मानव व मेरुदण्डी पशु अस्थि-अवशेष उन्हें मिले। पहले ऐसा मत व्यक्त किया गया था कि लंघनाज में पालतू पशुओं का बाहुल्य था। डा० ज़्वाएनर ने यह मत व्यक्त किया है कि उपलब्ध पशु वर्गों में **आखेट** योग्य पशुओं का प्रमुख स्थान है। इनमें भारतीय गैंडा, हिरण (Hogdear) जंगली भारतीय भैंसा तथा नीलगाय विशेष उल्लेख-

---

७. एच० डी० संकालिया, १९५१, पाश्र्वोद्धरित, पृष्ठ १३४

८. एच० डी० संकालिया और इरावती कार्वे, १९४९, ऐमेरिकन एन्थ्रोपॉलाजिस्ट, भाग ५१, सं० ४१, पृष्ठ ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीय हैं। कुत्ते जैसे किसी पशु के अवशेषों से पालतू जानवरों की विद्यमानता के भी लक्षण दिखलायी पड़ते हैं। किन्तु आखेट-योग्य पशुओं का प्राधान्य और पालतू जानवरों का लगभग अभाव सा होने के आधार पर प्रो० ज़्वाएनर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि लंघनाज़ के लघुपाषाण लोगों की **अर्थ-व्यवस्था** आखेट-प्रधान रही होगी।[९]

लंघनाज लघुपाषाणों के वर्णन के पहले एक ऐसी रोचक वस्तु के बारे में कुछ बतला देना अधिक उपादेय होगा जिसका लघु-पाषाणों के निर्माण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीत होता है। वह वस्तु ४३ सेण्टीमीटर लम्बी गैंडे के कन्धे की हड्डी (शोल्डर ब्लेड—स्कंधास्थि) है। इस **स्कंधास्थि** की चौड़ी चिपटी पट्टी तो है लेकिन उसके बीचोबीच उभरी हड्डी का टुकड़ा (Spine) नहीं है। जहाँ पर यह 'स्पाइन' जुड़ा रहा होगा, वहाँ १० से २५ सेण्टीमीटर तक चौड़े गड्ढे हैं जो स्पाइन के निकालने के बाद ही बनाये गये होंगे। ये गड्ढे अण्डाकार या गोल हैं और ऐसा लगता है कि ये किसी तेज़ चीज से सभी ओर से हड्डी के ऊपर दबाव डालने से बने हैं। यह स्पष्ट है कि ऐसे निशान हड्डी को काटने या गढ़ने के उद्देश्य से नहीं बनाये गये थे। डा० ज़्वाएनर का ऐसा अनुमान है कि छोटे-छोटे लघु-पाषाण बनाने में अस्थि-निहाई को कई कारणों से अधिक उपयोगी समझा जाता रहा होगा। इसलिए यह कहा जा सकता है कि लंघनाज़ स्कंधास्थि भी लघुपाषाण बनाने में **निहाई** की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा होगा। निशान कोर के तेज किनारे से या निकलने वाले फ़्लेक द्वारा बन जाता होगा। स्कंधास्थि के चौड़े पीठों पर तो निशान हैं ही, उसके किनारों पर भी वैसे ही निशान देखे गये हैं। उस अवस्था में यह स्कंधास्थि बिना किसी सहारे के भूमि पर टिक नहीं सकती है। चूँकि दोनों हाथ फ़्लेकीकरण की क्रिया में बँधे रहते होंगे, इसलिए संभावना यही है कि इस अस्थि-निहाई को पैरों के घुटनों के बीच दबा लिया जाता होगा। कदाचित् इसी उद्देश्य से 'स्पाइन' पहले ही निकाल दिया गया होगा। संक्षेप में प्रो० ज्वाएनर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गैंडा-स्कंधास्थि लंघनाज के लघुपाषाण निर्माताओं द्वारा निहाई के काम में लाया जाता रहा होगा। उस पर के चौड़े गड्ढे ब्लेड बनाने की क्रिया में बने होंगे। अन्य चिन्ह छोटे-छोटे स्क्रेपरों और पार्श्व गढ़े ब्लेडों के

---

९. एफ० ई० ज्वाएनर, १९५२, 'द माइक्रोलिथिक इण्डस्ट्री ऑव लंघनाज़, गुजरात' मैन, भाग ५२, संख्या १८२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ढालुयें पुनर्गढ़न-चिन्ह, लघु-ब्यूरीन, ब्लेडों के दाँत ग्रौर ग्रर्धचन्द्राकारों के गोलाकार पृष्ठ ग्रादि बनाने की 'पुनर्गढ़न' क्रियाग्रों के परिणाम-स्वरूप बने होंगे।

लंघनाज़ के दूसरे टीले की प्रथम ग्रौर द्वीतीय खाइयों (Mound II, Pits I & II) से ही जीवाश्मित (फॉसिलाइज़्ड) हड्डियों के टुकड़े मिले थे। इन्हीं स्थानों से लघुपाषाण मानवों के ग्रस्थि-पंजर भी प्राप्त हुए थे। लघुपाषाण ग्रौर हड्डियों के टुकड़े ऊपरी स्तर से लेकर खाई के तल प्रदेश तक पाये गये। ऐसा ग्रनुमान है कि उपर्युक्त हड्डियों के टुकड़े इच्छापूर्वक बनाये गये लघु-ग्रस्थि उपकरण हैं। पहले चार फी० तक लघुपाषाणों के साथ (मिट्टी) बर्तनों के टुकड़े भी पाये गये हैं। तीन फी० के बाद बर्तनों के टुकड़ों की संख्या बहुत कम हो गई। शायद इसलिए ग्रौर भी ग्रधिक क्योंकि वे धूप में सुखाये गये होने के कारण जल्दी नष्ट होने योग्य हैं। चौथे फी० पर एक हाथ की चक्की भी पायी गयी है। इस नवपाषाण प्रभाव के समय तक कुछ ग्रादिम प्रकार की कृषि की जाने लगी होगी। इस तरह यह कहा जा सकता है कि इन उद्योग-स्थलों पर लघुपाषाण एवं लघुग्रस्थि उपकरण इस्तेमाल करने वाले पुराने लोगों को मिट्टी के बर्तनों ग्रौर कृषि में किसी बाहरी प्रभाव द्वारा शिक्षा दी गयी होगी। इस प्रकार स्थानीय मध्य पाषाण (लघुपाषाण +लघु-ग्रस्थि उपकरण वाले) खाद्य सामग्री एकत्र करने वाले लोग नव-पाषाण खाद्योत्पादक बन गये होंगे—ऐसा ग्रनुमान है।

ऊपर से चौथे फीट के बाद केवल लघु-पाषाण ग्रौर ग्रस्थि-ग्रंश ही पाये गये हैं। गैंडा स्कंधास्थि पाँचवें ग्रौर छठे फी० के बीच से प्राप्त हुई थी। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि लंघनाज़ लघुपाषाण उत्तम प्रकार के नहीं हैं। साबरमती की घाटी में उपलब्ध जैस्पर, चर्ट ग्रौर तीन क्वार्टज़् ग्रादि के उपकरण बनाये गये हैं। चर्ट ग्रौर जैस्पर काफी बेढंगी तरह से टूटते हैं। कदाचित् यही कारण है कि इस उद्योग-स्थल पर ग्रसंख्य ऐसे फ़्लेक बिखरे पाये गये हैं जो कभी उपकरण की तरह काम में नहीं लाये गये होंगे। इसमें बनाने की कला से ग्रधिक खराबी पत्थर में है। कोरों को देखने से पता चलता है कि ऐसे पदार्थों का ग्रच्छा से ग्रच्छा उपयोग करने के लिए **ग्राकस्मिक सोपान-पद प्रविधि** (एक्सीडेण्टल स्टेप फ़्लेकिंग) का सहारा लिया जाता था। जब कभी भी वीन क्वार्ट्ज हाथ लग जाता था तब लंघनाज़ लघुपाषाण निर्माताग्रों की गढ़न-कला चरमोत्कर्ष को पहुँच जाती थी। ऐसा ही २१ मिलीमीटर लंबा एक क्वार्टज़् का टुकड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाया गया जो बड़ी सावधानी से बीच से तोड़ा गया है। **फ्लूटिंग प्रविधि** से इस छोटे से कोर के २० मिलीमीटर लंबे और ४ से ५ मिलीमीटर तक चौड़े एक दूसरे के समानान्तर कम से कम ८ फ़्लेक ब्लेड निकाले गये प्रतीत होते हैं। प्रो० ज्वाएनर के मत में यह लघुपाषाण फ़्लेकीकरण का सर्वाधिक विकसित और उत्तम नमूना है।

कुछ कोर मोटे फ़्लेकों से बनाये गये हैं। चतुर्दिक आघात इस तथ्य के प्रतीक हैं कि एक फ़्लेक-चिन्ह को दूसरे फ़्लेक के लिए संघात-स्थल की तरह काम में लाया जाता था। अर्ध-चन्द्राकार लघु-पाषाणों (ल्यूनेट्स) की संख्या सबसे अधिक है। इनके पृष्ठ वृत्त खण्ड (आर्क) के आकार के हैं। कुछ अर्ध चन्द्राकारों के एक छोर नुकीले हैं। अतः उनको अस्त्राग्र भी कहा जा सकता है: कोर और फ़्लेक दोनों ही स्क्रेपर की तरह गढ़े मिलते हैं। पार्श्व गढ़े ब्लेडों की संख्या अति न्यून है। उपर्युक्त अर्ध चन्द्राकार अस्त्राग्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लघुपाषाण हैं जो मोटे फ़्लेकों में एक किनारे को एक ओर ही पार्श्व गढ़ित करके तेज़ नोक बना दी गयी है। इनको डा० ज़्वाएनर ने **असंमितीय** अस्त्राग्र (एसिमेट्रिकल प्वाइंट) नाम दिया है। वे ऐसे लघुपाषाण अस्त्राग्रों को तीर अग्र (एरो हेड) मानते हैं।

मैसूर : १९४७ ई० में भारत के पुरातत्त्व सर्वेक्षण (The Archaeological Survey of India) के तत्कालीन प्रधान संचालक, सर मॉर्टिमर व्हीलर, के नेतृत्व में मैसूर राज्य के चित्तल दुर्ग जिले के ब्रह्मगिरि (इसिला) उपनगर की एक पहाड़ी के नीचे खुदाई की गयी। इसके परिणाम-स्वरूप दक्षिण भारत की **आद्य-ऐतिहासिक** (प्रोटो हिस्टारिक) संस्कृति शृंखला पर एक नवीन प्रकाश पड़ा। यह याद रखने योग्य ऐतिहासिक तथ्य है कि १९४० ई० में ही मैसूर राज्य के पुरातत्वविद् डा० एम० एच० कृष्ण ने इस क्षेत्र का विस्तृत भौगोलिक सर्वेक्षण किया था। इस प्रदेश के पुरातात्त्विक महत्त्व को सर्वप्रथम खोज निकालने का श्रेय भी उन्हीं को है। १९४२ ई० में उन्होंने (डा० कृष्ण) ब्रह्मगिरि में खुदाई भी करायी थी। सर मार्टिमर ने ब्रह्मगिरि की खुदाई के बाद वहाँ पर जो संस्कृति-अनुक्रम (कल्चर-सीक्वेस) निर्धारित किया है, वह निम्नलिखित है: सबसे ऊपर सतह तक आता हुआ, ढाई से साढ़े तीन फी० स्तरों से जिस ऐतिहासिक (तृतीय) संस्कृति के अवशेष मिले हैं उसे 'आन्ध्र संस्कृति' का नाम दिया गया है। इसके नीचे द्वितीय संस्कृति लौह-युग के अन्त्येष्ठि स्मारक निर्माताओं द्वारा बनायी गयी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। यह आन्ध्र संस्कृति के नीचे तीन-चार फी० तक के स्तरों से मिली है। स्थानीय महापाषाण मकबरों के समान होने के कारण इस (द्वितीय) ब्रह्मगिरि संस्कृति को महापाषाण संस्कृति (The Megalithic Culture) कहा गया है। इसके बाद ऊपरी सतह से ६ फी० की गहराई तक तृतीय संस्कृति के अवशेष मिले हैं। इस संस्कृति की विशेषता **पालिशकृत प्रस्तर कुठारों** और तत्सम्बन्धित लघुपाषाणों के कारण है। वैसे तो मुख्य रूप से यह नव-पाषाण (कुठार) लघुपाषाण संस्कृति है किन्तु एक ताँबे और एक काँसे की छड़ों और एक ताँबे की रुखानी के आधार पर धातुओं के उपयोग की ओर संकेत मिलता है। भूरे रंग के मिट्टी के बर्तन भी पाये गये हैं। सर मॉर्टिमर ने इसको ब्रह्मगिरि प्रस्तर कुठार संस्कृति (The Brahmagiri Stone axe Culture) नामकरण किया है। इसके दो उपविभाग किये गये हैं। पुराने अर्धांश को IA और उससे नये अर्धांश को IB कहा गया है।

डा० व्हीलर का यह मत है कि उपरिवर्णित तीनों संस्कृतियों के दूसरे से सम्बद्ध होने के प्रमाण उन दो स्तरों के संगमों में प्राप्त मिश्रित संस्कृतियों में उपलब्ध होते हैं जो दो विशिष्ट संस्कृतियों की जननी कही जा सकती है। इस प्रकार एक के बाद एक आने वाले अंशों के रूप में यह क्षेत्र प्रथम से तृतीय संस्कृति अवधियों तक लगातार उपनिवेशित रहा। इस प्रकार उनकी कार्यविधि भी सम्बन्धित ही होनी चाहिए। सर मॉर्टिमर के अनुसार **आन्ध्र-संस्कृति** पहली ई० सदी के मध्य में आरंभ होकर तीसरी (ईस्वी) सदी तक चलती रही थी। महापाषाण (मेगालिथिक) संस्कृति पहली सदी के मध्य में समाप्त हुई और लगभग दूसरी सदी ईसापूर्व में आरंभ हुई थी। ब्रह्मगिरि प्रस्तर कुठार संस्कृति के बारे में अनुमान है कि वह लगभग एक सहस्र वर्ष ईसा पूर्व में आरंभ होकर उप-संस्कृतियों के रूप में महापाषाण संस्कृति के काल में भी चलती रही थी।

ब्रह्मगिरि : ब्रह्मगिरि प्रस्तर कुठार संस्कृति में पाये लघु-पाषाणों से भिन्न, नव पाषाणों से रहित और असंबद्ध एक ब्रह्मगिरि लघु-पाषाण उद्योग की कल्पना की गयी है। ह्वीलर के ब्रह्मगिरि अनुक्रम के आधार पर उसे ब्रह्मगिरि प्राक I उद्योग नाम दिया गया है। ये लघु-पाषाण किसी स्तर से नहीं पाये गये हैं बल्कि उन्हें भूमि सतह पर से एकत्र किया गया है। इनमें अर्ध चन्द्राकार अथवा ब्यूरीन नहीं हैं। यह ब्रह्मगिरि प्रस्तर कुठार संस्कृति के लघु-पाषाणों से पृथक है और संगनकल्लू के प्रथम निवास काल (Phase I) से मिलता-जुलता सा लगता है। जहाँ अर्ध चन्द्राकार और तीर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्र जैसे **आखेट उपकरणों** का अभाव है वहाँ पार्श्व गढ़े और दन्तुर-ब्लेड इस उद्योग के विशेष उपकरण हैं। श्री एम० शेशाद्रि ने इन दो लघु-पाषाण उद्योगों—ब्रह्मगिरि प्रस्तर कुठार और ब्रह्मगिरि प्राक I से भी पुराने लघुपाषाण उद्योग की विद्यमानता के प्रमाण पाये हैं। इसे वे जलहल्लि आखेट प्रकार (Jalahalli hunting Type) कहते हैं। ५ फीट मोटी काली मिट्टी के स्तरों के नीचे ग्रेनाइट-चट्टानों की आधार शिला पर पाय गये इस उद्योग के उपकरण ब्रह्मगिरि प्राक I उद्योग से पहले के हैं। बहुत संभावना है कि वे मध्यपाषाण काल के होंगे।

तिन्नेवली : ब्रूसफ़ूट के समय से ही मद्रास राज्य के तिन्नेवली (Tinnevelly) जिला अपने लघु-पाषाणों के लिए उल्लेखनीय रहा है। हाल में जो काम हुए हैं उनसे इस क्षेत्र का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। यहाँ लघु-पाषाण आधुनिक लाल और जमे हुए (फासिल) बालु टीलों से प्राप्त हुए हैं। इन बालु-टीलों को स्थानीय भाषा में टेरी (Teris) कहा जाता है। इसी कारण प्रो० ज़्वाएनर इसको तिनेवली टेरी (लघु पाषाण) उद्योग कहना उचित समझते हैं। डॉ० ऐयप्पन (A. Aiyappan) ने इस जिले के सव्येरपुरम (Sawyerpuram) नामक स्थान के टेरी लघु-पाषाणों का अध्ययन १९४२ ई० में किया था। उनका यह मत है कि सव्येरपुरम् के लघु-पाषाण टेरी (बालु-टीलों) के जमा होने के समय ही बनाये गये होंगे। इस प्रकार उन्हें मध्यपाषाणकाल के होने की संभावना है। सबसे निकट नव पाषाण उद्योग स्थल कृष्णा नदी की घाटी में है और सव्येपुरम् से दूर है। नव-पाषाण प्रभाव से रहित होने के सम्बन्ध में डा० ऐयप्पन की व्याख्या यह है कि टेरी मध्य पाषाण मानव ने नव-पाषाण काल के बहुत पहले ही अपना निवास स्थान छोड़ दिया होगा।

१९४९ ई० में प्रो० ज़्वाएनर तिनेवली भी गये थे। वहाँ उन्होंने तूतिकोरिन (Tuticorin) और तिरूचेन्दूर (Tiruchendur) इन दो तालूकों में ११ लघुपाषाण उद्योग-स्थलों का सविस्तार अध्ययन किया जिनमें सव्येपुरम् भी सम्मिलित था। तूतिकोरिन के समुद्र तट पर आजकल जो भौतात्त्विक क्रिया हो रही है उसको समझना डा० ज़्वायनर आवश्यक मानते हैं। मुख्य तट रेखा से दो मी० की दूरी पर एक बाहरी बाड़ सा बन गया है। इस बाड़ और तट-रेखा के बीच का क्षेत्र छिछली झील में बदल गया। इसमें मूंगे का बालू और समुद्री जीवों के हड्डियों के टुकड़े जमा होते रहते हैं। तूतिकोरिन की खाड़ी पर तटरेखा और बाहरी बाड़ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बीच की छिछली झील अब तक प्रायः भर-सी गयी है। उसके ऊपर हवा अन्य स्थानों से उड़ा कर लाये हुए पदार्थों से टीले बना रही है। तूतिकोरिन के पश्चिम भीतर की ओर बालू की खाइयों में भी कुछ ऐसा ही दृश्य देखने को मिलता है। उनमें आधुनिक से पहले की चूना मिली हुई परतें हैं जिनकी उत्पत्ति सामुद्रीय सी लगती है। इसके नीचे क्वार्टज़् वालू और चूने के ढोकों का स्तर है जो समुद्री जीवों के अवयवों से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। ये दोनों बालु-स्तर जमे हुए समुद्री किनारे हैं जो तटीय बालू के टीलों से ढके हुए हैं। ये उन्हीं छिछली झील प्रक्रियाओं द्वारा बने मालूम होते हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। तूतिकोरिन से भीतर की ओर बढ़ते जाने पर क्रमशः अधिक पुरानी छिछली झी० की सतहें मिलती जाती हैं। उनकी स्तर-शृङ्खला बहुत कुछ उसी प्रकार है जैसी हमें तूतिकोरिन के ढाई मील पश्चिम से थोड़ी दूर पर देखने को मिलती है। वहाँ बालू के टीले जंगलों से ढँके और परिपक्व बनने की दिशा में आमुख हैं। इसमें ऊपरी दो फी० तो श्वेत A सतह है और उसके नीचे लाल रंग की जमी हुई B सतह हैं। और भीतरी भागों में भी अनुक्रम ऐसा ही है। अंतर केवल इतना है कि कहीं-कहीं बनों के कट जाने के कारण पूरी की पूरी A सतह हवा द्वारा उड़ा दी गयी है और B सतह उभर आयी है।[१०]

ऊपर के वर्णन से हमें ज्ञात हुआ है कि तट से भीतर की ओर के क्षेत्रों में छिछली झील और बालू के टीले आज से बहुत पहले बन गये थे। वह काल **वायु-क्रिया** का रहा होगा क्योंकि तभी तो बालू के टीले जमा किये गये होंगे। उसके बाद की परिस्थिति में भूमिक जमी (जीवाश्मित हुई) और यह काम रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा हुआ जिन्हें अंगरेज़ी भाषा में वेदरिंग (Weathering) कहा जाता है। इसके बाद एक बार फिर वायु-क्रिया का काल आया होगा। इसके परिणाम-स्वरूप आजकल की भरी हुई छिछली झीलें **अर्ध-आधुनिक** (सब-रीसेन्ट) काल में बनी होंगी। डॉ० ज्वाएनर का मत है कि पहली और दूसरी वायु-क्रिया कालों के बीच में रासायनिक क्रिया (वेदरिंग) की अवधि में समुद्र की सतह २० फीट नीचे

---

१०. फ्रेडेरिक ई० ज्वायनर और ब्रिजेट अल्विन, १९५६, 'द माइक्रॉलिथिक साइट्स ऑव तिनेवली डिस्ट्रिक्ट, मद्रास स्टेट', एन्शियन्ट इण्डिया, नं० १२, पृष्ठ ५-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उतर आयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि लघु-पाषाण उद्योग-स्थल (साइट्स) प्रथम **वायु-क्रिया** (विण्ड-एक्टिविटी) द्वारा, रासायनिक क्रिया (वेदरिंग) के पहले बने थे और उस समय समुद्र की सतह आज की अपेक्षा २० से ३० फी० अधिक ऊँची थी। समुद्र तटों के आयु निर्धारण का काम काफी कठिन है। इसमें कई संभावनाएँ हो सकती हैं। पहली संभावना के अनुसार टेरी लघुपाषाण उद्योग अन्तिम **हिम प्रत्यावर्तन** (लास्ट-इण्टर-ग्लेशियल) काल का हो सकता है। डा० ज़्वाएनर का मत है कि निर्मित भूमि इतनी परिपक्व नहीं है कि इस प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। दूसरे अनुमान के अनुसार इसका कार्यकाल अन्तिम हिमावर्तन का प्रथम लघु-हिम-प्रत्यावर्तन (फर्स्ट इण्टर स्टेडियल ऑव् द लास्ट ग्लेशियेशन्) रहा है। पहले अनुमान की अपेक्षा अधिक संभव होने पर भी इसकी पुष्टि के लिए और अधिक भौतात्त्विक साक्षियों की आवश्यकता है। सर्वाधिक संभाव्य संभावना के अनुसार तिनेवली टेरी लघु पाषाण उद्योग भौतात्विक आधुनिक में अन्त अन्तलान्तिक समय में आज से लगभग ६००० वर्ष पहले बना होगा। यह मत व्यक्त करते समय प्रो० ज़्वाएनर ने यह स्वीकार किया है कि भावी भौतात्विक शोधों के परिणाम-स्वरूप इसका प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन्) काल में निर्मित होना भी सिद्ध हो सकता है।[११]

मद्रास राज्य के तिनेवली जिले के तामिलनाड तट पर प्राप्त साक्षियों के आधार पर प्रो० ज़्वाएनर ने तीन उद्योगों के निम्नलिखित अनुक्रम (सीक्वेन्स) में विद्यमान होने की संभावना व्यक्त की है:[१२] सबसे पहले फ़्लेक और कोर-उपकरणों वाला आदि (मेग्नापुरम्) टेरी उद्योग। उसके बाद पहले के ही समान किन्तु ज्यामितिक लघु-पाषाणों और ब्लेडों से युक्त मुख्य टेरी उद्योग का आगमन हुआ जिसे ज़्वाएनर ने तिनेवली टेरी उद्योग कहा है उसमें यही दोनों सम्मिलित किये जाने चाहिए। अंत में (नव पाषाण) प्रस्तर कुठार और मिट्टी के बर्तनों से युक्त एक नव पाषाण ब्लेड उद्योग की विद्यमानता कल्पनीय है। उपलब्ध साक्षियों के आधार पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि तिनेवली टेरी (लघु पाषाण) उद्योग के निर्माता शिकारी या मछली मारने वाले लोग थे। जो समुद्र-तट पर या उसके निकट अस्थायी पड़ाव डाल लेते थे। मिट्टी के बर्तन और प्रस्तर

---

११. वही, पृष्ठ ८
१२. वही, पृष्ठ २०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुठारों से रहित इस उद्योग के उपकरण पदार्थ और प्रकार दोनों ही में और उत्तर में प्रस्तर कुठारयुक्त नवपाषाण और उत्तर-नवपाषाण संस्कृतियाँ उपकरणों से मिलते-जुलते हैं। तिनेवली टेरी (लघु-पाषाण) उद्योग उनसे कहीं पुराना है और उस क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति के आगमन के बहुत पहले विद्यमान था।

मेग्नानपुरम (Megnanapuram) उपकरण अन्य सभी स्थानों पर पाये गये टेरी उपकरणों से पुराने हैं। यहाँ पर सभी प्रकार के अस्त्राग्रों (प्वाइंट्स) ब्लेडों और ज्यामितिक प्रकारों का अभाव है। इन्हीं मुख्य उपकरणों में क्वार्टज **पेबुल** का एक बेलनाकार हथौड़ा, सैकड़ों फ़्लेक और उनके टूटे हुए टुकड़े, एकतल और द्वितल डिस्काकार कोर, एक **चॉपिंगुपकरण,** एक फ़्लेक पर बना **नतोदर** (कान्केव) **स्क्रेपर** आदि हैं। इस आदि टेरी उद्योग के उपकरण भी गहरे लाल रंग से रंगे हैं। सब्येरपुरम् वर्ग के उद्योगों से इसकी वार वारता उस उद्योग में पाये गये डिस्काकार और चॉपिंगुपकरणों के कारण सिद्ध होती है।

ऊपर वर्णित (मेग्नानपुरम्) उद्योग-स्थल को छोड शेष सभी उद्योग स्थलों के उपकरण एक ही औद्योगिक परंपरा द्वारा बनाये गये मालूम होते हैं। ज़्वाए-नर तो उनको एक ही उद्योग के अंग मानते हैं। इस मुख्य टेरी उद्योग के उपकरण रासायनिक प्रक्रिया द्वारा लाल रंग में रंगे हुए हैं। उपकरण बनाने के लिये चर्ट और क्वार्ट्ज लगभग बराबर मात्रा में काम में लाये गये हैं। अन्य उत्तम प्रकार के सिलिका पदार्थों की उपलब्धि पर भी क्वार्टज क्यों इस्तेमाल किया गया यह अभी भी रहस्य ही है। इसके इस्तेमाल का प्रभाव उपकरणों के प्रकार और उत्तमता पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। तिनेवली के ब्लेड-उपकरण मध्य-भारत तथा उत्तर पश्चिम भारत में पाये गये ब्लेडों की तुलना में बहुत ही अनुत्तम है। कदाचित् इसका कारण यह रहा हो कि क्वार्टज़ इस्तेमाल करने के फलस्वरूप फ़्लेकीकरण के पहले कोरों को सावधानी से गढ़ना तथा पतले-लम्बे ब्लेड निकालना संभव नहीं था। मेग्ना-नपुरम् उपकरणों के समान ही सब्येरपुरम् उद्योग में भी डिस्काकार और चॉपिंगुपकरण पाये गये हैं। इस मुख्य टेरी उद्योग की विशेषता इसके विभिन्न प्रकार के अस्त्राग्रों तथा फ़्लेक और ब्लेड दोनों ही पर बनाये गये ज्यामितिक लघु-पाषाणों तथा स्क्रेपरों के कारण हैं। यह तो ऊपर बताया ही जा चुका है कि ब्लेड पतले लंबे न होकर छोटे और मोटे हैं किन्तु इस उद्योग के सबसे विशिष्ट पदार्थ दोनों तलों पर **निपीड़ (दबाव) प्रविधि**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा फ्लेकीकृत उपकरण हैं। प्रो० ज्वायनर के अनुसार निपीड़ (दबाव) प्रविधि द्वारा बनाये गये ये पहले भारतीय उपकरण कहे जा सकते हैं।[१३]

बीरभानपुर : १९५४ ई० में श्री बी० बी० लाल[१४] को पश्चिम बंगाल के बर्दवान जिले में एक नये लघुपाषाण उद्योग-स्थल का पता चला। दुर्गापुर रेलवे स्टेशन से एक सड़क बीरभानपुर गाँव को जाती है जो दामोदर नदी के बायें तट पर बसा हुआ है। चूंकि लघु-पाषाण उद्योग-स्थल (माइक्रालिथिक साइट) बीरभानपुर मालगुजारी क्षेत्र में है, इसलिये श्री लाल ने इसको बीरभानपुर लघुपाषाण उद्योग (Birbhanpur Microlithic Industry) नाम दिया है। उस नदी क्षेत्र में दो नदी-सोपानों की साक्षियाँ मिली हैं। श्री लाल का यह मत है कि ये नदी-सोपान उस क्षेत्र में दामोदर नदी-सोपान शृंखला की दो अंतिम कड़ियाँ हैं। इस सोपान-शृंखला के अन्य आरंभिक कड़ियों की विद्यमानता के सम्बन्ध में वे आशान्वित हैं। बीरभानपुर के पास दामोदर नदी का तल समुद्र की औसत सतह से १९३ फी० ऊँचा है। नदी में पानी की सबसे कम ऊँचाई १९६ फी० और सबसे अधिक ऊँचाई २१० फी० तक चली जाती है। बीरभानपुर का कुछ भाग अंतिम नदी-सोपान (TN) पर स्थित है। इस सोपान की सतह २२० फी० से २२६ फी० तक की ऊँचाई तक है। इस सोपान के साथ लघुपाषाण संबद्ध नहीं मिलते हैं। इसके ऊपर के उपांतिम् (TN-I) नदी-सोपान की नदी की ओर दक्षिण में सबसे कम ऊँचाई २३० फी० और नदी से दूर उत्तर में सबसे अधिक ऊँचाई (समुद्र की औसत सतह से) २७८ फी० है। इस नदी-सोपान के सबसे ऊँचे और सबसे नीचे सतहों में इनका अधिक अंतर आधार-चट्टान शिला के ढालुवाँ होने के कारण है। **उपांतिम** (TN-I) नदी-सोपान की ऊपरी दो-ढाई फी० परतें बालुई मिट्टी की बनी हैं जो शायद अर्ध-शुष्क अवस्थाओं में जमा हुयी होंगी। इसके नीचे की चितकबरी सिल्टी बालू की सतह कहीं-कहीं १० फी० मोटी है। इसी चितकबरी सिल्टी बालू की ऊपरी डेढ़ फी० में ही बीरभानपुर लघु-पाषाण पाये गये थे।

बीरभानपुर लघु-पाषाण उद्योग के उपकरण उपांतिम दामोदर नदी-सोपान में खोदी गयी दो खाइयों से प्राप्त हुए थे। खाई नं० १ जो औसत समुद्र-सतह से २३० फी० ऊँची है, १९५४ में खोदी गयी थी।

---

१३. वही, पृष्ठ १९

१४. बी० बी० लाल, १९५८, 'बीरभानपुर' ए माइक्रॉलिथिक साइट दामोदर वैली, वेस्ट बेंगॉल, एन्शियन्ट इण्डिया नं० १४, पृष्ठ ४-४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१९५७ में खोदी गयी खायी नं० २ औसत समुद्र सतह से २६६ फी० की ऊँचाई पर है। पूरी दामोदर नदी-सोपान शृंखला के बारे में नहीं मालूम होने के कारण अंतिम-उपांतिम नदी-सोपानों की आयु के सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है। चूंकि अन्तिम नदी-सोपान (TN) नदी की सतह से केवल २५ फी० ऊँचा है। इसलिये इसका भौतात्त्विक आधुनिक (होलोसीन्) काल में बना होना प्रायः निश्चित्-सा है। इस आधार पर ही क्या उपांतिम सोपान (TN-I) को भी उत्तर-प्रातिनूतन (पोस्ट-प्लाइस्टोसीन्) कहा जा सकता है? यह नदी-सोपान एकाध स्थानों पर तो नदी की सतह से ७५ फीट ऊँचा है और उसकी औसत ऊँचाई ५० फी० से कम नहीं है। **उपकरण-युक्त स्तर** के ठीक ऊपर वाले स्तर के **वृष्ट्यावर्तन** (प्लूवियल्) के गर्म किंतु आर्द्र अवस्था में बने होने की संभावना है। श्री लाल का अनुमान है[१५] कि इस स्तर का निर्माण प्रातिनूतन काल के अंतिम वृष्ट्यावर्तन काल में हुआ होगा। इस प्रकार कुछ कम गर्म और शुष्क जलवायु में बने उपकरण-युक्त स्तर की निर्माण-अवधि भौतात्विक आधुनिक (होलोसीन) का आरंभ रहा होगा। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि बीरभानपुर लघु-पाषाण उद्योग भौतात्विक आधुनिक के आरंभ में ही अंकुरित और पल्लवित हुआ था। हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर ऐसा कोई भी निर्णय स्थायी नहीं केवल परीक्षणीय ही माना जाना चाहिये।

उस क्षेत्र क्वार्टज़ और चट्टान-खो (Rock-crystals) के पेबुल आसानी से उपलब्ध थे इसी कारण लघु-पाषाण मानव ने बीरभानपुर में इनका अधिक उपयोग किया है। पूरे योग के ६८·७% क्वार्टज़ और १६·१% चट्टान-खों इस्तेमाल किये गये हैं। ९·३% सामग्री चर्ट और ४·६% चाल्सेडनी हैं। शेष मात्रा **क्वार्टजाइट, बसाल्ट** और **जीवाश्मित काष्ठ** (फ़ासिल-वुड) की है। क्वार्टज़ और चट्टान-खो के अतिरिक्त चर्ट, चाल्सेडनी, क्वार्टजाइट और बसाल्ट भी स्थानीय रूप से प्राप्य है किन्तु जीवाश्मित काष्ठ कहाँ से पाया गया यह नहीं पता। यह उल्लेखनीय है कि **छिद्रक** (बोरर) और ब्यूरीन बनाने के लिये चर्ट और चाल्सेडनी की अपेक्षा क्वार्टज़ और चट्टान-खो अधिक पसन्द किये जाते थे। अन्य किसी उपकरण के बारे में यह कहा नहीं जा सकता।

बीरभानपुर लघु-पाषाण उद्योग की एक विशेषता यह है कि इसके

---

१५. वही, पृष्ठ ३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपकरणों के साथ मिट्टी के बर्तन नहीं पाये गये हैं। यह अचानक ही नहीं हो गया है। भौतात्विक स्तरों में पाया गया यह लघु-पाषाण उस समय विद्यमान रहा होगा जब मिट्टी के बर्तन बनाये ही नहीं जाते होंगे। बालुई मिट्टी का वह स्तर जिसके नीचे वाले स्तर में लघु-पाषाण पाये गये, भी मिट्टी के बर्तनों के अभाव के लिये उल्लेखनीय है। इन तथ्यों के प्रकाश में सतह पर लघु-पाषाणों और मिट्टी के बर्तनों के साथ पाये जाने मात्र से उनका समकालीन होना नहीं सिद्ध हो जाता है।

सतह पर एकत्र किये गये उपकरणों में बहुत अधिक संख्या ब्लेडों, अर्ध-चन्द्राकारों, छिद्रकों, स्क्रेपरों, ब्यूरीनों और अस्त्राग्रों की है। केवल एक समलंब चतुर्भुजाकार (ट्रेपीज़) और एक **संदिग्ध त्रिकोणाकार** लघु-पाषाण पाय गये हैं। यह ध्यान रखने योग्य है कि खुदी हुई खाइयों के स्तरों में एक भी समलंब चतुर्भुज या त्रिकोण नहीं पाया गया। इससे स्पष्ट है कि ये बीरभानपुर लघु-पाषाण उद्योग के मुख्य अंग नहीं कहे जा सकते। जब तक अन्य सूचना उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक इसे सारभूत रूप से अज्यामितिक (नान-ज्यामिट्रिक) उद्योग ही कहा जा सकता है। ऐसी कल्पना की जाती है कि लघु-पाषाण उद्योगों में ज्यामितिक प्रकारों का आगमन बाद में हुआ। इसके आधारभूत अवस्था में समलंब चतुर्भुजों और त्रिकोणों से रहित और ब्लेडों, स्क्रेपरों, ब्यूरीनों, छिद्रकों और अर्धचन्द्राकारों से युक्त 'ब्लेड एवं ब्यूरीन' उद्योग का होना एक संबद्ध कल्पना मानी जानी चाहिये। श्री लाल का मत है कि सारभूत रूप से प्राक् मिट्टी-बर्तन और अज्यामितिक बीरभानपुर लघु-पाषाण उद्योग का आगमन बहुत पहले हुआ होगा, कदाचित् उसी समय जब ब्लेड और ब्यूरीन उद्योग से लघु-पाषाण प्रकार उद्भूत हो रहे थे। इस प्रकार बीरभानपुर लघु-पाषाण उद्योग की आयु के सम्बन्ध में आरंभ में ही हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचे थे उसका आधार भौतात्विक प्रमाण थे। किंतु इसी पैराग्राफ में ही प्रस्तुत उपकरण-प्रकार की साक्षियाँ भी उस निष्कर्ष का अनुमोदन ही करती हैं।

अब हम कुछ उन प्रस्तर-उद्योगों का वर्णन करेंगे जो आयु-निर्माण वैशिष्ट्य और संपर्क में उन उद्योगों से भिन्न हैं जिन्हें हम लघु-पाषाण कह कर पुकारने के अभ्यस्त हैं। भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में पाये जाने वाले उद्योगों की अवधि में नागरिक-जीवन का आरंभ हो रहा था। इस कारण उनको आद्य-नव-पाषाण उद्योग (प्रोटो-नियालिथिक उद्योग) केवल सुविधा के लिये कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निम्न सिंधु घाटी में सक्खर (Sukkur) और रोहरी (Rohri) नामक स्थानों में १८६६ ई० में ही इवान्स (Evans) को पत्थर (फ़्लिण्ट) के उपकरण मिले थे। इसके मुख्य उपकरण वे पतले ब्लेड, और पतले **शंक्वाकार** कोर हैं जो मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा के पत्थर उपकरणों से मिलते-जुलते हैं। १९३७ ई० में ड्रुमण्ड और पैटर्सन ने इन उपकरणों को लघु-पाषाण नहीं बल्कि आद्य-नव पाषाण का बताया, ऐसा लगता है कि आगे होने वाले शोधों से जब हड़प्पा-सभ्यता के उद्भव के और सूत्र पता चलेंगे तब शायद उस सभ्यता के जन्मदाता प्रस्तर-उपकरण उद्योगों में सक्खर और रोहरी का भी स्थान होगा। यद्यपि सक्खर और रोहरी पास-पास ही स्थित हैं लेकिन रोहरी उद्योग सक्खर उद्योग के बाद के अंश के समान लगता है। इस पूरे आद्य-नवपाषाण उद्योग में फ़्लेक, ब्लेड और शंक्वाकार कोर ही पाये गये हैं। पैटिनेशन के आधार पर सक्खर आद्यनवपाषाण उद्योग को A, B और C तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ब्लेड सबसे अधिक A श्रेणी में पाये गये हैं। B और C में उनकी संख्या क्रमशः कम होती जाती है। फ़्लेक और कोर A से C श्रेणी की ओर उद्विकसित होते पाये जाते हैं। B श्रेणी में ओवेट हैण्डैक्स और लेवलायज फ़्लेकीकरण की विद्यमानता पायी गयी है। उपकरण प्रकार और निर्माण वैशिष्ट्य के आधार पर तो यह उद्योग पुरा-पाषाण (पैलियॉलिथिक) सा लगता है। श्री पैटर्सन इसको बहुत बाद का मानते हैं क्योंकि उनके मतानुसार किसी भी एक पुरापाषाण उद्योग में उन विभिन्न प्रकार के उपकरण-निर्माण प्रविधियों का संयोग नहीं मिलता है जो सक्खर रोहरी उद्योग में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके उपकरणों के किसी प्राक्-मोहन-जोदड़ो प्रस्तर-उपकरण उद्योग से संबद्ध होने की कल्पना की जाती है।

श्रीनगर के पास पामपुर (Pampur) और साम्बर (Sombur) में क्रिस्टाफ़र और जे० हाक्स् (Ch. and J. Hawks) ने १९३२ ई० में कुछ उपकरण पाये थे। उनके अनुसार ये उपकरण मध्य-पुरापाषाण थे। १९३५ ई० में डी टेरा ने इन उपकरणों को पंचम (झेलम) नदी-सोपान का बताया। इस प्रकार ये उपकरण पुरापाषाण के बाद (पोस्ट-पैलियालिथिक) के हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह पुरा-पाषाण **सोहन-उद्योग** का अवशेष है। सांबर में उपकरणों के साथ मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों के पाये जाने के आधार पर इस उद्योग को आद्य-नवपाषाण (प्रोटो-नियॉलिथिक) कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १३

भारतीय 'नवपाषाण' प्रतिमान

पिछले संवद्ध अध्याय में हम बतला चुके हैं कि नवपाषाण की परिभाषा अब प्रस्तर उपकरणों के प्रकार और निर्माण-वैशिष्टच के आधार पर नहीं दी जाती। नवपाषाण (नियालिथिक) से तात्पर्य उस पाषाणयुगीन संस्कृति से है जिसमें केवल **खाद्य-एकत्रण** (फूड-गैदरिंग) के स्थान पर समझ-बूझ कर **खाद्योत्पादन** (फूड-प्रोडक्शन) किया गया हो या पशु-पालन होता हो। पत्थर के चिकनाये उपकरण (नवपाषाण सेल्ट) और मिट्टी के पकाये बर्तन, जो एक समय नवपाषाण के असंदिग्ध निर्णायक लक्षण समझे जाते थे, अब उसके संवद्ध द्वितीयक लक्षण माने जाते हैं। भारतीय प्रागितिहास में हमें प्राथमिक (मुख्य) नवपाषाण लक्षणों--समझ-बूझ कर खाद्योत्पादन तथा पशु-पालन--के संबंध में लगभग कुछ भी नहीं मालूम है। इसलिये हम प्रमुख द्वितीयक लक्षण (सेल्ट) के आधार पर ही भारतीय **नवपाषाण प्रतिमान** (इण्डियन नियालिथिक पैटर्न) का चित्र प्रस्तुत करेंगे। सेल्टों की तुलना में मिट्टी के बर्तनों का स्थान गौण माना जायगा।

पुरापाषाण उपकरणों की तरह भारत के प्रथम नवपाषाण उपकरण भी उन्नीसवीं शताब्दी में पाये गये थे। एच० पी० ल मेस्यूरिएर् (H.P. Le Mesurier) ने वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य में पूर्वी टोंस नदी की घाटी में पहला **'नवपाषाण'** (नियालिथ) १८६० ई० में पाया था। उसके बाद लगभग अस्सी वर्षों तक देश के विभिन्न भागों की भूमि-सतहों से बहुत से 'नवपाषाण' उपकरण एकत्र किये गये। १९३९ ई० में डी टेरा ने कश्मीर में खुदाई करने पर निकले 'नवपाषाण' प्रस्तुत किये। १९४२ ई० में डॉ० एम० एच० कृष्ण ने मैसूर के 'नवपाषाण' उद्योग का भौतात्त्विक एवं पुरातात्त्विक महत्व सबसे पहले बतलाया। सर मार्टिमर ह्वीलर (Sii Mortimer wheeler) ने १९४७ ई० में ब्रह्मगिरि और चंद्रावलि की खुदाई करके भारतीय 'नवपाषाण' प्रतिमान के अध्ययन को एक नया मोड़ दिया। पिछले बारह-तेरह वर्षों में भारत के भिन्न-भिन्न भागों से अनेक स्तरीय प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। उनसे हमारी ज्ञान-वृद्धि तो हुई है किंतु भारतीय 'नवपाषाण' का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना अभी भी संभव नहीं है। १९४९ ई० में श्री यूगिन सी० वोर्मन (Eugene C. worman) ने अपने उस अध्ययन के परिणाम प्रकाशित किये जिसमें उन्होंने उस समय भारतीय संग्रहालयों में उपलब्ध तथा प्रागैतिहासिक साहित्य में वर्णित तथाकथित 'नवपाषाण' उपकरणों का वर्णन किया था। सबसे रोचक बात उन्हें यह लगी कि उनके द्वारा परीक्षित प्रागैतिहासिक साहित्य में **'नवपाषाण'** (नियालिथिक) शब्द का ग़लत इस्तेमाल किया गया है। श्री वोर्मन के कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों में से एक यह भी था कि भारत में कोई प्रामाणिक पुरातात्त्विक साक्षियाँ नहीं हैं जिनके आधार पर धातुओं के उपयोग के पहले या बाद में नवपाषाण लोगों के रहने की बात सिद्ध होती हो। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। ब्रह्मगिरि, संगनकल्लू और लंघनाज ऐसे **उद्योग-स्थल** (साइट्स) हैं जहाँ 'नवपाषाण' उद्योग उन स्थानों में धातुओं के आगमन के पहले उत्पन्न हुए थे। मध्य और पश्चिमी भारत में चंबल, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियों की घाटियों में पिछले दस वर्षों में जो पुरातात्त्विक शोध हुए हैं उनसे एक नये प्रकार के (Chalcolithic) 'नवपाषाण' उद्योग का पता चलता है जो धातु-उद्योगों के समकालीन था।

खुदे हुए उद्योग-स्थल (साइट्स)

बुर्जहाम (कश्मीर) : भारत में 'नवपाषाण' की स्तरीय साक्षी डी टेरा को कश्मीर के बुर्जहाम (Burzahom) नामक स्थान की खुदाई करके प्राप्त हुई। खुदाई करने पर पहले तीन फीट तक उत्तर-'नवपाषाण' संस्कृतियों के अवशेष मिले। इसमें सबसे ऊपर चौथी (ईस्वी) सदी की बौद्ध संस्कृति वाले स्तर हैं। उनके नीचे हड़प्पा के बाद की झांगर संस्कृति काल के पालिश किये काले मिट्टी के बर्तनों के साथ ऐसे बर्तनों के टुकड़े भी हैं जिन पर ज्यामितिक डिज़ाइन खोदे मिलते हैं। इन दो ऐतिहासिक संस्कृतियों के नीचे के ९ फीट मोटे स्तरों में हड्डी की रुखानियाँ और पालिश किये हुए **समंत-अंत** (बट-एण्ड) वाले प्रस्तर-कुठारों के साथ खाना बनाने के मिट्टी के बर्तन भी पाये गये हैं। ये भूरे रंग के बर्तन हाथ से बनाये और चमड़े से चिकनाये गये हैं। यह कश्मीर 'नवपाषाण' संस्कृति ६००० ईसा पूर्व से बहुत पुरानी होगी ऐसा अनुमान किया जाता है।

संगनकल्लू (Sanganakallu) : बेलारी ज़िले के प्रथम **निवासकाल** (Phase I) के मिट्टी के बर्तनों से रहित लघुपाषाण उद्योग का वर्णन पिछले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय में ही किया जा चुका है। इस उद्योग में ट्रैप (trap) और **बालू-प्रस्तर** (Sandstone) के गहरे **आवरणीकरण** (पैटिनेशन) वाले फ़्लेकों के साथ क्वार्टज़ (quartz) और चर्ट (Chert) के बने **लघुपाषाण** (माइक्रालिथ) भी सम्मिलित हैं। द्वितीय निवासकाल (Phase II) काफ़ी विकसित प्राक्-महापाषाण (नवपाषाण) प्रस्तर-कुठार संस्कृति के लिये उल्लेखनीय है। इसके काफी समय तक विद्यमान रहने के प्रमाण मिलते हैं। स्तरीय आधारों पर संगनकल्लू (नवपाषाण) प्रस्तर-कुठार संस्कृति का उपविभाजन संभव नहीं है। किंतु निचली और ऊपरी सतहों में प्रधान रूप से दो भिन्न प्रकार के--क्रमशः हल्के भूरे रंग के तथा मोटे एवं भूरे और काले रंग के--मिट्टी के बर्तन और साथ में लघुपाषाण साक्षियों के आधार पर द्वितीय निवासकाल (Phase II) संस्कृति के दो उपविभाग किये गये हैं। ट्रैप के फ़्लेक तथा अन्य प्रस्तर-उपकरण ताज़े-से और आवरणीकरण से रहित हैं। निम्न उपविभाग में आगे वर्णन किये जाने वाले बहाल और मास्की **उद्योग-स्थलों** (साइट्स) की तरह के भूरे और काले रंग के हाथ से बनाये गये मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े अवश्य मिलते हैं। गौण स्थान हल्के भूरे रंग के मिट्टी के बर्तनों का है। इसके साथ क्रमशः कम हो रहा लघुपाषाण उद्योग किंतु पनपता हुआ प्रस्तर कुठार उद्योग संबद्ध मिलता है। द्वितीय निवासकाल (Phase II) के ही उच्च उपविभाग में भूरे और काले रंग के बर्तनों की गौणता और हल्के भूरे रंग वाले मिट्टी के बर्तनों का प्राधान्य देखने को मिलता है। लाल रंग वाले आधार पर गहरे नीले और बैंजनी रंगों से रंगे मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े भी पाये गये हैं। इस उपविभाग में चर्ट और जैस्पर के अर्धचन्द्राकार और समानान्तर किनारे वाले ब्लेडों से युक्त सुन्दर लघुपाषाण उद्योग और ताज़े-से प्रस्तर कुठार और फ़्लेक भी हैं।

ब्रह्मगिरि (Brahmagiri) : ब्रह्मगिरि संस्कृति-अनुक्रम हम पिछले अध्याय में प्रस्तुत कर चुके हैं। ब्रह्मगिरि प्रस्तर कुठार उद्योग के दोनों उपविभागों--IA और IB--में ट्रैप के पालिश किये हुए नोकीले समंत-अंत (बट्-एण्ड) वाले कुठार पाये गये हैं। उपसंस्कृति IB में ताँबे की रुखानियों और ताँबे और काँसे की एक-एक छड़ों का पाया जाना यह बतलाता है कि इस उपसंस्कृति के निर्माताओं को धातुओं का ज्ञान तो था किन्तु उस ज्ञान का उपयोग लगभग नगण्य था। पालिशकृत प्रस्तर कुठारों के साथ **लघुपाषाण** (माइक्रालिथ) भी पाये गये हैं। इनमें ज्यामितिक प्रकारों का एकांत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभाव-सा है। लघुपाषाण **रूक्ष** (कोअर्स) हैं और **पुनर्गढ़न** (रीटचिंग्) शायद ही कहीं देखने को मिलता है। **समलंब चतुर्भुजाकार** (ट्रैपीज़ाएड्) और स्क्रेपर नहीं हैं। केवल एक अर्धचन्द्राकार मिला है। अधिक संख्या दोनों छोरों पर गढ़े गये ब्लेडों की है। एकाध ब्लेडों को दंतुर बनाया गया है लेकिन दाँत वाले किनारे पर या उसकी दूसरी ओर भी कोई चमक दिखलाई नहीं पड़ती है। फ़्लूटिंग् वाले कोर नहीं पाये गये हैं। उपसंस्कृति IA से पूरे लघुपाषाणों का केवल दसवाँ भाग ही मिला है। शेष नब्बे प्रतिशत लघुपाषाण IB उपसंस्कृति स्तरों में पाये गये हैं। नोकीले **समंत-अंत** (बट्-एण्ड) वाले प्रस्तर कुठारों में केवल पन्द्रह पूरे और उन्तीस टूटे हुए हैं। इनमें तराशे गये, खुदखुदे, घिसे और पालिश किये गये उपकरण निर्माण की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में हैं। अधिकांश कुठार नीचे के स्तरों से प्राप्त हुए हैं। चिपटे **द्वि-उन्नतोदर** (Bi-convex) क्रास-सेक्शन वाले प्रस्तर-कुठार नीचे के स्तरों में ही अधिक हैं। अंडाकार सेक्शन वाले कुठार पूरी संस्कृति में पाये गये हैं। ट्रैप के कोर और फ़्लेक IA उपसंस्कृति और IB के नीचे वाले स्तरों में हैं। इनसे **प्रस्तर-कुठार संस्कृति** (स्टोन ऐक्स् कल्चर) के स्थानिक होने का पता चलता है। इस संस्कृति भर में हाथ के बने मिट्टी के बर्तन मिलते हैं। उपसंस्कृति IA के निचले स्तर से एकाध रंगे और नक्काशी वाले लाल या चमड़े से चिकनाये बर्तन के टुकड़े मिले हैं जो IB उपसंस्कृति में नहीं पाये गये हैं। रंगे टुकड़ों पर टेढ़ी रेखाओं और नक्काशीदार बर्तनों पर कटी-कटी रेखाओं की डिज़ाइनें बनी मिलती हैं। उपसंस्कृति IB के अधिकांश बर्तन **मृतक-भांड** (Burial urns) हैं जो भूरे रंग के और चितकबरे हैं।

मास्की (Maski) : मैसूर राज्य के रायचूर ज़िले में मास्की नामक स्थान है। इसको पुरातात्त्विक महत्त्व उन्नीसवीं शताब्दी में ही प्राप्त हो गया था। राबर्ट ब्रूस फ़ूट १८७८ और १८८० ई० के बीच वहाँ गये थे किन्तु हाल में इसको महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का श्रेय श्री बी० के० थापड़ को है। उन्होंन १९५४ ई० में मास्की की खुदाई की। उन्होंने वहाँ के संस्कृति-अनुक्रम में नीचे से ऊपर तीन निवासकालों (Phases I-III) की विद्यमानता के स्तरीय प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। नीचे की प्राकृतिक सतह से तीन फ़ीट की औसत ऊँचाई तक प्रथम निवासकाल (Phase I) के **ताँब्र संस्कृति** (Chalcolithic culture) के अवशेष मिले हैं। इसके और इसके बाद के द्वितीय निवासकाल (Phase II) के बीच में व्यवधान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अन्कन्फ़र्मिटी) है। द्वितीय निवासकाल के साढ़े पाँच फ़ीट मोटी परतों में **महापाषाण संस्कृति** (Megalithic culture) पनपी थी। इसके ऊपरी एक फ़ीट स्तर में बाद की संस्कृति के अवशेष भी पाये गये हैं। तृतीय निवास-काल (Phase III) में आरम्भिक ऐतिहासिक संस्कृति के अवशेष हैं। पिछले निवासकाल वाले एक फ़ीट स्तर को सम्मिलित कर लेने पर इसके स्तर दो फ़ीट मोटे हो जाते हैं। श्री थापड़ ने मास्की संस्कृति-अनुक्रम की आयु के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुमान लगाये हैं: प्रथम निवासकाल १००० से ४०० ईसा पूर्व तक; द्वितीय निवासकाल २०० ईसा पूर्व से ५० ई० तक और तृतीय निवासकाल ५० ई० से ३०० ई० तक।[1]

इस **धातुयुगीन 'नवपाषाण'** (Chalcolithic neolithic) संस्कृति की विशेषता, आदि से अन्त तक लघुपाषाणों (माइक्रालिथ्स्) की विद्यमानता और बहुत कम ताँबे का होना, कही जा सकती है। एक और उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यहाँ पालिश **प्रस्तर कुठार** (सेल्ट्स्) स्तरों में एक भी नहीं पाये गये हैं। केवल चार ऐसे उपकरण भूमि सतह पर से एकत्र किये जा सके हैं। ताँबे की एक अज्ञात इस्तेमाल वाली छड़ी के बीच सतह में पाये जाने और सभी काम के लिये पत्थर काम में लाये जाने के आधार पर श्री थापड़ मास्की के प्रथम निवासकाल वाली धातुयुगीन संस्कृति को सारभूत रूप में 'नवपाषाण' संस्कृति के अन्दर धातु के धीरे-धीरे प्रवेश करने वाली स्थिति का परिचायक मानते हैं।[2] पूरे लघुपाषाणों (माइक्रालिथ्स्) में से ७८·५ प्रतिशत **असंमितीय** (एसिमेट्रिकल) फ्लेक और समानान्तर किनारे वाले ब्लेड हैं। अन्य लघुपाषाणों में **अर्धचन्द्राकार** (ल्यूनेट्स्, समलंब चतुर्भुजाकार (ट्रैपीज़ाएड), स्क्रेपर, **पार्श्व पुनर्गढ़ित** (बैक्ड) और **दंतुर** (सिरेटेड) ब्लेड, गढ़े अस्त्राग्र और कदाचित् ब्यूरीन आदि हैं। साधारणतः इस ब्लेड-प्रधान उद्योग में पुनर्गढ़न का अभाव-सा है। दस प्रस्तर के हथौड़े पाये गये हैं जिन पर आघात के निशान हैं। इससे यह पता चलता है कि मास्की के उपकरण-निर्माता **पत्थर के हथौड़े** (हैमर-स्टोन) इस्तेमाल करके भी नियंत्रित फ्लेकीकरण द्वारा अपनी सामग्री का समुचित उपयोग करना जानते थे। दूसरी पत्थर की सामग्री गोलाकार गुटके हैं जो शंख, शीले, चाल्सेडनी, कार्नेलियन और एजेट के बने हैं।

---

१. बी० के० थापड़, १९५७, "मास्की १९५४: ए चैल्कालिथिक साइट् आव् द सदर्न डकन", ऐन्शिएण्ट इंडिया नं० १३, पृष्ठ २०।

२. वही, पृष्ठ १२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकतर मिट्टी के बर्तन चाक पर बने मालूम होते हैं हालाँकि पूरे या आधे हाथ के बने बर्तनों का एकांत अभाव नहीं है। पहले भूरे रंग के मिट्टी के वर्तन अधिक संख्या में मिले हैं। दूसरे प्रकार के बर्तन वैसे आरंभ में भी पाये गये हैं पर बाद में उनका प्राधान्य हो जाता है। ये दूसरे प्रकार के बर्तन गुलाबी रंग के हैं और **चमड़ा चढ़े चाक** (Buff-wheel) पर बनाये गये प्रतीत होते हैं। रंगीन मिट्टी के बर्तनों की लाल सतहें काले या खैरे रंग की रेखांकित डिज़ाइनों से सजी मिलती हैं।

नेवासा (Nevasa) : गोदावरी घाटी में उसकी सहायक प्रवर नदी के दक्षिणी किनारे पर बसे नेवासा में काली मिट्टी पर टिके पाँच सांस्कृतिक अंशों के पता लगाने का श्रेय डॉ० संकालिया को ही दिया जायगा। द्वितीय निवास काल (Phase II) में उत्तरी काले पालिशकृत (Northern Black polished ware) बर्तनों का होना ही उसे ऐतिहासिक काल के निकट ला देता है। प्रथम निवासकाल (Phase I) में चाक पर बने बर्तनों के सुन्दर लाल सतहों पर काले रंग से रंगाई की गई है। टोकरियाँ, पीपल के पत्ते, पशु और मानव आकृतियों के एकाध नमूनों को छोड़ कर रंगे हुए डिज़ाइन प्रायः ज्यामितिक ही हैं। गोलाकार आधार (पेंदे), उभरे कोर (किनारे) और बगल में बाहर निकले मुँह वाले कटोरे ही सबसे मुख्य बर्तन हैं। बड़े-बड़े कलश और मृतक-भांड (बरियल अर्न्स) हाथ से ही बनाये जाते थे। जार्वे के उपकरणों के समान ही विशेष प्रविधि ('Crested guiding flake and keeled core technique') से बने नेवासा लघुपाषाण महेश्वर के ब्लेड उपकरणों के समान लगते हैं। ट्रैप की रुखानी और बसूला (ऐड्ज़) हथौड़ा-प्रस्तर और चाल्सेडनी के लघुपाषाणों के साथ ब्रह्मगिरि नोकीले समंत-अंत (बट्-एण्ड) वाले पालिशकृत कुठार नेवासा (धातुयुगीन=चैल्कॉलिथिक) 'नवपाषाण' उद्योग की सबसे विशेष वस्तु है।

जार्वे (Jarve)) : महाराष्ट्र राज्य के अहमदनगर ज़िले में प्रवर नदी के किनारे जार्वे (Jarve) नामक स्थान पर चाक पर बने आगे निकले मुँह वाले मिट्टी के बर्तन मिले हैं। इनके अतिरिक्त कुछ हाथ के बने कलश और बड़ी तश्तरियाँ भी हैं। यहाँ के लघुपाषाणों में अधिक संख्या फ़्लेक और कोर की है जो एक विशेष विकसित प्रविधि द्वारा बनाये गये प्रतीत होते हैं। समानान्तर किनारे वाले ब्लेडों में कलँगीनुमा उभार (Crested ridge)) एक विशेषता है। इनके अतिरिक्त समानान्तर किनारे वाले दोनों छोरों पर गढ़े ब्लेड, आरानुमा ब्लेड और पार्श्वगढ़ित ब्लेडों के अतिरिक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्धचन्द्राकार और फ़्लूटिंग् किये कोर भी हैं। बाहर निकले मुँह वाले मिट्टी के रंगे बर्तन इस संस्कृति को नासिक की संस्कृति के समकालीन होने की ओर संकेत करते हैं।

नासिक (Nasik) : डॉ० संकालिया ने ही नासिक के पास मठीची-गादी (Mathichi-Gadi) नामक स्थान पर (धातुयुगीन) 'नवपाषाण' --उनके मतानुसार **आद्य-ऐतिहासिक** (प्रोटो-हिस्टारिक)--उद्योग का पता लगाया। इसके विकसित लघुपाषाण उद्योग में कुछ अर्धचन्द्राकार (ल्यूनेट्स्) और **अस्त्राग्र** (प्वाइंट्स्) हैं। किंतु अधिक संख्या फ़्लूटिंग् किये कोरों, पार्श्वगढ़ित (बैक्ड्) ब्लेडों और मध्योभार ब्लेडों की है। इस संस्कृति के विशेष मिट्टी के बर्तनों का रंग हल्का नारंगी है। उनके साथ ही लाल भूमि पर काले रंग से रंगे गये बर्तनों के टुकड़े भी मिलते हैं। ये दोनों प्रकार के बर्तन चाक पर बनाये हुए हैं। इनके अलावा हल्के गुलाबी, भूरे और काले रंग के बर्तन भी मिले हैं। भूरे रंग के बर्तन जार्वे के मृतक-भांड (बरियल्-अर्न) और ब्रह्मगिरि IB काल के बर्तनों के समान हैं। ऐसा अनुमान है कि विकसित लघुपाषाण, रंगे मिट्टी के बर्तन तथा गेरू से धुले बर्तनों से युक्त संस्कृति १५०० ईसा पूर्व से ५०० ईसा पूर्व तक की अवधि में या उससे भी पहले रही होगी। पशु सभी पालतू ही थे जैसे कुत्ता, भेड़, बकरी, बैल, भैंस और सुअर आदि। ऊपर वर्णित संस्कृति नासिक में पाये गये पाँच **संस्कृति-अनुक्रम** (कल्चर-सीक्वेन्सेज़) में सबसे पहली है जो काली मिट्टी वाले स्तरों में पायी गई।

प्रकाश (Prakash) : ताप्ती और उसकी सहायक गोमई नदियों के संगम पर प्रकाश नामक स्थान है। यहाँ पर प्रस्तर उपकरणों में कुछ अर्धचन्द्राकार और समलंबचतुर्भुजाकार लघुपाषाणों के साथ अधिक संख्या में समानान्तर किनारे वाले ब्लेड हैं। इनमें से कुछ पार्श्वगढ़ित हैं और कुछ दंतुर बनाये गये हैं। इस लघुपाषाण उद्योग के साथ सीढ़ी, पशु-आकृति, टेढ़ी पट्टियाँ, कटी-कटी या टेढ़ी रेखाएँ आदि डिज़ाइनों वाले लाल भूमि पर काले रंग से रंगे मिट्टी के बर्तन भी पाये गये हैं। मोटे टुकड़ों वाले ऐसे बर्तन भी बनाये गये प्रतीत होते हैं जो भूरे रंग के थे लेकिन जिनके किनारे गेरू से रंग दिये गये हैं। श्री थापड़ के अनुमान के अनुसार इस संस्कृति की आयु १००० ईसा पूर्व के आसपास होनी चाहिए।

बहाल (Bahal) : श्री एम० एन० देशपांडे ने १९५१-५२ ई० में वर्त्तमान महाराष्ट्र राज्य के पूर्वी खानदेश ज़िले के बहाल नामक स्थान पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खुदाई की। बहाल ताप्ती नदी की एक सहायक गिनी नामक नदी के किनारे वसा हुआ है। यहाँ पर दो मुख्य अंश हैं जिनको बारह फ़ीट मोटे सांस्कृतिक अवशेष पृथक् करते हैं। एक अंश लघुपाषाणों (माइक्रालिथ्स्) का है जिनके साथ ताँबे के पदार्थ और मिट्टी के रंगे बर्तन मिलते हैं। इसकी अवधि १००० से ७०० ईसा पूर्व आँकी जाती है। दूसरा सांस्कृतिक अंश प्रसिद्ध उत्तरी काले पालिशकृत बर्तनों (उ० का० पा०=Northern Black Polished Ware=N.B.P.) के साथ खुरचे (इन्साइज़्ड) बर्तन के टुकड़े मिले हैं। यह अंश ३०० ईसा पूर्व के बाद का होगा ऐसा अनुमान है। पहले अंश (Period I) के दो उपविभाग किये जाते हैं: IA और IB. उपविभाग IA में ब्रह्मगिरि के-से मृतक-स्मारक, भांडों के समान मोटे भूरे गोलाकार कलश, चिपटी पेंदीवाला कटोरा जिसके किनारे भीतर की ओर मुड़े हैं और जिस पर खुरची हुई टेढ़ी और कटी-कुटी रेखाएँ और उँगली से बने डिज़ाइन हैं, आदि पाये गये हैं। कुछ भूरे पतले मिट्टी के बर्तन भी पाये गये हैं जिनके छोर लाल गेरू में रंगे मिलते हैं। उपविभाग IB में चाक पर बने मिट्टी के बर्तन हैं जिन पर भाँति-भाँति के डिज़ाइन बने हैं और लाल भूमि पर काला रंग चढ़ाया गया है। पहली बार ऐसे बर्तन के टुकड़े मिले हैं जो रगड़ कर भूरे और काले किये गये हैं और जिन पर सफ़ेद रंग से तिरछी रेखाएँ रंगी गई हैं। ताँबे का इस्तेमाल बहुत सीमित प्रतीत होता है। प्रस्तर-उपकरणों में चाल्सेडनी, जैस्पर और एजेट के बने अर्धचन्द्राकार और **समलंब चतुर्भुज** (ट्रैपीज़) और समानान्तर किनारे वाले ब्लेड मुख्य हैं।

त्रिपुरी (Tripuri)) : सन् १९५५ ई० में श्री एम० जी० दीक्षित ने जबलपुर के पास ऊपरी नर्मदा घाटी में त्रिपुरी नामक स्थान पर भूरे सिल्टी मिट्टी में एक नवीन, किंतु विचित्र, लघुपाषाण उद्योग का पता लगाया। लघुपाषाणों में काफी अधिक संख्या में अर्धचन्द्राकार और त्रिकोण हैं। एक से डेढ़ इंच तक लंबाई वाले लंबे पार्श्वगढ़ित और पुनर्गढ़ित और कभी-कभी दंतुर, ब्लेड इस लघुपाषाण उद्योग के विशेष उपकरण हैं। इस ब्लेड (लघु-पाषाण) उद्योग के साथ चाक पर बने, लाल रंग से रंगे मिट्टी के बर्तन मिले हैं जिन पर पड़ी काली रंग की लकीरें बनी हैं। इस संपर्क के कारण इस उद्योग को धातुकालीन 'नवपाषाण' या उत्तर-हड़प्पा 'नवपाषाण' कालीन उद्योग माना गया है।

महेश्वर (नवदाटोली)=Maheshwar (Navdatoli) : नर्मदा नदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के उत्तरी किनारे पर महेश्वर नामक उपनगर मिलता है। निमाद ज़िल के इस उपनगर के दूसरी ओर मछुवों का छोटा-सा गाँव नवदाटोली है। इन दोनों स्थानों पर खुदाई करके सर्वश्री संकालिया, सुब्बाराव और देव ने तीन सांस्कृतिक कालों का पता लगाया है। प्रथमकाल (Period I) प्रागैति-हासिक और आद्य-'नवपाषाण' संस्कृतियों का था जो नर्मदा घाटी की 'काली मिट्टी' और उसके पूर्ववर्ती स्तरों से पाये गये उद्योग-समूहों से तुलना करने योग्य है। द्वितीयकाल (Period II) के उद्योगों को डॉ० संकालिया आदि ने[३] **आद्य-ऐतिहासिक** (Proto-Historic) नाम दिया है। शायद उनका अनुमान है कि यह संस्कृति १५०० ईसा पूर्व से ५०० ईसा पूर्व तक या उससे भी पहले जीवित अवस्था में रही होगी। किंतु श्री कृष्णस्वामी ने महेश्वर नवदाटोली उद्योगों को धातुयुगीन 'नवपाषाण' (Chalcolithic Neolithic) कहा है।[४] काली मिट्टी के ऊपर के ५–८ फ़ीट तक मोटे स्तरों से रंगे तथा बिना रंगे बर्तनों के साथ विकसित लघुपाषाण संबद्ध पाये गये हैं। श्वेत चाल्सेडनी, चर्ट, एजेट और जैस्पर के बने अर्धचन्द्राकार और समलंब चतुर्भुज (ट्रैपीज़) लघुपाषाणों के अतिरिक्त नोकीले छिद्रक, समानान्तर किनारे वाले ब्लेड पाये गये हैं। समानान्तर ब्लेड बनाने के लिए पहले से फ़्लूटिंग् किये गये कोर काम में लाये गये हैं। इन उपकरणों के अतिरिक्त छोटे-छोटे पत्थर के गेंद, एक गदाशीर्ष, चक्की और मूसल आदि भी मिले हैं। पिन, बंसी और रुख़ानी के रूप में ही ताँबे का थोड़ा इस्तेमाल किया गया है। पूरे बर्तन नहीं पाये गये हैं। लाल रंग के बर्तन अंत तक पाये जाते हैं जबकि काला रंग धीरे-धीरे समाप्त होता जाता है। रंगे बर्तन के टुकड़ों में नब्बे प्रतिशत के लगभग लाल भूमि पर काले रंगे बर्तन हैं। अनेक प्रकार के ज्यामितिक डिज़ाइनों के अतिरिक्त मानव और पशु-आकृतियाँ भी अंकित मिलती हैं।

अहार (Ahar)) : श्री अमलानन्द घोष ने राजस्थान के उदयपुर के एक गाँव अहार में प्राकृतिक बालुई भूमि के स्तर में काले और लाल रंग

---

३. एच० डी० संकालिया, बी० सुब्बा राव ऐण्ड एस० बी० देव, १९५३, "द आर्कियोलॉजिकल सीक्वेन्स आव सेण्ट्रल इंडिया", साउथ वेस्टर्न जर्नल आव् ऐन्थ्रोपॉलॉजी, भाग ९, संख्या ४, पृष्ठ ३५५।

४. वी० डी० कृष्णस्वामी, १९५९, "द नियालिथिक पैटर्न आव इंडिया" प्रेसिडेन्शियल ऐड्रेस, सेक्शन आव ऐन्थ्रोपॉलॉजी ऐण्ड आर्कियालॉजी, फ़ार्टी-सिक्स्थ इंडियन सायन्स कांग्रेस, पृष्ठ ६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के साथ सादे लाल रंग के मिट्टी के बर्तनों का पाया जाना महत्त्वपूर्ण बताया है। अहार उद्योग के तीन अंश ३० फ़ीट मोटे स्तरों में पाये गये। लघुपाषाणों में फ़्लूटिंग् किये गये कोर, समानान्तर किनारे वाले ब्लेड विशेष उल्लेखनीय हैं।

नगड़ा (Nagda) : मध्यप्रदेश में चम्बल नदी की घाटी में नगड़ा नामक स्थान पर श्री एन० आर० बनर्जी ने ३२ फ़ीट मोटी परतों में मिट्टी के बर्तनों के साथ लघुपाषाण संबद्ध पाये हैं। प्रथम काल (Period I) के उपकरण निचली २२ फ़ीट मोटी तह में पाये गये। क्वार्ट्ज़, कार्नेलियन और चर्ट के फ़्लूटिंग् किये गये कोर और समानान्तर किनारे वाले ब्लेड जिनमें कुछ पुनर्गढ़ित और कभी-कभी दंतुर कार्यांग वाले हैं। इन लघुपाषाणों के साथ मिट्टी के बर्तन हैं जिन पर क्षैतिज (हारिज़ॉण्टल) धारियाँ, केन्द्रीभूत अर्ध-वृत्त तथा ऊपर जाती हुई एक स्थान पर केन्द्रित खड़ी लकीरें जिनके शीर्ष पर त्रिकोण, सूर्य के प्रतीक और बारहसिंघे की सींग के चिन्ह बने हैं आदि-आदि काले रंग से डिज़ाइन की तरह बनाये गये हैं। इन बर्तनों के रंग लाल या सफ़ेद हैं। कुछ काले और सफ़ेद बर्तन भी हैं जिन पर आड़े-तिरछे निशान बने हैं। सादे बर्तन बहुत कम हैं। प्रथम काल में ताँबे का बहुत कम इस्तेमाल किया गया है। द्वितीय काल (Period II) में लघुपाषाण तो पाये गये हैं लेकिन चाक पर बने काले-और-लाल बर्तनों ने काले-और-सफ़ेद बर्तनों का स्थान ले लिया है। लोहा भी पाया गया है।

अन्य 'नवपाषाण' उद्योग-स्थल

दक्षिण भारत : कर्नाटक क्षेत्र :—ऊपर के वर्णन से कुछ ऐसा प्रतीत-सा हो सकता है मानो संगनकल्लू 'नवपाषाण' प्रस्तर-कुठार संस्कृति की उत्पत्ति उसके पूर्ववर्त्ती आद्य-'नवपाषाण' (प्रोटो-नियालिथिक) फ़्लेक उद्योग से हो। ब्रह्मगिरि में प्रस्तर कुठार संस्कृति (स्टोन ऐक्स कल्चर) के प्राक्-I आद्य-'नवपाषाण' (लघुपाषाण) उद्योग से विकसित होने की कल्पना श्री शेशाद्री ने की है। ऐसा अनुमान है कि ब्रह्मगिरि और संगनकल्लू के उपर्युक्त तथा-कथित आद्य-'नवपाषाण' उद्योग पालिशकृत प्रस्तर कुठार संस्कृति की आरंभिक अवस्था के द्योतक हैं। इन्हीं से वास्तविक, यथाक्रम 'नवपाषाण' उद्योग पनपा जिसके घर्षित और पालिशकृत उपकरण हमें कर्नाटक क्षेत्र में देखने को मिलते हैं। मैसूर राज्य के इन उत्तरी इलाकों—संगनकल्लू और ब्रह्मगिरि—के बाद पालिशकृत प्रस्तर-कुठार (स्टोन-ऐक्स या सेल्ट) सबसे अधिक संख्या में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शेवराय पहाड़ियों (Shevroy Hills) से प्राप्त हुए हैं। ये पहाड़ियाँ मद्रास राज्य के सलेम ज़िले में हैं। इस ज़िले के दक्षिण से एक-आध सेल्ट (प्रस्तर-कुठार) ही प्राप्त हो सके हैं। कावेरी नदी के दक्षिण में अब तक सेल्ट नहीं पाये गये हैं। शेवराय पहाड़ियों और बेलारी क्षेत्र में प्रस्तर-कुठारों का बाहुल्य वहाँ बसाल्ट के ढोकों के बने मेड़ों की विद्यमानता है। कावेरी क्षेत्र के दक्षिण में इन बसाल्ट ढोकों का न होना वहाँ प्रस्तर-कुठार के अभाव का शायद मुख्य कारण हो। कर्नाटक क्षेत्र में प्राप्त प्रायः सभी प्रस्तर-कुठारों के **उपकरण-प्रकार** (टाइपॉलॉजी) और **निर्माण-वैशिष्ट्य** (टेक्नॉलॉजी) का श्री अल्चिन (Allchin) ने अध्ययन किया है। उनके मतानुसार कर्नाटक क्षेत्र की तीन बुनियादी 'नवपाषाण' प्रविधियाँ हैं फ़्लेकीकरण (फ़्लेकिंग्), खुदखुदा करना (पेकिंग्) और घर्षण (ग्राइण्डिग्)। चूँकि ये प्रविधियाँ आरंभ से ही साथ-साथ विद्यमान मिलती हैं इसलिए इनको किसी प्रकार के विकास-क्रम में रखना उचित नहीं प्रतीत होता है। रगड़ने और घिसने के लिए काम में लाये जाने वाले पत्थरों पर खुदखुदा करने के प्रमाण मिलते हैं लेकिन तेज़ किनारे वाले उपकरणों को शायद ही खुदखुदा किया जाता हो। इसी तरह कुछ छोटे और सुन्दर आकृति वाले प्रस्तर कुठार ही पूर्ण-घर्षित होते थे। श्री अल्चिन का मत है कि कर्नाटक क्षेत्र के रबड़ (Rubbers), घर्षक, हथौड़ा-प्रस्तर, कुठार, रुखानी, अस्त्राग्र, चापिंगुपकरण आदि 'नव-पाषाण' उपकरण ईरान और पश्चिमी एशिया के प्रस्तर उपकरण-निर्माण-प्रविधियों से उद्भूत हुए प्रतीत होते हैं। श्री कृष्णस्वामी कर्नाटक क्षेत्र में उत्तर-पुरापाषाण लघुपाषाण फ़्लेक उद्योग की विद्यमानता के बारे में हैं, जबकि आखेट-अर्थव्यवस्था रही होगी और प्रस्तर-कुठार (सेल्ट) एकाध या बिल्कुल ही नहीं रहे होंगे। इस क्षेत्र की 'नवपाषाण' प्रस्तर-कुठार संस्कृति स्थानीय आद्य-'नवपाषाण' उद्योग से पनपी और उसने प्रभावशाली आद्यैतिहासिक समानान्तर किनारे वाले ब्लेड प्रधान धातुयुगीन 'नवपाषाण' उद्योग को अपने अन्दर आत्मसात् कर लिया यह श्री कृष्णस्वामी का अनुमान है।[५]

पूर्व भारत : (१) आसाम—इस पूरे प्रदेश के 'नवपाषाण' एक ही प्रविधि द्वारा बनाये गये। उपकरण-सामग्री प्रायः नदी तलों से प्राप्त चिपटे पत्थर के शिलाफलक होते थे। इस कारण गढ़ने या फ़्लेकीकरण करने के स्थान पर हथौड़े से पीट कर तोड़ने (Battering या Hammering) तथा

५. वी० डी० कृष्णस्वामी, १९५९, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घिसने (Grinding)) और चिकनाने (Smoothing) द्वारा ही उपकरण बना लिये जाते थे। उपकरण-सामग्री और स्वरूप-साम्य के आधार पर आसाम की 'नवपाषाण' संस्कृति को कई **मण्डलों** (ज़ोन्स) में विभाजित किया गया है। सादिया सीमान्त (Sadiya Frontier) मंडल के उपकरण युन्नन (Yunnan) के उपकरणों से साम्य रखते हैं। शायद इसका कारण दोनों स्थानों में जादेइत (Jadeite) नामक पत्थर का इस्तेमाल रहा हो। नागा पहाड़ियों वाले मंडल में पूरे आसाम में पाये जाने वाले सेल्ट-प्रकारों के अतिरिक्त तीन विशेष उपकरण-प्रकारों में **पुच्छल कुठार** (Tanged axe) और **फन्याकार ब्लेड** (Wedge Blade) आदि तो नागा पहाड़ियों की ही विशेषता हैं। तीसरा, **गोल रुखानी** सेल्ट (Gouge adze) नागा पहाड़ियों के अतिरिक्त ब्रह्मा, मलाया, थाईदेश, लाओस और कंबोडिया आदि देशों में भी पाये जाते हैं। इस मंडल के 'नवपाषाण' (Neoliths) नीस पत्थर (Gneiss) से बने हैं। खासी पहाड़ियाँ, गारो पहाड़ियाँ और काचार पहाड़ियाँ इन तीन मंडलों के उपकरण प्रकार उच्च ब्रह्मा के 'नवपाषाणों' से बहुत मिलते-जुलते हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी मंडल के बालूप्रस्तर (सैण्डस्टोन) के उपकरण चिकने पेबुलों पर बनाये गये हैं। आसाम भर में पाये गये निम्नलिखित प्रकार के 'नवपाषाण' प्रस्तर कुठार हैं। इनके प्रकार और निर्माण-वैशिष्टय का सम्यक् और विस्तृत विवरण हम आगे चल कर करेंगे : पाँच प्रकार के **गढ़े 'हो'** (Faceted hoe) या **चौकोर बसूला सेल्ट** (Quadrangular adze) ; **स्कंधीय 'हो'** (Shouldered hoe) **या 'फावड़ानुमा सेल्ट'** (Spadeshaped celt) ; **प्रवणित कुठार** (Splayed axe); **गोलाकार समंत कुठार** (Rounded butt type) **या गोलाकार कुठार** (Rounded Axe); **चौड़े कायंग वाला कुठार** (Axe with broad cutting-edge); **पुच्छल कुठार** (Tanged Axe); **फन्याकार ब्लेड** (Wedge blade) **और नालीदार हथौड़ा**(Grooved Hammerstone)। इनमें से कुछ उपकरण दक्षिण चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया में भी पाये गये हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन आसाम 'नवपाषाणों' की उत्पत्ति का रहस्य पूर्ववर्त्ती देशों से संबद्ध है। लेकिन कुछ उपकरण आसाम की स्थानीय विशेषता हैं।

पूर्व भारत : (२) छोटानागपुर (बंगाल-बिहार-उड़ीसा)—बंगाल बिहार-उड़ीसा आसाम की ही तरह एक 'नवपाषाण' संस्कृति-क्षेत्र का निर्माण करते हैं। इसमें तीन प्रमुख मंडल हैं। चिटगाँव पहाड़ी मंडल (The

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

chittagong Hill zone) के आसाम के-से गढ़े उपकरण उसके आसाम से सांस्कृतिक-संपर्क के द्योतक हैं। उप-पर्वतीय (हिमालय मंडल) (Himalayan sub-mountain Zone) में गढ़े उपकरण, रुखानियाँ, हथौड़ा-प्रस्तर, फन्याकार कुठार तथा गोलाकार समंत कुठार आदि 'नवपाषाण' आसाम में भी पाये गये थे। छोटानागपुर पठार मण्डल में दक्षिणी बिहार के अतिरिक्त उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के पठारी प्रदेश भी सम्मिलित हैं। इस मंडल में दो प्रकार के उद्योग-स्थल (साइट्स) हैं। एक वर्ग तो उन उद्योग-स्थलों का है जहाँ कुछ 'नवपाषाण' (नियालिथ्स्) भूमि पर अचानक मिल गये। इस वर्ग के उपकरण---Bar chisel, चौड़ा कुठार, गढ़े उपकरण, स्कंधीय 'हो' और प्रवणित कुठार आदि---आसाम में तो पाये जाते हैं लेकिन प्रायद्विपीय भारत के प्रस्तर-कुठारों से सर्वथा भिन्न हैं जिनका दूसरे छोटानागपुर वर्ग के उपकरणों पर प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ये उपकरण कहीं-कहीं, बिखरे रूप में और देर से पाये जाते हैं। इन तथ्यों के आधार पर इन उपकरणों के विदेशों से निर्यात होकर आने या विदेशी उपकरणों की नकल होने की संभावना लगती है। दूसरे छोटा-नागपुर वर्ग के 'नवपाषाणों' के बनाने में फ़्लेकीकरण, खुदखुदा करना या पीटना और घिसना आदि कई प्रविधियाँ एक साथ या पृथक्-पृथक् इस्तेमाल की गई हैं। मुख्य उपकरण ('नवपाषाण' नियालिथ) गोलाकार समंत कुठार, फन्याकार कुठार, रुखानियाँ, स्कंधीय सेल्ट, छिदे पत्थर, हथौड़ा-प्रस्तर या घर्षक आदि हैं। लेकिन इस वर्ग के 'नवपाषाणों' के साथ धातु-युगीन लघुपाषाण स्थान-स्थान पर संबद्ध पाये गये हैं। इन समानान्तर किनारे वाले ब्लेड उद्योगों में प्रसिद्ध रिबन-फ़्लेक-ब्लेडों का होना उनके मध्य और पश्चिम भारत के धातुयुगीन 'नवपाषाण' (चैल्कॉलिथिक नियालिथिक) उद्योगों के समान होने तथा उनसे संबद्ध होने के सन्देह की पुष्टि करता है। श्री कृष्णस्वामी की कल्पना है कि जबलपुर के पास का त्रिपुरी उद्योग छोटानागपुर पठार और मध्य एवं पश्चिम भारत को जोड़नेवाला सूत्र हो सकता है।[६]

भारतीय 'नवपाषाण' उपकरणों के प्रकार (टाइप आव् इंडियन नियालिथ्स्) :

अब तक हमने विभिन्न उद्योग-स्थलों के 'नवपाषाण' उद्योगों का वर्णन किया है। आगामी कुछ पैराग्राफों में हम 'नवपाषाण' उपकरणों का

६. वही, पृष्ठ १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण प्रस्तुत करेंगे। सबसे पहले 'नवपाषाण' प्रदेशों के उपकरण प्रकार वर्णित होंगे। इन प्रादेशिक वर्णनों का आधार डॉ० अहमद हसन दानी द्वारा किया गया पूर्वी भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया की 'नवपाषाण' संस्कृतियों का अध्ययन है।

(१) आसाम :

गढ़े 'हो' या **'चौकोर बसूला'** (Faceted hoe या 'Qudrangular Adze') बनाने के लिए पहले मामूली रूप-रेखा गढ़ी जाती थी। फिर स्वाभाविक रूप प्रदान किया जाता था और अंत में माध्यमिक कार्यांग तैयार होता था। गढ़े 'हो' के पाँच प्रकार ये हैं: टेढ़े-मेढ़े, दोनों तलों पर घिसे माध्यमिक कार्यांग वाले, एक तल पर घिसे किनारे वाले, किनारों पर भंग (नॉच) वाले गढ़े उपकरण और समानान्तर किनारे वाले लम्बे प्रकार के कुठार। इन उपकरणों के क्रास-सेक्शन आयताकार हैं। भारत में ये आसाम, चिटगाँव में और दक्षिण-पूर्व एशिया और यून्नान में पाये जाते हैं।

स्कंधीय 'हो' या **'फावड़ानुमा सेल्ट'** (Shouldered hoe या 'Spade-shaped celt) ऊपर वर्णित 'गढ़े हो' की तरह ही होता है। दोनों में अन्तर केवल इतना होता है कि ठीक से **मुष्ठिबद्ध** (Haft) करने के लिए इस उपकरण के समंत-(बट्) अंत को आगे बढ़ा दिया जाता है। नियमित, सीधे आकार के स्कंधीय हो के क्रास-सेक्शन भी आयताकार होते हैं। इन सेल्टों के बनाने के लिए चिकनाने की प्रविधि अपनाई गई है। इस प्रकार के उपकरण नागा और काचार पहाड़ियों में पाये जाते हैं जो वहाँ ब्रह्मा से आये होंगे। देश के अन्य भागों—मयूरभंज, मध्यप्रदेश, गोदावरी घाटी, हैदराबाद और उत्तरी मैसूर आदि—में भी एकाध ऐसे नियमित आकार वाले उपकरण पाये गये हैं। स्कंधीय 'हो' का दूसरा प्रकार उन टेढ़े-मेढ़े उपकरणों का है जो सीधे आकार वाले उपकरणों की नक़ल मालूम पड़ते हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी तथा खासी और गारो पहाड़ियों में पाये जाने वाले इन उपकरणों का क्रास-सेक्शन अंडाकार है और ये फ्लेकीकरण तथा **खुदखुदी** (पेंकिंग) प्रविधियों द्वारा बनाये गये हैं।

प्रवणित कुठार (Splayed Axe) केवल पूर्वी भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में पाया जाता है। देखने से ही यह किसी धातु के उपकरण की नक़ल-सा लगता है। शायद यह बहुत बाद में पूर्व से भारत में आया। अधिकांश उपकरण पूरे-के-पूरे चिकनाये और काफ़ी पालिश किए हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७ से १३ सेण्टीमीटर तक लम्बे इन उपकरणों का **अनुप्रस्थ छेद** (ट्रान्सवर्स सेक्शन) प्रायः आयताकार है। आसाम में इसका जो प्रकार पाया जाता है उसके दोनों तलों के माध्यमिक प्रवणित कार्यांग के साथ नतोदर किनारे पतले-चिपटे संमत (बट्) में समाप्त होते हैं।

गोलाकार समंत कुठार या 'गोलाकार कुठार' (Rounded butt type या 'Rounded Axe') की लंबाई २० से २५ सेण्टीमीटर तक होती है। गारो पहाड़ियों में पाये जाने वाले लंबे-पतले कुठार खुदखुदाने (पेकिंग्), फ्लेकीकरण और चिकनाने इन तीनों प्रविधियों द्वारा बनाये गये हैं। एक तल पर गढ़ा हुआ कार्यांग **उन्नतोदर** (वर्किंग एज इज़ कान्वेक्स) और समंत-अंत (बट-एंड) गोलाकार हैं। क्रास-सेक्शन अंडाकार से द्वि-उन्नतोदर (बाइ-कान्वेक्स) तक है।

चौड़ा कार्यांग वाला कुठार (Axe with broad cutting edge) अपने बहुत चौड़े कार्यांग के लिए उल्लेखनीय है। इसके किनारे नोकीले होते जाते हैं।

पुच्छल कुठार (Tanged Axe) और **फन्याकार ब्लेड** (Wedge Blade) नागा पहाड़ियों की विशेषता हैं। कदाचित् स्कंधीय हो से प्रभावित होने के कारण ही पुच्छल कुठार के समंत अंत पर थोड़ा स्कंध-सा उभार बना होता है। लेकिन इसका समंत गोलाकार और कार्यांग द्वितल (बाइफ़ेस) होता है।

नलीदार हथौड़ा (Grooved Hammer-stone) केवल आसाम के तेजपुर जिले में और दक्षिण-पूर्व एशिया में अन्नाम में पाया जाता है।

(२) छोटानागपुर (बंगाल-बिहार-उड़ीसा) क्षेत्र :

इस क्षेत्र के मुख्य कुठार का समंत-अंत (बट्-एण्ड) गोलाकार और अनुप्रस्थ छेद (ट्रान्स्वर्स-सेक्शन) अंडाकार से द्वि-उन्नतोदर तक होते हैं। कार्यांग माध्यमिक है और दोनों तलों पर घिस कर बनाया गया है। फन्याकार कुठार (Wedgeshaped Axe) में नोकीले समंत-अंत को अनुप्रस्थ रूप से गढ़ कर और घिस कर उसे चिपटा बना दिया गया है। रुखानियों (Chisels) का समंत चिपटा, और दोनों तलों पर प्रवणित कार्यांग एक तल पर घर्षित होता है। क्रास-सेक्शन साधारणतः आयताकार होता है। इस क्षेत्र के स्कंधीय सेल्ट (Shouldered celts) भी आसाम के स्कंधीय कुठारों की तरह ही हैं। **छिदे पत्थरों** '(Perforated stones) के छोटे भुथरे होते हैं। इन गोले या अंडाकार चिपटे पत्थरों के बीचोबीच दोनों

तलों की ओर से (आर-पार) छेद होते हैं। हथौड़ा-प्रस्तर या घर्षक (Hammerstones या Pounders) प्राय: लंबे पेबुल होते हैं जिन पर गढ़न के प्राय: कोई चिन्ह दिखलाई नहीं पड़ते हैं।

यूगिन् सी० वोर्मन का वर्गीकरण

भारतीय 'नवपाषाण' सेल्टों के प्रकार (टाइपॉलॉजी) और निर्माण-वैशिष्ट्य (टेक्नॉलॉजी) सर्वप्रथम, सम्यक, विस्तृत और यथाक्रम अध्ययन कर वर्गीकरण करने का श्रेय अमरीकी प्रागितिहासज्ञ यूगिन् सी० वोर्मन को है।[७] वोर्मन के इस महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रकाश में आने के ठीक एक दशक बाद, १९५९ ई० में, श्री कृष्णस्वामी ने इसके परिणामों को अव्यावहारिक घोषित कया है।[८] किंतु भारतीय 'नवपाषाण' का समुचित अध्ययन वोर्मन के योगदान के उल्लेख के बिना संभव नहीं है। श्री वोर्मन के मतानुसार भारतीय सेल्ट दो मूलभूत प्रविधियों द्वारा बनाये गये हैं। प्रथम प्रविधि (Technique I) में मुख्य रूप से गढ़ने (चिपिंग) और चिकनाने (स्मूदिंग) की प्रक्रियायें काम में लाई गई हैं। चिकनाने का काम केवल कार्यांग के चारों ओर ही किया गया है और निश्चय ही गढ़ने के बाद किया जाता था। इस प्रविधि द्वारा बनाये गये उपकरणों का अनुप्रस्थ-छेद (ट्रान्स्वर्स सेक्शन) अंडाकार, द्वि-उन्नतोदर, समलंब चतुर्भुजाकार (ट्रैपीज़ाएड्) या त्रिकोणाकार होता है। द्वितीय प्रविधि (Technique II) में केवल गढ़ने और चिकनाने की प्रक्रियाएँ ही इस्तेमाल की गई हैं। उपकरण का प्राय: आधे से अधिक भाग चिकनाया रहता है और लगभग पूरे सतह पर चमकती पालिश पाई जाती है। इन उपकरणों का अनुप्रस्थ-छेद लगभग आयताकार होता है।

वोर्मन ने निर्माण-प्रविधि (टेक्नीक), क्रास-सेक्शन, और आकार (स्वरूप) के आधार पर 'नवपाषाण' कुठारों और फावड़ों-बसूलों (ऐड्ज़्स) को बारह सेल्ट-प्रकारों में विभाजित किया है। वे कभी भी इस वर्गीकरण को अंतिम या आदर्श नहीं मानते। इसलिये वोर्मन-वर्गीकरण का इस आधार पर परित्याग करना या अनुपयुक्त कह देना ठीक नहीं होगा। उन्होंने चार-चार सेल्ट-प्रकारों का एक वर्ग बनाया है। उनका कथन है कि प्रथम वर्ग के सेल्टों की अपेक्षा उसके बाद के वर्गों के सेल्ट क्रमश: अधिक विकसित हैं

७. यूगिन् सी० वोर्मन, १९४९।
८. वी० डी० कृष्णस्वामी, १९५९, पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ १७.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उनका विस्तार क्रमशः पूर्व की ओर अधिक सीमित रहता है। श्री वोर्मन का मत है कि इन तीन वर्गों के सेल्टों के वितरण से उनके और उनकी निर्माण-प्रविधियों के पश्चिम के स्थान पर पूर्व दिशा से भारत में प्रवेश करने के अनुमान की पुष्टि होती है।

सेल्ट प्रकार १ : इन उपकरणों की कार्यांग से समंत-अंत तक की लंबाई ८ से १० सेंटीमीटर तक है। कुछ उपकरण केवल फ़्लेकीकृत हैं, कुछ फ़्लेकीकृत और आंशिक रूप से चिकनाये गये हैं तथा अन्य पूरे-पूरे चिकनाये गये हैं। आकार में ये उपकरण प्रायः अंडाकार होते हैं। अनुप्रस्थ-छेद (ट्रान्स्वर्स सेक्शन) द्वि-उन्नतोदर, अंडाकार या समलंब चतुर्भुजाकार होता है। यह उपकरण बिरले ही पाया जाता है। पूर्व और दक्षिण भारत में कहीं-कहीं पाया गया है।

सेल्ट प्रकार २ : लंबाई ६ से १५ सेंटीमीटर तक होती है। केवल फ़्लेकीकृत, फ़्लेकीकृत और आंशिक रूप से चिकनाये, पूरे खुदखुदे किंतु बिल्कुल बिना चिकनाये, तथा पूरे बिना चिकनाये प्रकार के उपकरण पाये गये हैं। ये आकार में लंबे समलंबचतुर्भुजाकार हैं। अनुप्रस्थ छेद **सपाट-उन्नतोदर** (प्लेनोकान्वेक्स), द्वि-उन्नतोदर, समलंब चतुर्भुजाकार या त्रिकोणाकार होता है। भारत में काफ़ी संख्या में पाये जाने वाले दो सेल्टों में से एक यही है। यह देश के उत्तरी, पूर्वी, मध्य और दक्षिणी भागों में पाया जाता है।

सेल्ट प्रकार ३ : लंबाई ७ से १८ सेंटीमीटर के बीच होती है। ये सेल्ट केवल गढ़े, गढ़े और आंशिक रूप से चिकनाये, पूरे खुदखुदे लेकिन बिना चिकनाये या पूरे चिकानाये होते हैं। इनके अनुप्रस्थ छेद द्वि-उन्नतोदर, अंडाकार या लगभग गोल होता है। इस प्रकार का सेल्ट पूर्व, मध्य और दक्षिण भारत में विकीरित है।

सेल्ट प्रकार ४ : यह सेल्ट ७ से १० सेंटीमीटर तक लंबा होता है। केवल गढ़े, गढ़े और थोड़ा चिकनाये, और पूरे चिकनाये प्रकार पाये गये हैं। आयताकार आकार का उपकरण केवल बसूला-फावड़ा (ऐड्ज़) रूप में मिला है। किनारे, कार्यांग और समंत-अंत कुछ उभरे से, निचला तल चिपटा-सा और ऊपरी तल लंबाई और पार्श्व दोनों ओर ढलान-सा बनाता है। अनुप्रस्थ-छेद ऊँचे समलंब चतुर्भुजाकार से चौड़े अंडाकार तक होता है। इस प्रकार के सेल्ट मुख्य रूप से दक्षिण भारत में पाये जाते हैं यद्यपि ?काध उपकरण मध्य और पूर्व में भी मिले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऊपर वर्णित सेल्ट-प्रकार **प्रथम वर्ग** (Group I) में सम्मिलित किये जाते हैं। इस वर्ग की विशेषता प्रथम प्रविधि का उपयोग और उपकरणों के केवल कार्यांगों का ही चिकनाया होना है। शायद ही किसी उपकरण का आधा से अधिक भाग चिकनाया गया होगा।

सेल्ट प्रकार ५ : लंबाई २० से २५ सेंटीमीटर तक होती है। ये सेल्ट या तो प्रायः पूरे खुदखुदे (पेक्ड्) होते हैं या पूरे चिकनाये। ये बेलनाकार या आयताकार से त्रिकोणाकार के बीच होते हैं। अनुप्रस्थ-छेद गोलाकार, चौड़ा अंडाकार या वर्गाकार होता है। इस सेल्ट का मुख्य क्षेत्र पूर्वी भारत है। कुछ उपकरण मध्य भारत में और उससे भी कम संख्या में दक्षिण-भारत में पाये जाते हैं।

सेल्ट प्रकार ६ : ४ से ७ सेंटीमीटर तक लंबाई वाले ये सेल्ट बहुत छोटे होते हैं। पूर्व भारत में प्राप्त कुछ उपकरण अधूरे रूप से चिकनाये, पर काफ़ी पालिश किये गये हैं। दक्षिण के कुछ सेल्ट चिकनाने के पहले फ़्लेकीकृत या खुदखुदे हैं और कुछ में केवल गढ़न और चिकनाहट के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। इन समलंब चतुर्भुजाकार उपकरणों का अनुप्रस्थ-छेद (ट्रान्स्वर्स-सेक्शन) लगभग आयताकार होता है। यह सेल्ट पूर्व भारत में विशेष रूप से और थोड़ा-थोड़ा मध्य और दक्षिण भारत में भी पाया जाता है।

सेल्ट प्रकार ७ : ४ से ७ सेंटीमीटर तक लंबे इस सेल्ट प्रकार के अधिकांश नमूने पूरे चिकनाये और बढ़िया पालिश किये हुए हैं यद्यपि कुछ उपकरणों में चिकनाहट के पहले खुदखुदाने के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। आकार त्रिकोणाकार होता है। अनुप्रस्थ-छेद अंडाकार से आयताकार तक होता है। चौड़ाई, लंबाई के बराबर या कभी-कभी उससे बड़ी ही होती है। यह सेल्ट प्रायः पूर्व भारत में पाया जाता है, हालाँकि कुछ नमूने मध्य और दक्षिण भारत में भी मिले हैं।

सेल्ट प्रकार ८ : ६ से १४ सेंटीमीटर तक लंबाई वाला यह उपकरण कुठार (ऐक्स) रूप में नहीं पाया जाता। यह एक स्कंधीय बसूला-फावड़ा (ऐड्ज़) है। यह गढ़े और खुदखुदे, गढ़े और आंशिक रूप से चिकनाये, और पूरे-पूरे चिकनाये स्वरूपों में उपलब्ध है। यह टेढ़े-मेढ़े तथा सीधे-सुघड़ दोनों आकारों में मिलता है। टेढ़े-मेढ़े उपकरणों का अनुप्रस्थ-छेद अंडाकार और सीधे-सुघड़ उपकरणों का अनुप्रस्थ-छेद आयताकार होता है। मध्यप्रदेश, गोदावरी घाटी और उत्तरी मैसूर में एक-एक उपकरण पाये गये हैं किंतु प्रायः पूर्ण रूप से यह सेल्ट प्रकार पूर्व भारत में ही पाया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन चार सेल्ट-प्रकारों को श्री वोर्मन ने **द्वितीय वर्ग** (Group II) के अंदर सम्मिलित किया है। इस वर्ग के अधिकांश उपकरण या तो पूर्ण रूप से खुदखुदे (पेक्ड्) हैं या पूरे-पूरे चिकनाये। साधारणतः यह कहना कठिन है कि एक विशेष उपकरण किस प्रविधि द्वारा बनाया गया है। फिर भी श्री वोर्मन का मत है कि इस वर्ग के सेल्टों को बनाने के लिये प्रथम तथा द्वितीय दोनों प्रविधियाँ इस्तेमाल की गई हैं।

सेल्ट प्रकार ९ : इसकी लंबाई ८ से १८ सेंटीमीटर तक पाई गई है। यह गढ़े और आंशिक रूप से चिकनाये और पूरे-पूरे चिकनाये रूपों में उपलब्ध है। इसका आकार समलंब चतुर्भुजाकार होता है और अनुप्रस्थ-छेद आयताकार। यह सेल्ट प्रकार केवल पूर्वी भारत में ही पाया जाता है।

सेल्ट प्रकार १० : ९ से १२ सेंटीमीटर तक लंबे होते हैं। अधिकतर उपकरण पूरे-पूरे चिकनाये होते हैं हालाँकि कुछ गढ़े और आंशिक रूप से चिकनाये नमूने भी पाये गये हैं। लंबे और पतले या छोटे और चौड़े रूपों में भी आकार आयताकार ही होता है। अनुप्रस्थ-छेद (ट्रान्स्वर्स सेक्शन) भी आयताकार होता है। यह प्रकार पूर्व भारत में ही सीमित है।

सेल्ट प्रकार ११ : ५ से १८ सेंटीमीटर तक लंबाई वाले बसूला-फावड़ा (ऐड्ज़) उपकरण बहुत बिरले ही मिलता है। इसके नमूने गढ़े और आंशिक रूप से चिकनाये या पूरे-पूरे चिकनाये रूपों में पाये जाते हैं। त्रिकोण-से आकार वाले इन उपकरणों का अनुप्रस्थ-छेद लगभग आयताकार होता है। यह सेल्ट केवल उड़ीसा में पाया जाता है।

सेल्ट प्रकार १२ : लंबाई ७ से १३ सेंटीमीटर तक होती है। गढ़े और आंशिक रूप से चिकनाये, तथा पूरे-पूरे चिकनाये दो स्वरूप साधारणतः पाये जाते हैं। समंत-अंत चिपटा, किनारे मुड़े हुए होते हैं जो कार्यांग के निकट दोनों ओर फैल कर फरसे का-सा रूप धारण कर लेते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह सेल्ट प्रकार किसी धातु के नमूने की नक़ल होगा। अनुप्रस्थ-छेद लगभग आयताकार होता है। यह सेल्ट प्रकार केवल पूर्वी भारत में पाया जाता है।

तृतीय वर्ग (Group III) के इन चार सेल्टों में चिकनाहट आधे से अधिक भाग में की गई होती है और प्रायः सुन्दर पालिश भी की रहती है। इस वर्ग के उपकरणों के निर्माण में द्वितीय प्रविधि काम में लाई गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पत्ति की समस्या

ऊपर के पृष्ठों में हमने भारतीय (तथाकथित) 'नवपाषाण' प्रतिमान के बारे में अब तक उपलब्ध तथ्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। विभिन्न भारतीय 'नवपाषाण' उद्योगों की उत्पत्ति और परस्पर संबंध प्रस्तुत करने के लिये और स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इस संबंध में अपना प्रस्तुत करने की अपेक्षा हम तटस्थ रह कर अन्य प्रागितिहासज्ञ के मत को बताना ही अधिक उचित समझते हैं।

श्री कृष्णास्वामी ने भारतीय 'नवपाषाण' प्रतिमान को चार प्रकार के प्रादेशिक 'नवपाषाण' संस्कृतियों में विभाजित करना पसंद किया है। उन्होंने अपनी 'नवपाषाण' संस्कृति A में काली कपास-मिट्टी में पुष्पित-पल्लवित उन उद्योग-स्थलों को सम्मिलित किया है जो दक्खन ट्रैप प्रदेश में पश्चिमी मध्य प्रदेश राज्य और पश्चिमी भारत में पाये गये हैं। इस संस्कृति के विभिन्न उद्योगों के स्थानीय स्वरूप के उपरांत भी मिट्टी के रंगे बर्तन, ताँबे-काँसे के एकाध औज़ार और समानान्तर किनारे वाले 'रिबन-फ्लेक ब्लेड आदि ऐसे सार्वभौम लक्षण हैं जो प्रायः सभी उद्योग-स्थलों (साइट्स्) में देखे जाते हैं। उत्तरी दक्खन ट्रैप क्षेत्र में नगड़ा, अहार, महेश्वर, त्रिपुरी, बहाल, नासिक, जार्वे, नेवासा-आदि उद्योग-स्थल सम्मिलित किये जा सकते हैं। ये अपने मिट्टी के रंगे बर्तनों और धातुयुगीन लघुपाषाण-नवपाषाण उद्योगों के लिये प्रसिद्ध हैं। दक्षिणी ट्रैप क्षेत्र के मास्की, ब्रह्मगिरि और संगनकल्लू-आदि 'नवपाषाण' उद्योगों में लघुपाषाण उपकरणों के साथ प्रस्तरकुठारों (स्टोन ऐक्सेज़) का महत्त्व बढ़ता जाता है। दक्षिण के 'नवपाषाण सेल्ट संस्कृति के संपर्क में आने पर यह होना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। श्री कृष्णस्वामी का यह मत है कि नेवासा के समानान्तर किनारे वाले ब्लेड और पालिशकृत कुठार तथा बहाल और जार्वे के मृतक-भाण्ड (बरियल-अर्न्स) उत्तरी और दक्षिणी दक्खन ट्रैप उद्योगों के संबद्ध होने की ओर संकेत करते हैं।[९]

फ्रांस में नवपाषाण समय के अंत तक, एजियन् Aegean) में प्राक्-माइसेनियन (Pre-Mycenean) काल में, तुर्की में मध्य ताम्रयुग में तथा पश्चिमी एशिया के उपजाऊ **अर्धचन्द्राकार प्रदेश** (Fertile Crescent) के जेरिको ((Jericho)) आदि नवपाषाण स्तरों के समय तक और पश्चिमी

---

९. वही, पृष्ठ १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाकिस्तान, मध्य और पश्चिमी भारत तथा कर्नाटक क्षेत्रों के धातुयुगीन 'नवपाषाण' (Chalcolithic Neolithic) उद्योग-स्थलों में समानान्तर किनारे वाले रिबन-फ़्लेक-ब्लेड उद्योग पाया गया है। इस उद्योग में एक नवीन प्रविधि अपनाई गई जिसे अंग्रेजी में Crested-guiding-ridge-flaking कहा जाता है। भारत में (धातुयुगीन) 'नवपाषाण' संस्कृतियों में समानान्तर किनारे वाले रिबन-फ़्लेक-ब्लेड बनाने के लिये यह प्रविधि इस्तेमाल की गई है। मध्य और पश्चिमी भारत के अधिकांश उद्योग-स्थलों (साइटस्) पर इस (धातुयुगीन) नागरिक समानान्तर किनारे वाले ब्लेड उद्योग के साथ-साथ आखेट अर्थ-व्यवस्था के अवशेष रूप लघुपाषाण [अर्धचन्द्राकार, समलंब चतुर्भुजाकार (ट्रैपीज़ाएड्) तथा पार्श्वगढ़ित (बैक्ड) ब्लेड आदि] भी पाये गये हैं। चूंकि समानान्तर किनारों वाले आद्य-'नवपाषाण' ब्लेड उद्योगों या हड़प्पा और उत्तर हड़प्पा (धातुयुगीन) 'नवपाषाण' उद्योगों में ढालवें पुनर्गढ़न द्वारा बनाये गये पार्श्वगढ़ित ब्लेड नहीं पाये गये हैं इस कारण इन धातुयुगीन 'नवपाषाण' उद्योगों के और पुराने होने की संभावना प्रतीत होती है। श्री कृष्णस्वामी का मत है कि पश्चिम में कहीं पनपे इन 'नवपाषाण' उद्योगों की उत्पत्ति दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के प्रायः आरंभ में ही हुई होगी।[१०]

श्री कृष्णस्वामी ने अपने 'नवपाषाण' संस्कृति B के अंतर्गत दक्षिण भारत (कर्नाटक) क्षेत्र के नोकीले समंत-कुठार (प्वाइंटेड् बट् ऐक्स) उद्योग को सम्मिलित किया है। उसी क्षेत्र में उत्पन्न हुए इस उद्योग में आरंभ में उत्तर-पुरापाषाण (लघुपाषाण) फ़्लेकीकरण प्रविधियों का प्रभाव रहा। अपनी अवधि के उत्तरार्द्ध में इस कुठार उद्योग ने रिबन-फ़्लेक-ब्लेड और मिट्टी के रंगीन बर्तनों को आत्मसात् कर लिया। श्री कृष्णस्वामी की 'नवपाषाण' संस्कृति D में कश्मीर का बुज़हाम उद्योग सम्मिलित है। इसकी उत्पत्ति का सूत्र अभी भी ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हो सका है।

श्री कृष्णस्वामी यह सोचते हैं कि उनके 'नवपाषाण' संस्कृति C, जो आसाम एवं बंगाल-बिहार-उड़ीसा में पायी गयी है, के तीन पृथक् अंश हैं। पहले अंश में फ़्लेकीकरण, घर्षण और पालिश द्वारा बनाये गये गोलाकार समंत वाले कुठार हैं जो देश के अन्य 'नवपाषाण' कुठारों में संबद्ध नहीं लगते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेष रूप से मलाया और हिन्दचीन (इण्डोचाइना), में ऐसी नवपाषाण संस्कृति बहुत पुरानी है। अतः श्री कृष्णस्वामी गोलाकार समंत कुठार को दक्षिण-पूर्व एशिया से छोटानागपुर

१०. वही, पृष्ठ १४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तक आया मानते हैं। दूसरे अंश के उपकरणों पर धातु-प्रविधियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। श्री कृष्णस्वामी इसको भी दक्षिण-पूर्व एशिया के ही प्रभाव का परिणाम मानते हैं। तीसरा अंश उत्तर-आर्य-तांब्र संचयों (Copper hoards) का है जो गंगा घाटी में पाये गये हैं। ये ताँबे के वैसे ही उपकरण हैं जैसे पत्थर से बनाये जाते थे। यह तृतीय अंश तो देशी ही था।

भारतीय चिकने प्रस्तर कुठारों (सेल्ट्स्) के वितरण और उत्पत्ति के संबंध में श्री यूगिन् सी० वोर्मन कुछ रोचक निष्कर्षों पर पहुँचे थे। पिछले दस वर्षों में काफ़ी पुरातात्त्विक साक्षियाँ एकत्र हुई हैं। इनके आधार पर देश के मध्य, पश्चिमी और दक्षिणी भागों के तथाकथित 'नवपाषाण' प्रतिमान के बारे में बहुत-सी नई बातें मालूम हुई हैं। इन शोधों के परिणाम-स्वरूप श्री वोर्मन के निष्कर्षों में परिशोधन की आवश्यकता प्रतीत होती है। किन्तु हम उनके विचारों को उसी रूप में प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। यहाँ यह बतला देना आवश्यक होगा कि कृष्णस्वामी की 'नवपाषाण' संस्कृति A के बारे में वोर्मन को कुछ भी पता नहीं था। इसके अतिरिक्त उनके विभाजन और वर्गीकरण का मुख्य आधार 'नवपाषाण' चिकनाये सेल्ट थे न कि लघुपाषाण और मिट्टी के बर्तन। यदि हम 'नवपाषाण' सेल्टों के वितरण और उनके प्रकार और निर्माण-वैशिष्ट्य को ध्यान में रख कर भारतीय 'नवपाषाण' प्रतिमान का अध्ययन करना चाहें तो वोर्मन के विचार अभी भी बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे।

श्री वोर्मन ने यह स्वीकार किया है कि उनके निष्कर्षों की कोई पुरातात्त्विक आधार-भूमि नहीं है। लखनऊ और गोआ को जोड़ने वाली कल्पित रेखा से यदि देश के दो––पूर्वी और पश्चिमी––भाग किये जायँ तो, श्री वोर्मन का मत है कि, चिकने प्रस्तर कुठार केवल पूर्वी अर्धांश में ही मिले हैं। वोर्मन के प्रथम वर्ग के कुठार पूर्वी भाग में काफ़ी दूर-दूर तक फैले हैं। ये उपकरण साधारण हैं और बहुत परिष्कृत प्रविधि द्वारा नहीं बनाये गये हैं। इनमें चिकनाहट आधे से कम भाग में ही होती है। द्वितीय वर्ग के सेल्ट प्रथम वर्ग के सेल्टों की अपेक्षा आकार-प्रकार में काफ़ी विकसित हैं, अपेक्षाकृत अधिक सावधानी से बनाये गये हैं और उनका अधिक अंश चिकनाया, खुदखुदा या पालिशकृत होता है। इस वर्ग के उपकरण मुख्य रूप से तो पूर्वी भारत में ही पाये गये हैं, यद्यपि एकाध उपकरण मध्य और दक्षिण में भी मिले हैं। तृतीय वर्ग के उपकरण तो केवल पूर्वी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत में ही पाये जाते हैं। काफी सावधानी और दक्षता से बनाये गये ये सेल्ट इस बात के प्रतीक हैं कि इनके निर्माता पूर्ववर्त्ती वर्गों के सेल्ट-निर्माताओं की अपेक्षा प्रस्तर-उपकरण-निर्माण-वैशिष्ट्य के अधिक अच्छे ज्ञाता और अधिकारी रहे होंगे। इन तथ्यों के आधार पर श्री वोर्मन ने यह मत प्रवर्तन किया है कि प्रथम वर्ग के सेल्ट सबसे पुराने और सबसे बुनियादी हैं। द्वितीय वर्ग की माध्यमिक अवधि में कहीं पूर्व से नवीन निर्माण-प्रविधि और नवीन सेल्ट-प्रकारों का प्रवेश हुआ था। तृतीय वर्ग के, सबसे हाल के और सबसे अधिक विकसित, सेल्ट भारत में पूर्व से आये हुए और सबसे आधुनिक प्रकार हैं। इस आधार पर श्री वोर्मन यह कल्पना करते हैं कि भारत के चिकने प्रस्तर ('नवपाषाण') कुठारों का पश्चिमी एशिया के स्थान पर पूर्वी एशिया के सेल्टों से सादृश्य होना स्वाभाविक होगा। उनका मत है कि भारत ही नहीं बल्कि पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया का सुलझाव हिन्द-चीन (इण्डो-चाइना) के बैक्सोनीय-संस्कृति-समूह (Bacsonian culture-complex) में मिलता है। उन्हें पुष्ट स्तरीय प्रमाण मिले हैं जिनके आधार पर वे यह कह सकते हैं कि भारत में जो सेल्ट-प्रकार पाये गये हैं वे हिन्द-चीन में उसी अनुक्रम (सीक्वेन्स्) में विद्यमान थे जिस क्रम में भारत में उनके प्रवेश की कल्पना की गयी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १४

भारतीय महापाषाण स्मारक

महापाषाण (Megalith) शब्द (ग्रीक से Megas=महा; Lithos=पाषाण) की रचना उन्नीसवीं शताब्दी के पुराविदों ने पश्चिमी और उत्तरी यूरोप के कुछ जाने-पहचाने और सरलतापूर्वक परिभाषित स्मारकों के लिये की थी। इनको **'महापाषाण'** कहा क्योंकि सबसे पहले जिन स्मारकों का पुराविदों को पता चला वे बहुत ही बड़े-बड़े पत्थरों से बनाये गये थे। बाद में मालूम हुआ कि बिना गारे-चूने (ड्राई मैन्सॉन्री) के छोटे-छोटे पत्थरों से बनाये गये तथा भूमि के अन्दर चट्टानों में काटी गयी कब्रों के नक्शे भी ठीक वैसे ही हैं जैसे बड़े पत्थरों से बने स्मारकों के। ज्यों-ज्यों और खोजें होती गयीं त्यों-त्यों महापाषाण संबोध (कॉन्सेप्ट) के अन्तर्गत उन रचित और खोदे गये स्मारकों को भी सम्मिलित करना आवश्यक जान पड़ा जिन्हें शाब्दिक अर्थ के आधार पर सम्मिलित नहीं किया जा सकता था। तो फिर महापाषाण हैं क्या? सभी महापाषाण बड़े-बड़े पत्थरों से नहीं बनाये जाते हैं और न सभी बड़े-बड़े पत्थरों से बनी इमारतें महापाषाण हैं। यह सच है कि महापाषाण पत्थरों और कभी-कभी बड़े पत्थरों के ही बनते हैं किन्तु केवल पदार्थ और आकार के ही आधार पर महापाषाण स्मारकों का अन्य प्रकार के स्मारकों से पार्थक्य संभव नहीं है। पत्थरों की रुक्षता (pierres brutes) को भी निश्चित लक्षण नहीं माना जा सकता; क्योंकि जहाँ कुछ महापाषाण प्राकृतिक अवस्था में रूक्ष पत्थरों से बने मिलते हैं, वहीं गढ़े हुए पत्थरों का भी उपयोग पाया जाता है। वस्तुओं की परिभाषा और वर्गीकरण में 'कार्य' का बहुत महत्व होता है किन्तु महापाषाण शब्द का उपयोग उन रचनाओं के लिए किया जाता है जिनके रचयिता प्रायः प्रागच्छर (Preliterate) लोग थे। इस कारण ये रचनाएँ किस उद्देश्य से और कैसे बनायी गयी थीं इसके सम्बन्ध में लिखित विवरण उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त इनके रचयिताओं के मृत होने के कारण ये स्मारक कौन से कार्य-संपादन के लिये बनायी गयी थीं इसके बारे में हमारा ज्ञान अधूरा ही रह जायगा। प्रो० चाइल्ड का अनुमान है कि महापाषाण किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंध-विश्वास सम्बन्धी[1] आनुष्ठानिक अथवा धार्मिक उद्देश्य से बनाये जाते थे।

चूंकि इन स्मारकों के ठीक-ठीक कार्य के सम्बन्ध में कह सकना संभव नहीं है इसलिए इनके साथ संबद्ध लक्षण-समूहों पर ही निर्भर करना पड़ेगा। प्रायः सभी महापाषाणों के साथ कुछ सामग्रियाँ रखी मिलती हैं किन्तु इन्हें भरोसे का प्रमाण नहीं कहा जा सकता। सभी महापाषाण कब्रों में एक ही प्रकार के लक्षण-समूह—मिट्टी के बर्तन, हथियार उपकरण और गहने आदि—नहीं प्राप्त हुए हैं, इस कारण वे एक ही संस्कृति के नहीं कहे जा सकते हैं। इन स्मारकों के रचयिता एक ही प्रजाति के नहीं थे। इन सबके अतिरिक्त निर्माण-काल भी उपयुक्त पथ-प्रदर्शक नहीं कहा जा सकता। जहाँ भारत की महापाषाण सामग्रियों में लोहे के उपकरण और लौह-युगीन चाक पर बने मिट्टी के बर्तन सम्मिलित हैं, वहाँ उत्तर-पश्चिमी यूरोप के महापाषाण स्मारक पाषाण युग के माने जाते हैं। चाइल्ड आदि पुराविदों का अनुमान है कि बहुत ही प्राचीन (पाषाण) युग में पुर्तगाल के किसी उत्तरी कोने में महा-पाषाण कब्रें पहले बनायी गयी होंगी। वहाँ से ताम्रयुग में वे स्पेन पहुँचे और एजीयन (Aegian) प्रदेश में तो इनका प्रवेश और बाद, कांस्य युग में ही हुआ होगा। उपलब्ध साक्षियों के आधार पर ऐसा अनुमान किया जाता है कि उपर्युक्त क्षेत्र के प्रमुख महापाषाण स्मारक २००० ई० पूर्व से पहले ही बनाये गये होंगे। अतः उत्तरी पश्चिमी यूरोप और सम्बद्ध क्षेत्रों के बनाये जाने की अवधि ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्दी के मध्य से द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य के बीच का समय रहा होगा। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि उपर्युक्त अवधि को कभी भी पुरानी दुनिया के सभी महापाषाण स्मारकों के लिए ठीक नहीं कही जा सकती है।

यूरोप के लिए प्रस्तावित उपर्युक्त अवधि के अन्तर्गत चाइल्ड सामुदायिक रूप से दफनाने की क्रिया को महापाषाणों के प्रमुख परिचयात्मक लक्षण मानते हैं। प्रायः सभी स्मारक सामुदायिक शवस्थान हैं। कम से कम इतना तो निश्चित है कि इन शवस्थानों में अनेक शव पाये जाते हैं। जहाँ तक मालूम है ये शव एक साथ नहीं बल्कि कई बार में प्रवेश कराये गये प्रतीत होते हैं किन्तु अन्य लक्षणों के ही समान सामुदायिक दफनाने की क्रिया के आधार पर ही इन स्मारकों की पूर्ण परिभाषा देना संभव नहीं है।

---

१. वी० जी० चाइल्ड, मेगालिथ्स्, ऐन्शियन्ट इंडिया नं० ४, १९४७-१९४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इतना तो है कि इनके रचयिता प्रायः प्रागच्छर लोग थे जिनकी प्रजाति एक नहीं थी यह उपलब्ध अस्थ्यावशेषों से पता चलता है। काफी प्राचीन पाषाणकाल से लौह-युग की अवधि में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बनाये गये ये स्मारक अवश्य ही किसी अंध-विश्वास अथवा धार्मिक या आनुष्ठानिक उद्देश्य से रचे गये होंगे। किन्तु यह भी केवल काल्पनिक है क्योंकि इन स्मारकों की उत्पत्ति अभी भी एक पहेली ही बनी हुई है। हालाँकि यह सच है कि ऐसे स्मारकों का स्पेन में काफी विकास हुआ था। वहीं से वे फ्रांस में गये थे और शायद पूरे उत्तरी यूरोप में वे पश्चिम की ही ओर से गये थे। इनसे इतना ही पता चलता है कि उस समय मृतकों के सम्मान की कोई धार्मिक प्रथा सी थी। इसमें शवों को वन्य-पशुओं से क्षत-विक्षत होने या बड़े-बड़े पत्थरों के नीचे चूर-चूर हो जाने से बचाने की चेष्टा की जाती थी। यूरोप में **डाल्मेन** और **प्रवेशन छिद्र** (Port hole) संस्कृति का प्रसार समुद्र मार्ग से ही हुआ था लेकिन किसने कहाँ से प्रसार आरंभ किया यह बतलाना संभव नहीं है। प्रो० चाइल्ड का मत है कि भूमध्य सागर, प्रशान्त महासागर और उत्तरी सागर के तटीय प्रदेशों के निकट ही पहले महापाषाण इमारतें बनायी गयी थीं। चाइल्ड ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि डाल्मेन और प्रवेशन छिद्र वाली पटिया समुद्र के मार्ग से ही भारतीय प्रायद्वीप तक पहुँचा होगा। एक बात उल्लेखनीय है। महापाषाणों का जैसा विस्तार चाइल्ड के लेखों में मिलता है उसके अनुसार वे पश्चिम में तटीय प्रदेशों में पाये जाते हैं जबकि एशियायी डाल्मेन तटीय क्षेत्रों में नहीं पाये गये हैं। भारत में तो यह संस्कृति तटीय प्रदेशों को छोड़ भीतर के प्रायद्वीपीय प्रदेश में प्रवेश कर गयी थी।

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग को एक सर्वेक्षण में भारतीय महापाषाण स्मारकों की कुछ सार्वभौम विशेषताओं का पता चला है। इनका स्वरूप ही नहीं बल्कि उनकी स्थिति भी भूतत्व और जलवायु से प्रभावित प्रतीत होती है। महापाषाण प्रायः ऊँचे चट्टानी स्थानों पर बनाये गये मिलते हैं। शायद इसलिए कि उन पहाड़ियों से निर्माण-सामग्री सरलता से और काफी मात्रा में मिल जाती होगी। प्रायः प्रत्येक स्थान पर पहाड़ियों से मिले एक या एक से अधिक सिंचाई तालाब मिलते हैं। नीची भूमि पर स्थित होने के कारण ये तालाब प्रायः वर्ष भर जल-सिक्त रहते होंगे। इस प्रकार ये सिंचाई के अनवरत स्रोत थे और पास के कृषि योग्य भूमि के उपयोग को संभव करते थे। यह देखा गया कि जहाँ जितने ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़े सिंचाई तालाब हैं वहाँ महापाषाणों के उतने ही बड़े समूह मिलते हैं। बल्कि भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने चट्टानों या पहाड़ियों और तालाबों के सहसम्बन्ध के आधार पर अनेक स्थानों पर महापाषाणों की विद्यमानता का पता लगाया। इससे यह कहा जा सकता है कि महापाषाण स्मारक वहीं बनाये गये जहाँ लोग निवास करते थे। उन दिनों लोगों के निवास करने के उपयुक्त स्थान वे थे जहाँ काफी वर्षा होने के कारण सिंचाई संभव थी।

प्रायः सभी भारतीय महापाषाणों में संबंधित सामग्रियों में मिट्टी के बर्तनों का स्थान प्रमुख है। प्रत्येक स्मारक में विभिन्न आकार-प्रकारों के मिट्टी के बर्तन काफी संख्या में पाये गये हैं। पूरे दक्षिण भारत में महापाषाणों के साथ काले एवं लाल भाण्ड (Black and red ware) नामक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन पाये गये हैं। ये भाण्ड प्रायः पतले होते हैं। हालाँकि ये बनाये चाक पर गये हैं लेकिन कम पके होने के कारण कमजोर से लगते हैं। इन पर पालिश भी की गयी है। इन बर्तनों को औंधे मुँह पकाया जाता था। जहाँ इनका आग से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता था, जैसे भीतर का भाग और मुँह के पास का बाहरी भाग, वहाँ तो ये बर्तन काले पड़ जाते थे। अन्य स्थानों पर रंग लाल हो जाता था।

एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि जिस किसी महापाषाण स्मारक में प्रवेशन-छिद्र (Port hole) है वह सदा पूर्वी पटिया में बना मिलता है। जहाँ डाल्मेन या डाल्मेननुमा वयिन् (डाल्मोयेड सिस्ट) है वहाँ प्रवेश द्वार या प्रवेश मार्ग के रूप में पत्थर पूर्व की ओर रखे मिलते हैं। यह अवस्था चिंगलपत, ब्रह्मगिरि तथा शानूर सभी स्थानों में पायी जाती है। इसके साथ ही डाल्मेननुमा **वयिन** के कमरे लंबाई की ओर से पूर्व-पश्चिम की दिशा में आमुख पाये जाते हैं। ये सब तथ्य सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

मृतकों की अन्त्येष्ठि-क्रिया का वर्णन दक्षिण भारत के आरंभिक ऐतिहासिक कालीन साहित्य में काफी मिलते हैं। ईसवी सन् के पहले ३०० वर्षों में लिखे गये संगम साहित्य में तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व और तृतीय शताब्दी ईस्वी सन् के बीच की अवधि की संस्कृति का चित्रण मिलता है। इसमें उन स्मारकों का भी वर्णन मिलता है जिन्हें साधारण रूप से हम महापाषाण कहने के अभ्यस्त हैं। तामिल भाषा में मृतक भाण्ड में रखने की प्रक्रिया को तालि (Tali) या इमात्तालि (Immattali) कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रस्तर-वृत्तों (Stone Circles) या कड़किडइ (Karkidai) और नड्डुकल्ल (Menhir) की विद्यमानता की ओर संकेत मिलता है।[२]

दक्षिण भारत के महापाषाणों के रचयिता कौन लोग थे और उनकी प्रजाति क्या थी यह अभी भी समस्या बनी हुई है। मद्रास राज्य के तिरुनेल्वेली जिले के आदिचनल्लूर नामक स्थान पर मृतक-भाण्डों में दफनाने का प्रचलन बहुत अधिक था। पुरातत्त्वविद् अभी भी इनको महापाषाण स्मारकों की श्रेणी में निःसंकोच सम्मिलित करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। जुकरमैन ने कुछ आदिचनल्लूर मानव अस्थि-पञ्जरों का परीक्षण किया था। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वे अस्थि-पञ्जर द्राविड़ नस्ल के लोगों के हैं। अन्य महापाषाण स्थलों पर मिले अस्थि-पञ्जरों का अभी तक परीक्षण नहीं हो सका है, इस कारण कुछ कहना संभव नहीं है।

प्रोफेसर फ्यूरर हैमेण्डार्फ (Furer-Haimendorf) का अनुमान है कि दक्षिण भारतीय महापाषाण किसी पश्चिमी स्रोत से उद्भूत होकर सर्व-प्रथम पश्चिमी तट पर आये थे। उनका संभाविक उद्गम क्षेत्र भूमध्य-सागरीय प्रदेश था। शायद यह प्रसार (डिफ्यूज़न) प्रवेशन-छिद्र वयिन (पोर्ट होल सिस्ट) के रूप में हुआ था। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भूमध्य सागरीय प्रदेश के महापाषाण द्वितीय ईसापूर्व सहस्राब्दी में बनाये गये थे और भारतीय महापाषाण इस्मारक ईस्वी सन् से कुछ शताब्दी पहले बने होंगे। भूमध्य सागरीय प्रदेश से भारत आने में इनको इतना समय कैसे लग गया। इस समस्या का प्रोफेसर हैमेन्डार्फ कोई समाधान नहीं बताते हैं। सर मार्टिमर ह्वीलर ने यह बताया था कि ब्रह्मगिरि **प्रस्तर कुठार** (नवपाषाण) संस्कृति से कहीं विकसित संस्कृति वाले महापाषाण निर्माता ब्रह्मगिरि में कहीं बाहर से आये थे। इससे सहमति प्रकट करते हुए डा० हैमेण्डार्फ दक्षिण भारत महापाषाण निर्माताओं को द्रविड़ परिवार के भाषाभाषी बताते हैं। यह अत्यन्त रोचक तथ्य है कि महापाषाण दक्षिण भारत में ही मिले हैं और पूरे दक्षिण भारत में द्रविड़ परिवार की ही एक या दूसरी भाषा बोली जाती है, जिसे डा० हैमेण्डार्फ के मतानुसार, महा-पाषाण निर्माता अपने साथ लाये थे। चूंकि ये अभ्यागत प्रभावशाली थे अतः यहाँ के आदिम निवासियों की बोलियों से प्रभावित नहीं हुए और धीरे-

---

२. के० आर० श्रीनिवासन्, १९४६, "मेगालिथिक बरियल्स ऐण्ड अर्न-फील्ड्स आव् साउथ इंडिया इन द' लाइट आव् तामिल लिटरेचर ऐण्ड ट्रेडिसन्, ऐंशियन्ट इंडिया नं० २।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धीरे पूरे दक्षिण प्रदेश में अपनी भाषाएँ फैला दी। उनका अनुमान है कि ब्रह्मगिरि के आसपास अशोक के जो शिलालेख हैं वे लौहयुगीन महापाषाण निर्माताओं के लिए ही रचे गये होंगे न कि आदिम नवपाषाण लोगों के लिए। यदि यह तथ्य मान लिया जाय कि महापाषाण निर्माता द्रविड़ भाषाभाषी थे तो निश्चय ही वे ३०० ईसा पूर्व से पहले आ गये होंगे। ईस्वी सन् के पहले कुछ शताब्दियों में तामिल भाषा के संगम-साहित्य के रूप तक आने में निश्चय ही कुछ समय लगा होगा। डा० हैमेण्डार्फ का मत है कि भारत में द्रविड़ **अप्रवासन** (Immigration) लगभग ५०० ईसा पूर्व में हुआ होगा। श्री डी० एच० गार्डन ने लौहयुगीन लोगों के दक्षिण भारत में आगमन का संभावित समय ७०० ईसा पूर्व से ४०० ईसा पूर्व के बीच की अवधि बताया है।

प्रो० हैमेण्डार्फ का मत है कि महापाषाण निर्माता द्रविड़ लोग उत्तर भारत से दक्षिण नहीं आये होंगे। यह देश के इन दो भागों की विवाह प्रथाओं से पता चलता है। दक्षिण के मामा-फूफी की सन्तानों के बीच विवाह-प्रथा से उत्तर भारत सर्वथा अछूता है। उनके अनुसार महाराष्ट्र वह सीमान्त प्रदेश था जहाँ दोनों प्रकार के लोगों की मुठभेड़ और दो संस्कृतियों का मिलाप हुआ होगा। उत्तर भारत में महापाषाण स्मारकों का एकान्त अभाव और किसी भी उत्तरी भाषा का द्रविड़ परिवार से सम्बन्ध न होना इस बात की पुष्टि है कि महापाषाण उत्तर से दक्षिण नहीं आये थे। बलूचिस्तान की ब्रहुयी भाषा में द्रविड़ अंशों की विद्यमानता से डा० हैमेण्डार्फ इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कराची के पास पाये गये महापाषाण दक्षिण भारतीय केन्द्र से तटीय मार्ग से वहाँ गये होंगे। उन्होंने यह भी विचार व्यक्त किया है कि द्रविड़ लोगों के दक्षिण भारत आने के पहले वहाँ के मूल निवासी आदिम खाद्य एकत्र करने वाले **आधे खानाबदोश** लोग थे। इनके बाद नवपाषाण लोग आये और तब लौहयुगीन महापाषाण निर्माताओं का आगमन हुआ। वर्तमान चेञ्चू और काडार लोगों को प्रो० हैमेण्डार्फ लघुपाषाण उपकरण बनाने वालों की सन्तान मानते हैं। इन तथ्यों की पुष्टि होना अभी बाकी है।[3]

---

३. के० आर० श्रीनिवासन्, ऐण्ड एन० आर० बैनर्जी, १९५३, सर्वे आव् साउथ इंडियन मेगालिथ्स, ऐन्शियण्ट इंडिया नं० ९। तथा

एन० आर० बैनर्जी, १९५६, द मेगालिथिक प्रोब्लेम्स ऑव् चिंगलपेत् इन द लाइट्स ऑव रीसेण्ट एक्सप्लोरेशन, ऐन्शियण्ट इंडिया, नं० १२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सभी भारतीय महापाषाण एक ही प्रकार के नहीं हैं। कभी-कभी तो एक ही स्थान के स्मारकों के रचना प्रतिमानों और नक्शों में काफी अन्तर पाया जाता है। फिर भी संक्षेप में भारतीय महापाषाण संस्कृति की कुछ सार्वभौम विशेषताएँ हैं। लोहे के उपकरणों का प्रयोग चाक पर बने काले और लाल-भाण्ड, लाशों को सुखाने के वाद सामूहिक शवस्थानों में डालना आदि विशेषताएँ प्रायः सभी महापाषाग स्मारकों और आदिचनल्लूर **मृतक भाण्डों** (Urn-burials) से सम्बन्ध मिलती है।[४]

अव हम दक्षिण भारत के कुछ प्रसिद्ध महापाषाण-स्थलों के प्रमुख स्मारकों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करेंगे। यह कहना नहीं होगा कि हमारा मुख्य आधार सर मार्टिमर ह्वीलर,[५] श्रीकृष्णस्वामी,[६] श्री बी० बी० लाल,[७] श्री बी० के० थापड़,[८] श्रीनिवासन और बनर्जी,[९] श्री एन० आर० बैनर्जी,[१०] सर्वश्री एन० आर० बनर्जी और के० पी० सुन्दराजन्[११] आदि द्वारा दिये गये सुन्दर वर्णन हैं।

ब्रह्मगिरि—मैसूर राज्य के ब्रह्मगिरि नामक स्थान में खुदाई सर मार्टिमर ह्वीलर के नेतृत्व में १९४७ ई० में की गई थी। यहाँ मुख्य रूप से दो प्रकार के महापाषाण स्मारक पाये गये हैं–(१) **वयिन-वृत्त** (Cist-Circle) वे वयिन् (Cist) हैं जो पत्थरों के एक वृत्त से घिरे रहते हैं।

---

४. के० आर० श्रीनिवासन् ऐण्ड एन० आर० बैनर्जी, १९५३, पाश्वोंद्धरित।

५. आर० ई० एम० ह्वीलर, १९४७-४८, 'ब्रह्मगिरि ऐण्ड चन्द्रावलि, १९४७: 'मेगालिथिक ऐण्ड अडटकल्चर्स इन मैसूर स्टेट' एन्शियण्ट इंडिया नं० ४, पृष्ठ १८०-३१०।

६. वी० डी० कृष्णस्वामी, १९४९, मेगालिथिक टाइप्स आफ् साउथ इंडिया, ऐन्शियण्ट इंडिया नं० ५, पृष्ठ ३५-४५।

७. श्री वी० बी० लाल, १९५०, 'एक्सप्लोरेशंस : द प्रोहिस्टारिक ऐण्ड प्रोहिस्टॉरिक 'आर्कियालोजी इन इंडिया, पृष्ठ १७-५०।

८. बी० के० थापड़, १९५२, 'पोरकलम १९४८, एक्सकवेशन आव् ए मेगालिथिक अर्न-बरियल, ऐन्शियण्ट इंडिया नं० ८, पृष्ठ ३–१६।

९. के० आर० श्रीनिवासन् ऐण्ड एन० आर० बैनर्जी, १९५३, पाश्वोंद्धरित, पृष्ठ १०३–११५।

१०. एन० आर० बैनर्जी, १९५६, पाश्वोंद्धरित, पृष्ठ २१, ३४।

११. एन० आर० बैनर्जी एण्ड के० बी० सुन्दराजन्, १९५९, सानूर १९५०-१९५२, ए मेगालिथिक साइट् इन डिस्ट्रिक्ट चिंगल्पेत्, एन्शियण्ट इंडिया नं० १५, पृष्ठ ४-४२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) **खाई-वृत्त** (Pit Circles) प्रकार के स्मारकों में खाई के चारों ओर एक पत्थरों से बने एक या अधिक वृत्त मिलते हैं। डा० ह्वीलर एक ही क्षेत्र में एक ही सामग्रियों से युक्त इन स्मारकों को एक ही संस्कृति का अंग मानते हैं।

वयिन्-वृत्त (सिस्ट-सर्किल) : वयिन् (सिस्ट) बनाने के लिए पहले जमीन में एक खाई खोदी जाती थी। इसके अन्दर चार खड़े पत्थर की पटिया इस तरह रखी गयी मिलती हैं कि एक पत्थर का अंतिम छोर पास वाली पटिया के अंतिम छोर से बाहर निकला रहता है। इसके फलस्वरूप बाक्सनुमा वयिन् (सिस्ट) का खाका स्वास्तिक सा लगता है। इसकी फर्श पर एक पत्थर की पटिया बिछी होती है और ऊपर **शीर्ष-प्रस्तर** (Cap-Stone) रहता है। यह शीर्ष प्रस्तर किन्हीं-किन्हीं अवस्थाओं में एक फीट मोटा और १५ फीट तक लंबा होता है। ये वयिन् (सिस्ट) विभिन्न आकारों के होते हैं। बड़े आकार के स्मारक ५ से ७ फीट तक लंबे, ३ से ५ फीट तक चौड़े और ५ से ६ फीट तक गहरे होते हैं। छोटे वयिनों (सिस्ट्स) की लंबाई १½ से २ फुट के बीच, चौड़ाई १ से १½ फीट के बीच और गहराई १ फीट के बीच है। पूर्व की दीवाल (खड़े शिलाफलक) में १–१½ फी० व्यास (diameter) वाला गोल छेद या प्रवेशन छिद्र (Port hole) पाया जाता है। इस प्रवेशन छिद्र तक एक ढलान से पहुँचा जा सकता है जिसमें दोनों ओर सीधे खड़े पत्थरों या बिना जुड़े पत्थरों की दीवाल की दो पंक्तियाँ बनी मिलती हैं। इस वयिन (सिस्ट) की दीवालें बिना जुड़ी पत्थर की दीवालों से घिरी होती हैं जो उनको सहारा भी देती हैं। वयिन् (सिस्ट) ग्रेनाइट के बोल्डरों के वृत्त से घिरे मिलते हैं। जिनके व्यास (डायेमीटर) १६ से २१ फीट तक होते हैं।

फर्श वाली पटिया पर अन्त्येष्ठि क्रिया सम्बन्धी मिट्टी के बर्तन, गुटके (माला के दानें) मालायें और चाकू, हँसिया, कटार, तीर-अग्र और तलवार आदि लोहे के औजार और हथियार रखे मिलते हैं। इस स्तर के ऊपर लगभग ६ इंच मोटी बालू की परत होती है जिस पर मानव अस्थि-पञ्जर के असंबद्ध-अंग (मानव अस्थियाँ और खोपड़ियाँ आदि) एक ढेर के रूप में रखे मिलते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मृतकों के शव कहीं दूसरे स्थान पर सुखाये जाते थे। बाद में सूखे शवों से हड्डियों को एकत्र कर उनको एक साथ ही वयिन-वृत्त (सिस्ट-सर्किल) के अन्दर प्रवेश करा कर प्रवेशन-छिद्र (पोर्ट-होल) बन्दकर दिया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मगिरि का दूसरे प्रकार का महापाषाण स्मारक **खाई-वृत्त**(Pit Circle) कहा गया है। इसमें २०–३१ फीट व्यास (डाएमीटर) वाले ग्रेनाइट बोल्डर के वृत्त हैं जो गोलाकार या अण्डाकार होते हैं। परिवेष्टित खाई भी गोलाकार या अण्डाकार होती है। अण्डाकार खाई का लंबा अंश पूर्व-पश्चिम दिशा में स्थित पाया जाता है। खाइयों के व्यास ८ फीट से १२ फीट तक और उनकी गहराई ६ फीट से ८ फीट तक होती है। प्रत्येक अवस्था में खाई के किनारे तक एक **छिछली दलान** (ramp) द्वारा पहुँचा जा सकता है जिसे पत्थर के दरवाजे और चूना (चूनभ्र) से बन्द किया जाता था। खाई के फर्श पर ४ फीट लंबी और ३ फीट चौड़ी आयताकार जगह घेरते हुए चार पत्थर की पटिया हैं। ऐसा अनुमान है कि पत्थर की ये पटियाँ लकड़ी के खंभे को टिकाये रहते हैं। ये खंभे नहीं बल्कि लकड़ी की अर्थी के पाये थे। खाई की फर्श से २½—३ फीट की ऊँचाई पर मिट्टी की परत पायी गयी है। इसके नीचे मिट्टी के वर्तन, गुरिया, लोहे के सामान और चूड़ियाँ आदि मिली हैं। इसके ऊपर मानव हड्डियों के एकाध टुकड़े पड़े मिले हैं। ऐसा अनुमान है कि काष्ठ की बनी अस्थियों के ऊपर शवों को रखा जाता था। जब वे सूख जाते थे तब हड्डियों को एकत्र कर वयिन-वृत्त (सिस्ट-सर्किल) के अन्दर डाल दिया जाता था। खाई-वृत्तों (पिट-सर्किल्स) में पाये गये हड्डियों के टुकड़े छूटे हुए अंश मात्र हैं।

पूदूकौताई (Pudukkottai)

यह क्षेत्र पहले एक देशी राज्य था और अब मद्रास राज्य का अंग है। यहाँ दो प्रकार के महापाषाण स्मारक पाये गये हैं—(१) **निड़ई-कलतेड्डि** या प्रस्तर-संग्रह—(Cairn type), (२) वयिन् (सिस्ट)। दोनों ही प्रकार के स्मारक प्रस्तर वृत्तों या कड़किडइयों (स्टोन-सर्किल्स्) से घिरे होते हैं।

प्रस्तर-संग्रह-वृत्त या **निड़ई-कल-तेड्डि-वृत्त** (Cairn-circle) में पत्थरों के एक वृत्त के अन्दर एक प्रस्तर संग्रह (केयर्न) अर्थात् पत्थरों का ढेर होता है। प्रस्तर-संग्रह के नीचे एक, दो या कई मृतक भाण्ड (urns) पाये जाते हैं। एक भाण्ड वाले प्रस्तर-संग्रहों (C.U.1) को घेरने वाले वृत्तों का व्यास (डायमीटर) १२ फीट से कम ही होता है। बहुसंख्यक मृतक भाण्डों (C.U.M) के प्रस्तर-वृत्त अपेक्षाकृत काफी बड़े होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक भाण्ड वाले प्रस्तर संग्रह (C.U.1) बहुसंख्यक भाण्ड वाले प्रस्तर-संग्रहों (C.U.M) और वयिनों (सिस्ट्स) के साथ पाये जाते हैं। दो भाण्ड वाले (C.U.2) स्मारक बहुत कम और बहुसंख्यक भाण्ड प्रस्तर-संग्रह (C.U.M) सबसे अधिक संख्या में पाये जाते हैं। बहु-संख्यक भाण्ड प्रस्तर-संग्रह (C.U.M. मल्टिपुल-अर्न-केयर्न) सदा वयिनों (सिस्ट्स) के साथ मिलता है।

पूदूकौताई क्षेत्र का सबसे विशिष्ट महापाषाण स्मारक विभक्त प्रवेशन-छिद्र-वयिन् (Transcepted port hole cist) हैं। इसमें एक वयिन् (सिस्ट) को एक **उदग्र शिला-फलक** (वर्टिकल सेप्टम्) में बाँटा गया है। विभाजक शिला फलक (सेप्टम्) पूर्व-पश्चिम की दिशा में रखा जाता था। आधा वयिन् (सिस्ट) को फिर दो भागों में विभाजित किया गया है किन्तु इस बार **शिला-फलक** (स्लैब) उदग्र नहीं वल्कि फर्श और छत के समानान्तर **क्षैतिज** (हॉरिजाण्टल) अवस्था में रखा गया है। इन दोनों उप-विभागों से संबन्ध विविध उदग्र विभाजक शिला-फलक (वर्टिकल सेप्टम्) में एक के नीचे दो प्रवेशन छिद्र द्वारा रखा जाता होगा। वयिन् (सिस्ट) के अविभक्त अर्द्धांश के पूर्व की ओर एक संबद्ध कमरा बना मिलता है। इन दोनों कमरों का सम्बन्ध भी बीच के शिला-फलक के प्रवेशन-छिद्र (पोर्ट-होल) द्वारा ही स्थापित किया जाता होगा।

चिंगलपत् (Chingleput)

कारोमण्डल तट पर स्थित मद्रास राज्य का यह जिला महापाषाण स्मारकों की भरमार के लिए उल्लेखनीय है। परन्तु यहाँ के महापाषाण की अपनी व्यक्तिगत विशेषता डाल्मेननुमा वयिनो (Dolmenoid Cists) के कारण है जिनमें मिट्टी के बने सपाद कफ़न (Tarracatta legged sarcophagus) सदा रहते हैं। दूसरे प्रकार का महापाषाण स्मारक निड़ई-कल-तेंट्टि (प्रस्तर-संग्रह-वृत्त) है।

डाल्मेननुमा वयिन् (डाल्मेनायड सिस्ट) उत्तरी लैटेराइट क्षेत्रों में भीतर की ओर से गढ़े गये उदग्र शिला-फलकों (Orthostatic stone slabs) से बनाया गया है। इन एक या अनेक उदग्र शिला-फलकों से आयताकार कमरे का निर्माण होता है जो लंबाई की ओर से सदा पूर्व-पश्चिम की दिशा में बना होता है। इस कमरे का अधिकांश जमीन में गड़ा होता है और केवल एक या दो फीट अंश ही जमीन के ऊपर रहता है। इस पर यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
स्मारक डाल्मेन कम और वयिन् (सिस्ट) अधिक है। इसी कारण इसे डाल्मेननुमा वयिन् (डाल्मेनायड सिस्ट) कहा भी गया है। डाल्मेन पूर्णरूप से ज़मीन के ऊपर ही बनाया जाता है और वयिन् (सिस्ट) पूर्णतया नीचे। यह स्मारक बाहर की ओर गढ़े हुए बोल्डरों के वृत्त से घिरा पाया जाता है। इस प्रकार के डाल्मेननुमा वयिन् चिंगलपत् के उत्तरी लैटेराइट क्षेत्र में पाये जाते हैं।

चिंगलपत् जिले के दक्षिणी भाग में ग्रेनाइट चट्टान पाये जाते हैं। यहाँ पर शवस्थान बनाने के लिए जो शिला-फलक काम में लाये गये हैं, उन्हें भीतर से भी नहीं गढ़ा गया है। कमरा ठोस नहीं बन सका है क्योंकि दो उदग्र शिला-फलकों के आपस में मिलने पर भी उनके बीच में कुछ जगह छूट जाती है। इस रिक्त स्थान को पत्थर के टुकड़ों आदि से भर दिया गया है। ऊपर का शीर्ष प्रस्तर (कैप-स्टोन) भी बिना गढ़ा होता है। इस स्मारक का आधा भाग भूमि में गड़ा और आधा भाग उसके ऊपर पाया जाता है। कभी-कभी अधिकांश भाग भूमि में गड़ा रहता है और प्रस्तर-संग्रह (केयर्न) शीर्ष प्रस्तर को भी ढके रहते हैं। बिना गढ़े पत्थरों के बने होने के कारण कमरे सुगठित नहीं हैं। इस कारण उनके किसी निश्चित दिशा में आमुख होने का पता नहीं चलता है। हाँ, इस डाल्मेननुमा वयिनों (डाल्मेनायड सिस्ट्स) के अन्दर के सपाद कफ़न-बाक्स (सर्कोफेगस्) सदा पूर्व-पश्चिम की दिशा में रखे मिलते हैं। ये स्मारक घिरे भी बिना गढ़े प्रस्तर वृत्तों से ही होते हैं। इस क्षेत्र में यही दो प्रकार के महापाषाण-स्मारक (डाल्मेननुमा वयिन्) मिलते हैं।

निडईकल-तेड्डि (प्रस्तर संग्रह)-वृत्त नामक महापाषाण स्मारक पुदूकोताई क्षेत्र के स्मारकों के समान ही हैं। यहाँ भी प्रस्तरवृत्तों (स्टोन-सर्किल) से घिरे प्रस्तर संग्रहों (केयर्न) के नीचे एक भाण्ड वाले (सिंगिल अर्न C.U. 1) दो भाण्ड वाले (केयर्न विद् टू अर्न) और कई भाण्ड वाले (केयर्न विद् मल्टीपुल अर्न) स्मारक मिले हैं। इनके अतिरिक्त मिट्टी के बने सपाद कफन बाक्स (टेराकोटा लेगेड सर्कोफेगस) भी पाये गये हैं। ये चिंगलपत् की विशेषता है और अन्य स्थानों में नहीं पाये जाते हैं। उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों ही क्षेत्रों की **शव-सामग्रियाँ** (Burial contents) एक सी ही हैं। यद्यपि उत्तर में पत्थर गढ़े हुए तथा दक्षिण में प्राकृतिक अवस्था में ही इस्तेमाल किये गये हैं।

इन दो प्रमुख स्मारकों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का स्मारक भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाया जाता है। भूमि के ऊपर मिट्टी का टीला (Barrow) दिखलायी पड़ता है। उसके नीचे लंबे अण्डाकार मृतक-भाण्ड (अर्न) या पकाई मिट्टी के सपाद कफन वाक्स (सर्कोफेगस्) पाये जाते हैं।

चिंगलपत् जिले के दक्षिणी ग्रेनाइट क्षेत्र में शानूर (Sanur) नामक स्थान पर खुदाई करने पर भारत सरकार के पुरातत्व विभाग को पाँच महापाषाण मिले हैं। पहले दो स्मारक डाल्मेननुमा वयिन् (डाल्मेनायड-सिस्ट) हैं। इनका निर्माण चार से सात रुक्ष पत्थरों के उदग्र बोल्डरों (अर्थोस्टैट्स) द्वारा हुआ है। ये बोल्डर तत्कालीन भूमि सतह पर इस तरह गाड़ दिये गये थे कि पंचभुजी कमरा सा बन गया। इन स्मारकों का अधिकांश भूमि के नीचे रहता है। इस कारण शीर्ष प्रस्तर (कैंपस्टोन) वर्तमान भूमि सतह से ऊपर होने से प्रस्तर संग्रह केयर्न की सतह तक पहुँचता है। पूरब की ओर दो उदग्र बोल्डरों के बीच २ या २½ फीट का रिक्त स्थान मिलता है। सर्वश्री बनर्जी और सुन्दरराजन्[१२] इस रिक्त स्थान को ब्रह्मगिरि वयिन वृत (सिस्ट सर्किल) महापाषाणों के प्रवेशन-छिद्र (पोर्ट-होल) के अनुरूप मानते हैं। प्रथम महापाषाण में पाँच पकायी मिट्टी के कफन बाक्स (सरकोफेगस) मिले हैं जिनमें मिट्टी के बर्तन हैं लेकिन मानव अस्थावशेष नहीं है। द्वितीय महापाषाण स्मारक में मानव अस्थियाँ पायी गयी हैं लेकिन मिट्टी के बर्तन नहीं। तृतीय महापाषाण भी डाल्मेननुमा वयिन् (डालमेनायड सिस्ट) है। इसके एक कफन बाक्स (सरकोफेगस) में लगभग ५० मिट्टी के बर्तन, तीन लोहे की चीजें तो मिलती हैं लेकिन मानव-अस्थि पंजर नहीं मिलते। पंचम महापाषाण को निडई-कल-तेट्टि या प्रस्तर संग्रह वृत्त (केयर्न-सर्किल) की श्रेणी में रखा गया है। खुदाई करने पर नीचे एक या अनेक मृतक-भाण्डों (अर्न बरियल्स) के स्थान पर साढ़े सात फीट गहरी खाई मिली। इसमें काफी मिट्टी के बर्तनों, लोहे की चीजों और कौड़ियों, शंखों के गहनों के अतिरिक्त काफी मानव अस्थावशेष मिले जिनमें कई कपाल भी सम्मिलित थे। खाली जगह में भुरभुरी मिट्टी डाली गयी थी और फिर पूरी खाई को दो मिट्टी के स्तरों से बन्द कर दिया गया था। चतुर्थ महापाषाण में डाल्मेननुमा वयिन् (डाल्मेनायड सिस्ट) का सा कमरा पाया गया जिसमें लगभग भूमि की सतह पर सपाद कफन बाक्स (लेगेड् सरकोफेगस) मिला। इस महापाषाण स्मारक में

---

१२. वही, पृष्ठ ७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिट्टी के बर्तन तो मिले लेकिन हड्डियाँ नहीं मिलीं। ऐसा लगता है कि किसी दुर्घटना के कारण इसके अन्दर की सामग्री टूट गयी।

अभी तक हमने कन्नड़ (महागिरि और मास्की) और तामिल (पुदूकोताई और चिंगलपत्) भाषी क्षेत्रों के महापाषाण स्मारकों का ही वर्णन किया है। केरल राज्य को कोचीन क्षेत्र भाषा में नहीं महापाषाण स्मारकों में भी भिन्न है। वैसे तो यहाँ बहुत से ऐसे स्मारक भी पाये गये हैं जो अन्य क्षेत्रों में मिलते हैं। इस क्षेत्र का वैशिष्ट्य इसके **कुदईकल्लु** (Kudai kallus या Hood stones) टोपी कल्लु और **भूमि के अन्दर बने** तडि गुफाओं (Rock-cut-cave) के कारण हैं।

केरल के कोचीन प्रदेश में बीच के लैटेराइट मैदानों में ही मुख्य-मुख्य महापाषाण स्मारक पाये जाते हैं। एक उदग्र शिला फलक वाले स्मारक को नडुकल (Menhir) कहा जाता है। प्रायः लैटेराइट भूमि की सतह से काफी ऊँचाई तक जाने वाले ग्रेनाइट के शिलाफलक उत्तर-दक्षिण की दिशा में गाड़े गये हैं। तटीय क्षेत्रों में भी कुछ नडुकल (मेन्हिर) पाये गये हैं। लैटेराइट मैदानों में कई स्थानों पर इन नडुकलों (मेन्हिर्स) के नीचे मृतक-भाण्ड (अर्न्स) भी पाये गये हैं। यह उल्लेखनीय है कि तट-प्रदेश में तालि या मृतक-भाण्ड (अर्न-बरियल) स्मारक नडुकलों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी पाये गये हैं। कोमल परथल नामक स्थान पर नडुकल-पंक्ति (Alignment) पाई गई हैं जिसमें कई आकार के नडुकल (मेन्हिर) हैं। सबसे बड़ा नडुकल पौने तेरह फीट लंबे, साढ़े सात फीट चौड़े आधार पर और एक फुट शीर्ष पर चौड़े पत्थर का बना है।

तडि-गुफा कोचीन के विशेष स्मारक हैं। साधारण रूप से ऐसे स्मारकों को महापाषाणों की श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया जाता है। किन्तु इस प्रदेश के वयिन् (सिस्ट) और छातानुमा स्मारकों (Monuments of the umbrella series) में जैसी सम्बन्ध अंत्येष्ठि सामग्री पायी गयी है उसी प्रकार के लोहे के औजार और मिट्टी के बर्तन-आदि इन तलि-गुफाओं (Rock-cut-caves) में भी मिलते हैं इसी कारण इनको महापाषाण मृतक स्मारकों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। शायद यह स्मारक इस प्रकार बनाया जाता होगा। पहले चट्टान में सीढ़ियों वाली एक आयताकार सी खाई खोदी जाती होगी। खड़ी दीवाल में खाई की सतह या उससे थोड़ी ऊँचाई पर लगभग डेढ़ फीट वर्ग के आकार का प्रवेश-द्वार खोदा जाता था। यह उल्लेखनीय है कि इस छोटे से मार्ग से ही पूरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुफा का स्वरूप खोद कर तैयार किया जाता था। मुख्य तडि-गुफा का फर्श बाहर की खाई के फर्श की सतह से प्रायः एक या दो फीट नीचे होता है। अधिकतर गुफा का फर्श गोल या गोलाकार और छत गुम्बदाकार होती है। यद्यपि आयताकार फर्श और क्षैतिज (हारिजाण्टल्) छत वाले तडि-गुफाओं के नमूने भी पाये जाते हैं। प्रायः बीच में गोलाकार, आयताकार या वर्गाकार खंभा भी गढ़ा मिलता है। कुछ गुफाओं में छः इंच से दो फीट की ऊँचाई वाले बेंच चट्टान में ही गढ़े मिलते हैं। कुछ में इनका अभाव पाया जाता है। कुछ तडि-गुफायें अनेक कमरों वाली होती हैं। उनमें कभी-कभी मुख्य कमरे के सामने या/और बगल में वैसे ही कमरे गढ़े मिलते हैं।

छातानुमा महापाषाण स्मारकों में पहला स्थान टोपीकल्लु (Topi-kallu) या छाता प्रस्तर (Umbrella Stones) का आता है। यह स्मारक केरल प्रदेश में विशेष आनुष्ठानिक अवसरों पर इस्तेमाल किये जाने वाले छातों से मिलता-जुलता है। छाते के मुख्य छतरी वाले अंश के समान एक **शीर्ष प्रस्तर** (हैट-स्टोन) होता है। आकार में यह शीर्ष प्रस्तर गोल आधार वाले चिपटे शंकु (कोन) सा होता है। इसके किनारे भीतर की ओर मुड़े हुए और गोलाकार होते हैं। छाते के डंडे का बाहरी स्वरूप एक अनुवत्त (पैराबोला) का सा होता है। यह अनुवृत्त (पैराबोला) आधार पर तो चौड़ी गोलाई-सा होता है। ऊपर की ओर यह पतला होता जाता है यहाँ तक कि शीर्ष-प्रस्तर छोटे से चिपटे स्थान पर ही टिका रहता है। यह अनुवृत (पैराबोला) चार पत्थरों से बनाया गया है। भीतर की ओर ये पत्थर इस प्रकार गढ़े होते हैं कि एक साथ वर्ग के कर्ण (डाएग्नल) पर मिलते हैं और बाहर अनुवृत्त (पैराबोला) का चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

दूसरा छातानुमा स्मारक शीर्ष-प्रस्तर (Hood-stone) या कुदईकल्लु या कुदकल्लु (Kudakallu) कहलाता है। इस महापाषाण स्मारक में टोपीकल्लु का सा उदग्र अनुवृत्त (बर्टिकल-पैराबोलिक) आधार नहीं होता। शीर्ष-प्रस्तर सीधे भूमि पर टिका रहता है। यह स्मारक केवल एक पत्थर से बना होता है। यह पत्थर देखने में गुम्बद के आकार का होता है।

एक अन्य छातानुमा महापाषाण स्मारक को बहुसंख्यक शीर्ष-प्रस्तर (Multiple Hood-Stone) कहा गया है। ये न तो पूर्ण रूप से शीर्ष-प्रस्तर (हुड-स्टोन) ही हैं और न टोपीकल ही। एक गोलाई में ५ से १२ तक बड़े-बड़े पत्थर इस प्रकार गाड़े गये हैं कि ऊपर की ओर झुके तो रहते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किंतु एक दूसरे से मिलते नहीं हैं। इस कारण ऊपर थोड़ी जगह बच रहती है। इस स्मारक के पत्थर उसी प्रकार गढ़े गये हैं जिस तरह टोपिकल के चार आधार प्रस्तर गढ़े गये हैं। इस प्रकार के स्मारकों को देखने से पता चलता है कि बीच का या ऊपर का रिक्त स्थान एक बड़ा शीर्ष-प्रस्तर रख कर नहीं किया जाता होगा। भूमि की सतह पर ही वृत्त के बीच में तीन से पाँच तक पत्थर रखे मिलते हैं।

डाल्मेन नामक स्मारकों में विशेष उल्लेखनीय बहुसंख्यक डाल्मेन हैं। एक से अधिक डाल्मेन एक कड़किडइ या प्रस्तर-वृत्त (स्टोन-सर्किल) द्वारा आवृत्त होते हैं। प्रत्येक डाल्मेन चार उदग्र शिला फलकों (आर्थोटैटिक स्लैब्स) और एक क्षैतिज (हॉरिजाण्टल) शीर्ष-प्रस्तर का बना होता है। पूर्व पश्चिम की दिशा में रखे गये डाल्मेन का पैटर्न स्वास्तिक सा होता है। इसके शिला फलक भीतर की ओर बड़ी सावधानी से गढ़े होते हैं। आधे से पौन फीट तक मोटे शिलाफलक जिस कमरे का निर्माण करते हैं वह प्रायः पाँच फीट लंबा, ढाई फीट चौड़ा और सवा दो फीट ऊँचा होता है।

यहाँ कुछ प्रवेशन-छिद्र-वयिन् (पोर्ट-होल-सिस्ट) भी पाये गये हैं। इनको बनाने के लिये पहले जमीन के अन्दर आयताकार खाई-सी खोदी जाती है। फर्श पर एक चार किनारों पर और ऊपर एक ग्रैनाइट के शिला फलक रख कर वयिन्-प्रकोष्ठ (सिस्ट-चैम्बर) बनाया जाता है। पूर्व वाले उदग्र शिला फलक में समलंब-चतुर्भुजाकार प्रवेशनछिद्र (ट्रैपी-जाएडल पोर्ट-होल) काटा जाता है। भूमि की सतह पर यह **भूमिस्थ प्रवेशन छिद्र वयिन्** (अण्डर-ग्राउन्ड-पोर्ट-होल-सिस्ट) कडकिडइ या प्रस्तर वृत्त से निर्देशित होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारिभाषिक शब्दावली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारिभाषिक शब्दावली

अ

अकृत्रिम आघात-स्थल	Natural (unfaceted) striking platform
अज्यामितिक	Non-geometric
अजीव	Azoic
अतिनूतन (काल)	Pliocene
अतिरिक्त-कायिक	Extra-corporeal
अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत	Extra-Peninsular India
अध्यारोहण	Superposition
अध्यारोहण विधि	Law of superposition
अर्वचन्द्राकार (लघुपाषाण)	Crescent; Lunate
अर्धशंकु का चिन्ह	Bulbar scar
अर्धशंकुवाली सतह	Bulbar surface
अनश्वर	Imperishable
अनुकूलीकरण	Adaptation
अनुक्रम	Sequence
अनुत्तम	Inferior
अनुप्रस्थ कोण-ग्रेवर	Transverse angle-graver
अनुप्रस्थ-छेद	Transverse section
अनुप्रस्थ तीराग्र	Transverse arrow-head
अनुप्रस्थ मूंठ-आरोपण	Transverse hafting
अनुवृत्त	Parabola
अप्योपरान्त पुरापाषाण	Opsi-Palaeolithic
अपि-पुरापाषाण	Epi-Palaeolithic
अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि	Indirect percussion technique
अप्रवासन	Immigration
अभिघटन कला	Plastic art
अमरीकी हरिण	*Alces alces*; Moose

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अयनवृत्तीय	Tropical
अलय	Alloy
अलंकरण (सजावट)	Decoration
अवर प्रवालादि (काल)	Ordovincian
अवशेष	Remains
अस्थिरता	Fluctuation
अस्त्राग्र	Point(s)
अंकन कला	Graphic art
अंगार (काल)	Carboniferous
अंडाकार हैण्डैक्स	Ovate handaxe
अंत-मोरेन	End moraine
अंत-स्क्रेपर	End-scraper
अंत-सोहन	Late Sohan
अंतर्मुखी संघात प्रविधि	Inward-blow technique

आ

आघात-स्थल	Striking platform
आत्माभिव्यक्ति	Self-expression
आद्य-ऐतिहासिक	Proto-historic
आद्य-नवपाषाण	Proto-neolithic
आद्य-नूतन (काल)	Eocene
आद्य-मानव	Proto-man
आद्य-लघुपाषाण	Proto-microlith(ic)
आदि	Early
आदि-कल्प	Archaeozoic
आदिनूतन (काल)	Oligocene
आदि-मानव	Early man
आदियुगीन	Early
आदि-सोहन	Early sohan
आदिम	Primitive
आदिम (काल)	Archaean
आदिम घोड़ा	*Equus stenonis*

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदिम भालू	*Ursus arvenensis*
आधार-ग्रैवेल	Basal gravel
आधार-मोरेन	Bottom-moraine
आधुनिक (काल)	Holocene
आधुनिक घोड़ा	*Equus callabus*
ऑरिग्नेशी	Aurignation
आर्द्र	Humid
आर्द्रता	Humidity
आल्पीय	Alpine
आवरणीकरण	Patination

उ

उच्च पुरापाषाण	Upper Palaeolithic
उच्च पुरापाषाण कला	Upper Palaeolithic art
उच्च पुरापाषाण भित्ति कला	Upper Palaeolithic mural art
उच्च स्तन्य	Primates
उच्चयन	Aggradation
उच्चयन-निर्मित सोपान	Aggradational terrace
उत्किरण	Engraving
उत्कीर्ण	Engrave, Engraved
उत्कीरक	Engraver
उत्कीरित	Engraved
उत्तम	Superior
उत्पत्ति	Origin
उदग्र	Vertical
उदग्र शिलाफलक	Vertical septum
उद्भूत	Originate(d)
उद्भृत	Bas relief
उद्यान-संस्कृति	Garden-culture
उद्रेखण	Drawing
उद्विकास	Evolution
उद्विकास संबंधी	Evolutionary

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्विकसित	Evolved
उद्विकसित सोहन	Evolved Sohan
उन्नतोदर	Convex
उप-अयनवृत्तीय	Sub-tropical
उपकरण	Tool
उपकरण-निर्माण	Tool-making
'उपकरण-निर्माता मानव'	'Man the tool-maker'
उपकरण-परिवार	Tool family
उप-ध्रुवी	Subarctic
उपांतिम	Penultimate
उभरा उद्भृत	High relief
उभयोन्नतोदर	Biconvex
उष्णकटिबन्ध	Tropics
उष:प्रस्तर	Eolith(ic)
उंगली की पोर का उद्रेखण	Finger-tip drawing

ऊ

ऊदबिलाव	*Caster fiber*
ऊनावृत्त गैंडा	Woolly rhinoceros; *Tichorhinus antiquitatus*
ऊनावृत्त महाकुंजर	Woolly mammoth Elephas primigenius

ए

एककोषीय	Unicellular
एकतल	Uniface
एकरंगा	Monochrome
एकसमक्षेत्री	Single faceted
एकस्कंध अस्त्राग्र	Single shouldered point
एकहिमावर्तनवाद	Monoglacialism
एकाघात (एक+आघात) ग्रेवर	Single-blow graver
एकांतरतया	Alternately

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एज़ीली	Azilian
एबेवीली	Abbevillian
एबेवीली-एश्यूली	Abbevillio-Acheulean
एर्तेबोल्ह	Ertebolle
एश्यूली	Acheulean
एशियाई हाथी	Mastodon
एस्तूरी	Asturian

क

कछुवा-कोर	Tortoise core
कटान	Erosion
कटान-निर्मित सोपान	Erosional terrace
कटिबंध	Belt
कड़किडई	Stone-circle
कपालीय समावेश	Cranial capacity
कल्प	Era
क्लीवर	Cleaver
कार्टेक्स	Cortex
कार्यात्मक प्रत्यक्ष शरीर	Functional anatomy
कार्यांग	Working edge
काल	Period
कालक्रम	Chronology
कालक्रमिक	Chronological
काले एवं लाल भांड	Black-and-red ware
काष्ठ-प्रविधि	Wood technique
काष्ठ-हथौड़ा प्रविधि	Wooden-hammer technique
कस्तूरी-वृषभ	Musk-ox
क्रांति	Revolution
कांस्य	Bronze
कीट-डिम्ब	Larva
कुठार संस्कृति	Axe-culture
कैम्पिग्नी	Campignian

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कैम्पिग्नी कुठार	Campigny axe
क्लैक्टोन	Clacton
क्लैक्टोनी	Clactonian
कोण ग्रेवर	Angle graver
कोर	Core
कोर-उपकरण	Core tool
कोर-स्क्रेपर	Core scraper
क्रोमेरी	Cromerian
कौशल	Skill
कृपाणदंती चीता	Sabre-tool tiger

ख

खगोलविद्या	Astronomy
खगोलविद्या-संबंधी	Astronomical
खटीकाल	Cretaceous
खरगोल	*Lepus timidus L*
खाई-वृत्त	Pit-circle
खात	Notch
खाद्य-एकत्रण	Food gathering
खाद्यावशिष्ट-अंबार	Kitchen-midden
खाद्योत्पादक अर्थव्यवस्था	Food-producing economy
खाद्योत्पादक ग्राम्यता	Food-producing barbarism
खाद्योत्पादन	Food-production
खुदी रेखाओं वाला उत्किरण	Incised-line engraving

ग

गढ़ा (निर्मित) कोर प्रविधि	Prepared core technique
गढ़े 'हो'	Faceted hoe
गहरा उद्भृत	Low relief
ग्रवेत	Gravette
ग्रवेतीय	Gravettian
ग्राम्यता	Barbarism

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिरिकाल	Permian
गुणात्मक	Qualitative
गुफ़ा-कला	Cave art
गुफ़ा तेंदुआ	*Felis pardus spelaea*
गुफ़ा (वासी) भालू	Cave bear; *Ursus spelaeus*
गुफ़ा (वासी) शेर	*Felis leo spalaea*
गुफ़ा लकड़बग्घा	*Hyaeana crocuta spelaea*
गेरू	Red ochre
ग्रेवर	Graver
ग्रेवर-मुख	Graver facet
ग्रैवेल	Gravel
गैंडा	Rhinoceros
गोल रुखानी ग्रेवर	Gouge graver
गोलाकार	Rounded
गोलाकार कुठार	Rounded axe
गोलाकार पेबुल उपकरण	Rounded pebble-tool
गोलाकार-स्क्रेपर	Rounded scraper
गोलाकार-समंत कुठार	Rounded butt axe
गृहकला	Home art

घ

घर्षक	Pounder
(जल) घर्षित विशाल प्रस्तर-पिण्ड	Boulder Conglomerate
घिसना	Grind
घोड़ा	*Equus*

च

चट्टान शरण-स्थल	Rock-shelter
चट्टानविद्या	Petrology
चतुर्थक	Quaternary
चपटा-आधार पेबुल उपकरण	Flat-based pebble tool
चमड़ा-चढ़ी चाक	Buff wheel

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरागाह	Meadow
चंचु-आकार या चंच्वाकार	Beak-shaped
चंच्वाकार ग्रेवर	Beaked graver
चॉपर	Chopper
चॉपिंग-उपकरण या चॉपिंगुपकरण	Chopping-tool
चिकनाना	Smoothing
चिकनी मिट्टी	Shales
चितकबरा लकड़बग्घा	Spotted hyaena; *Hyaena crocuta*
चूर्णपाषाण	Limestone
चौड़ी नासिकावाला गैंडा	Broadnosed (or Merk's) Rhinoceros; *Dicerorhinus merkii*
चौकोर बसूलानुमा सेल्ट	Quadrangular adze
चौड़े कार्यांगवाला कुठार	Axe with broad cutting edge

छ

छातानुमा स्मारक	Umbrella series monuments
छाताप्रस्तर	Umbrella stone
छिड़काव लेपचित्र	Spray-painting
छिदे पत्थर	Perforated stone
छिद्र वयिन्	Port-hole cist
छिद्रक	Awl, Borer, Perforator
छेनी प्रविधि	Punch technique

ज

जल-घर्षित पत्थर	Gravel
जलमल चट्टान	Sedimentary rock
जलवायु-सोपान	Climatic terraces
जंगली गाय-बैल	*Bos primigenius*
जंगली बकरा	*Ibex* (*priscus*)
जंगली भालू	Dogbear; Hyaenarctos
जंगली सुअर	*Sus arvernenas*

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज्यामितिक	Geometric
जीवाश्म	Fossil
जीवाश्म विज्ञान	Palaeontology
जीवाश्मित	Fossilised
जैविक उद्विकास	Biological evolution
जैविक नृतत्त्व	Physical anthropology

झ

झटके का प्रभाव	Shatter effect
झील-उच्चयित	Lacustrine

ट

टुंड्रावासी बारहसिंघा	*Rangifer tarandus*

ड

डाल्मेन	Dolmen
डिस्क	Disc
डिस्काकार	Discoid

ढ

ढलाई	Casting

त

तलि-गुफ़ा	Rock-cut cave
ताग्देन्वाय	Tardenoisian
ताम्ब्र-संचय	Copper-hoards
तीन परिमाण	Three dimensions
तुरीय	Quaternary
तुल्य भारता	Equilibrium
तेंदुआ	Hyaena
तृतीयक	Tertiary

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द

दरार	Hiatus
दरियाई घोड़ा	Hippopotamus
दक्षिणी महाकुंजर	*Equus merionalis trogontherii*
दंतरित	Notched; Serrated
दंतुर-स्क्रेपर	Notched scraper
द्वयंकुश	Barb
द्वयंत स्क्रेपर	Double ended scraper
द्वि-उन्नतोदर	Biconvex
द्वितल	Biface
द्वितल-'कोर'	Core-biface
द्वितीयक	Secondary
द्वितीयक फ्लेकीकरण	Secondary flaking
द्विध्रुवी प्रविधि	Bipolar technique
द्विसमक्षेत्री ग्रेवर	Double-faceted graver
द्विस्कंध अस्त्राग्र	Double-shouldered point
द्विहिमावर्तनवाद	Biglacialism
दैहिकी	Physiology

ध

धातु-मिश्रण	Alloy
धातुयुगीन नवपाषाण	Chalcolithic neolithic
ध्रुवी हरिण	Axis deer

न

नड्डुकल	Menhir
नड्डुकल पंक्ति	Alignment
नतूफ़ी	Natufian(s)
नतो-उन्नतोदर	Concavo-convex
नतोदर	Concave
नतोदर स्क्रेपर	Concave scraper
नदी उपत्यका	River valley
नदी-प्रवाहित	Fluvial

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदी-सोपान	River terrace
नर-भक्षण	Cannibalism
नर-भक्षी	Cannibal
नर-मुंड-आखेट	Head-hunting
नरमुंड-आखेटकर्त्ता	Head hunter
नवकल्प	Cainozoic; Cenozoic
नवपाषाण	Neolithic
नवपाषाण ग्राम्यता	Neolithic barbarism
नवपाषाण-युगीन	Neolithic
नाइफ़-ब्लेड	Knife blade
नागरिकता	Civility
नालीदार हथौड़ा	Grooved hammerstone
नासिका स्क्रेपर	Nose-scraper
न्यास	Datum; Data
निकट-मानव	Near-man
निड़ई-कलतेड्डि	Cairn
निपीड	Pressure
निम्न पुरापाषाण	Lower Palaeolithic
निर्बंध फ़्लेकीकरण	Free flaking
निर्माण-वैशिष्टय	Technology
नियंत्रित फ़्लेकीकरण	Controlled flaking
निहाई-प्रविधि	Anvil technique
नृतत्त्व	Anthropology
नृतत्त्ववेत्ता, नृतत्त्वविद्	Anthropologist
नृतात्त्विक	Anthropological
नृतात्त्विक भाषाविद्या	Anthropological linguistics
नेवला	Ermine
नोकीला हैण्डैक्स	Pearshaped handaxe

प

पद्धति	Method
परम्परा	Tradition

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिमाणात्मक	Quantitative
परिवहन	Transport
पशु-जगत्	Animal kingdom
पशु-परिवार	Genera
पशु-वर्ग	Fauna
प्रकार	Type
प्रकाश-प्रसरण	Radiation
प्रक्रम	Stage
प्रक्रिया	Process
प्रजाति	Race
प्रत्यक्ष-हथौड़ा-प्रविधि	Hammerstone technique
प्रतिमान	Pattern
प्रथम जंगली गाय-बैल	*Leptobos etruscus*
प्रथम जंगली साँड़	*Bison priscus*
प्रथम (वास्तविक) हाथी	Elephas meridionalis
प्रवणित	Bevelled
प्रवणित कुठार	Splayed axe
प्रवालादि काल	Silurian
प्रविधि	Technique
प्रवेशन-छिद्र वयिन्	Port-hole cist
प्रस्तर-उपकरण	Stone tool
प्रस्तर-कुठार-संस्कृति	Stone-axe-culture
प्रस्तर घर्षित मिट्टी	Concretionary clay
प्रस्तर-वृत्त	Stone-circle
प्रस्तर-संग्रह	Cairn
प्रस्तर हथौड़ा	Hammer stone
प्रसार	Diffusion
पार्श्व पुनर्गढ़ित ब्लेड	Backed blade
पार्श्व मोरेन	Lateral moraine
पार्श्व-स्क्रेपर	Side scraper
प्राक्-साल्यूत्री	Pre-Solutrean
प्राक्-सोहन	Pre-Sohan

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राकृतिक आघात-स्थल	Natural striking platform
	Unfaceted striking platform
प्राकृतिक सिंचाई	Natural irrigation
प्रागितिहास	Prehistory
प्रागुपांतिम	Antepenultimate
प्रागैतिहासिक	Prehistoric
प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व	Prehistoric archaeology
प्राथमिक	Primary
प्राथमिक फ़्लेक	Primary flake
प्राथमिक फ़्लेकीकरण	Primary flaking
प्रादिकल्प	Proterozoic
प्रायद्वीपीय पठार	Peninsular plateau
प्रायद्वीपीय भारत	Peninsular India
प्रांगिक उद्विकास	Organic evolution
पीटकर तोड़ना	Batter
पुच्छल अस्त्राग्र	Tanged point
पुच्छल अस्त्राग्र संस्कृति	Tanged point culture
पुच्छल कुठार	Tanged axe
पुठवल	Potwar
पुनर्गढ़न	Retouching
पुनरुच्चयित लैटेराइट	Detrital laterite
पुरा-कल्प	Palaeozoic
पुराजलवायुविद्या	Palaeoclimatology
पुरातत्त्व	Archaeology
पुरानी दुनियाँ	Old World
पुरापाषाण	Palaeolithic
पुराविद्	Antiquary
पुरुषाभ	Anthropoid
पुरुषाभ वानर	Anthropoid ape
पेबुल	Pebble
पेबुल-उपकरण	Pebble tool
पेबुल-चॉपर	Pebble chopper

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेबुल-स्क्रेपर	Pebble scraper
पेरीगार्डी	Perigordian
पेंचकस ग्रेवर	Screw driver graver
प्रोटो-हैण्डैक्स	Proto-handaxe
पृष्ठभूमि	Background

फ

फन्याकार ब्लेड	Wedge blade
फल-मूल एकत्रण	Food collection
फावड़ानुमा सेल्ट	Spade-shaped celt
फ़ाण्ट-राबर्ट अस्त्राग्र	Font Robert point
फ़्लूटिंग्-प्रविधि	Fluting technique
फ़्लेक	Flake
फ़्लेक उपकरण	Flake tool
फ़्लेकीकरण	Flaking

ब

बर्बरता	Barbarism
बर्मा	Drill
बल	Force
बल-वंटन	Distribution of force
बसूला	Adze
बहिर्-हिमालय	Outer Himalayas
बहुकार्योपयोगी उपकरण	Multi-purpose tool
बहिर्मुखी संघात प्रविधि	Outward blow technique
बहुरंगा	Polychrome
बहुश्रृंगी हरिण	Polycladine deer *Cervus sedgwicki*
बहुहिमावर्तनवाद	Multiglacialism
ब्यूरीन	Burin
ब्लेड	Blade
बादामाकार हैंण्डैक्स	Almond-shaped handaxe

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बालु-पाषाण; बालु-प्रस्तर	Sandstone
बिल्ली परिवार के मांसभक्षी	Felines
बेलनाकार	Cylindrical
बेलनाकार हथौड़ा प्रविधि	Cylinder-hammer technique
बेंट	Handle
बोल्डर-पिंड	Boulder conglomerate

भ

भारतीय नवपाषाण प्रतिमान	Indian Neolithic pattern
भाषाविद्या	Linguistic
भित्तिकला	Mural art
भिन्नांग	Heterogeneous
भिन्नांगता	Heterogeneity
भुथरा-पृष्ठ ब्लेड	Blunted back blade
भूतत्त्व	Geology
भूमध्य सागर	Mediterranean Sea
भूमि मोरेन	Ground moraine
भूमिस्थ प्रवेशन छिद्र	Underground port-pole
भूरा भालू	*Ursus arctos*
भेड़िया	*Canin euessi*
भौतात्त्विक	Geological
भौतात्त्विक कल्प	Geological era(s)
भौतात्त्विक काल क्रमिकी	Geochronology

म

मत्स्य-अंकुश	Fish-hook
मत्स्य-काल	Divonian
मत्स्य-चोइयाँ	Fish-scale
मत्स्य-बर्छी	Harpoon
मद्रासीय	Madrasian
मध्यकल्प	Mesozoic
मध्यनूतन काल	Miocene

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्यपाषाण	Mesolithic
मध्यपुरापाषाण	Middle Palaeolithic
मध्य भारतीय पठार	Central Indian plateau
मध्य मोरेन	Medial moraine
मध्योभार	Keel; Keeled
महाकुंजर	Mammoth
महाद्वीपी	Continental
महान् हिम युग	Great Ice Age
महापाषाण	Megalith; Megalithic
महामृग	Megaceros
महासरट काल	Jurassic
महाहिमप्रत्यावर्तन	Great interglacial
मंडल	Zone
मानक	Standard
मानव-मात्र की चिंतनसमता	'Psychic unity of mankind'
मानव-वानर	Man-ape
मानव-सम	Hominid
मिट्टी का टीला	Barrow
मिश्रित खेती	Mixed farming
मिसाक़ी	Micoquian
मुख्य-हिमालय	Main Himalayas
मुल्लरेप संस्कृति	Mullerupian culture
मुल्लरेप के विशाल दलदल	Great bog of Mullerup
मुस्तीरी	Musterian
मुस्तीरी अस्त्राग्र	Musterian point
मूंठ-आरोपण	Hafting
मैग्दलेनी	Magdalenian
मैग्लेमूज़	Maglemosian
मोरेन	Moraine
मोरेन-मेखला	Moraine-girdle
मृग (साधारण)	Antelope
मृतक-भाण्ड	Burial urn

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

य

यूरोपीय	European
योगदान	Contribution

र

रक्ताश्मकाल	Triassic
रंग-लेपन	Daubing
रंगीन-उद्रेखण	Coloured drawing
रँगे-पेब्ल	Painted pebble(s)
रासायनिक रँगाई	Patination
रुखानी	Chisel
रूक्ष	Crude
रेडियो-सक्रियता	Radio-activity
रोध	Resistance

ल

लकड़बग्घा	Hyaena
लघुकापालिक	Dolicocephalic
लघुपाषाण	Microlith; Microlithic
लघुपाषाण संस्कृति	Microlithic culture
लघु-ब्यूरीन	Micro-burin
लघु-हिमालय	Lesser Himalayas
लघुहिमावर्तन	Sub-Glacial
लघुहिमप्रत्यावर्तन	Interstadial
ललित-कला-दर्शन	Aesthetics
लंबी धुरी	Long axis
लार्ने कुल्हाड़ी	Larne pick
लाल हरिण	Stag; *cervus elaphus*
लाक्षणिक	Typical
लेपचित्र, लेपचित्रण	Painting
लेवलायेज़	Levallois

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेवलायेज़ी	Levalloisian
लैटेराइट	Laterite
लोकवार्त्ता	Folklore

व

वक्र	Curve
वक्र कोण ग्रेवर	Oblique angle graver
वन्य	Savage
वन्यता	Savagery
वन्यमृग	Chamois
वयिन्	Cist
वयिन्-प्रकोष्ठ	Cist chamber
वयिन्-वृत्त	Cist circle
वहनीय	Portable
वहनीय कला	Portable art
व्यवधान	Unconformity
वंशावली	Genealogy
वानर वानरीय	Ape
वायु-संचालित	Eolian
वारंवारता	Continuity
वाष्पीकरण	Evaporation
विकास	Development
विदारित-आधार-अस्थिभाला-अग्र	Split-base bone lance point
विधि	Law
विभक्त-प्रवेशन छिद्र वयिन्	Transcepted porthole cist
विशाल हाथी	*Elephas antiquus*
विशेष कार्योपयोगी उपकरण	Special-purpose tool
विशेषीकरण	Specialisation
वैज्ञानिक अनुमान	Scientific inference
वृत्त-खण्ड	Arc

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वृष्टयावर्तन	Pluvial
वृष्टि प्रत्यावर्तन	Interpluvial
वृहत् ऊदबिलाव	Giant deer; *Trogontherium*
वृहत् हरिण	*Trogontherii cuviere*
वृहत्तर वृत्त	Ever-widening circles

श

शव-सामग्रियाँ	Burial contents
शंक्वाकार	Conical
शंकु	Cone
शारीर	Anatomy
श्याम-नेत्री मृग	Gazells
शिलाफलक	Slab
शिल्पकला	Sculpture
शिवालिक श्रृँखला	Siwalik series
शीर्ष-प्रस्तर	Cap-stone
शुष्क-कृषि	Dry farming
शेर	*Felis leo antiqua*
शेलीय	Chellian
शैटेल्पेरान्	Chatelperron

स

सपाट-आधार	Flat-based
सपाटोन्नतोदर	Plano-convex
सपाद कफ़न-बाक्स	Legged scarcophagus
सबंध फ़्लेकीकरण	Step flaking
सभ्यता	Civilisation
समग्रता	Totality
समभुज त्रिकोण	Equilateral triangle
समय-सारणी	Time-table
समय-मापक	Time scale
समलंब चतुर्भुजाकार	Trapezoid

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समलंब चतुर्भुजाकार प्रवेशनछिद्र	Trapezoidal port-hole
समशीतोष्ण	Temperate
समक्षेत्र	Plane
समुद्रीय अमेरुदण्डी	Marine invertebrates
समंत	Butt
समांग	Homogeneous
समांगता	Homogeneity
सीसृप (सरीसृप)	Reptiles
स्कंध-अस्त्राग्र	Shouldered point
स्कंधास्थि	Shoulder blade
स्कंधीय 'हो'	Shouldered hoe
स्टेपी (जंगली) घोड़ा	*Equus przewalskii*
स्तन्य पशु	Mammals
स्तर	Stratum; strata
स्तरकरण / स्तरीकरण	Stratification
स्तरीय भूतत्त्व	Stratigraphical geology
स्थलीय	Terrestrial
स्थिर हथौड़ा प्रविधि	Block-on-block technique / Swinging-blow technique
साधारण ग्रेवर	Ordinary graver
साधारण मिट्टी	Clay
सापेक्ष / सापेक्षिक	Relative
सापेक्षिक कालक्रम	Relative chronology
सापेक्षिता	Relativity
सामाजिक नृतत्त्व	Social anthropology
सामाजिक बचत	Social surplus
सामाजिक विज्ञान	Social sciences
साल्यूत्री	Solutrean
सियार	Jackal
सीधी दाँतवाला हाथी	Straight-tusked elephant / *Elephas antiquus*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुदूर अतीत	Remote past
सेल्ट	Celt
सैगा बारहसिंघा	Saiga antelope; *Tartarica*
सोपान-पद फ़्लेकीकरण	Step-flaking
संग्रथित उपकरण	Composite tool
संघात	Percussion
संघात का अर्धशंकु	Bulb of percussion
संघात का गड्ढा	Negative bulb of percussion
संघात का शंकु	Cone of percussion
संचार	Communication
संपर्क-विन्दु	Point of impact
संबोध	Concept
संमितीय	Symmetrical
संमितीय शंकु	Symmetrical cone
संस्कृति	Culture
सांस्कृतिक नृतत्त्व	Cultural anthropology
सिंधु-गंगा का मैदान	Indo-Gangetic plain
साँचा	Mould

ह

हरिण	Deer
हरिणी	Roe-deer; *Cervus capredus*
हिमनदी	Glacier
हिमप्रत्यावर्तन	Interglacial
हिमयुग	Ice Age
हिमायन	Glaciation
हिमायित	Glaciated
हिमावर्तन	Glacial
हिमावर्तनवाद	Glacialism
हैण्डैक्स	Handaxe
हैण्डैड्ज़	Hand-adze

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'हो' कृषि	Hoe-cultivation
हृदयाकार हैण्डैक्स	Cordiform (Heart shaped) handaxe

क्ष

क्षैतिज	Horizontal

त्र

त्रिखण्ड (काल)	Cambrian
त्रिज्या	Chord

A

Abbevillian	एबेवीली
Abbevillio-Acheulean	एबेवीली-एश्यूली
Acheulean	एश्यूली
Adaptation	अनुकूलीकरण
Adze	बसूला
Aesthetics	ललित-कला-दर्शन
Aggradation	उच्चयन
Aggradational terrace	उच्चयन-निर्मित-सोपान
Alces alces	अमरीकी हरिण
Alignment	नङ्कल-पंक्ति
Alloy	धातु-मिश्रण ; अलय
Almond-shaped handaxe	बादामाकार हैंडैक्स
Alpine	आल्पीय
Alternately	एकान्तरतया
Anatomy	शारीर
Angle graver	कोण ग्रेवर
Animal kingdom	पशु-जगत्
Antelope	मृग (साधारण)
Antepenultimate	प्रागुपांतिम
Anthropoid	पुरुषाभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Anthropoid ape	पुरुषाभ वानर
Anthropological	नृतात्त्विक
Anthropological linguistics	नृतात्त्विक भाषाविद्या
Anthropologist	नृतत्त्वविद्, नृतत्त्ववेत्ता
Anthropology	नृतत्व
Antiquaries	पुराविद्
Anvil technique	निहाई प्रविधि
Ape	वानर
Arc	वृत्त-खण्ड
Archaean	आदिम (काल)
Archaeozoic	आदि-कल्प
Archaeology	पुरातत्त्व
Arctic fox	ध्रुवी लोमड़ी
Arctic hare	ध्रुवी खरगोश
Astronomical	खगोलविद्या-संबंधी
Astronomy	खगोलविद्या
Asturian	एस्तूरी
Aurignacian	ऑरिग्नेशी
Awl	छिद्रक
Axe	कुठार
Axe-culture	कुठार-संस्कृति
Axe with broad cutting edge	चौड़े कार्यांगवाला कुठार
Axis deer	ध्रुवी हरिण
Azilian	एज़ीली
Azoic	अजीव

B

Backed blade	पार्श्व-पुनर्गढ़ित ब्लेड
Background	पृष्ठभूमि
Barb	द्वयंकुश
Barbarism	बर्बरता ; ग्राम्यता
Barrow	मिट्टी का टीला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Bas relief	उद्भृत
Basal gravel	आधार-ग्रैवेल
Batter	पीटना
Beak-shaped	चंचु-आकार ; चंच्वाकार
Beaked graver	चंच्वाकार ग्रेवर
Belt	कटिबंध
Bevelled	प्रवणित
Bi-glacialism	द्वि-हिमावर्तनवाद
Biconvex	द्वि-उन्नतोदर ; उभयोन्नतोदर
Biface	द्वितल
Biological evolution	जैविक उद्विकास
Bipolar technique	द्वि ध्रुवी प्रविधि
Bison	जंगली साँड
Bison bonasus	जंगली साँड
Bison priscus	प्रथम जंगली साँड
Black-and-red ware	काले एवं लाल भाण्ड
Blade	ब्लेड
Block-on-block technique	स्थिर-हथौड़ा प्रविधि
Blunted-back scraper	भुथरा-पृष्ठ स्क्रेपर
Borer	छिद्रक
Bos primigenius	जंगली गाय-बैल
Bottom moraine	आधार-मोरेन
Boulder Conglomerate	बोल्डर-पिंड; (जल)-घर्षित-विशाल प्रस्तर-पिण्ड
Broad-nosed rhinoceros	चौड़ी नासिका वाला गैंडा
Bronze	कांस्य
Buff-wheel	चमड़ा-चढ़ा चाक
Bulb of percussion	संघात का अर्धशंकु
Bulbar scar	अर्धशंकु का चिह्न
Bulbar surface	अर्धशंकु वाली सतह
Burial contents	शव-सामग्रियाँ
Burial urn	मृतक-भाण्ड

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Burin	ब्यूरीन
Butt	समंत; बट

C

Cainozoic	नवकल्प
Cairn	निड़ई-कलतेड्डि; प्रस्तर-संग्रह
Cambrian	त्रिखंड (काल)
Campignian	कैम्पिग्नी
Campigny axe	कैम्पिग्नी कुठार
Canis suessi	भेड़िया
Cannibal	नर-भक्षी
Cannibalism	नर-भक्षण
Cap-stone	शीर्ष-प्रस्तर
Carboniferous	अंगार-काल
Caster fibre	ऊदबिलाव
Casting	ढलाई
Cave art	गुफ़ा-कला
Cave-bear	गुफ़ा (वासी) भालू
Celt	सेल्ट
Cenozoic	नवकल्प
Central Indian plateau	मध्य भारतीय पठार
Cervus capreolus	हरिणी
Cervus elephus	लाल हरिण
Cervus sidguricki	बहुश्रृंगी हरिण
Chalcolithic	धातुयुगीन नवपाषाण
Chamois	वन्य मृग
Chatelperron	शैटेल्पेरान
Chellean	शैलीय
Chisel	रुखानी
Chopper	चॉपर
Chopping-tool	चापिंग्-उपकरण; चापिंगुपकरण
Chord	त्रिज्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Chronological	काल क्रमिक
Chronology	कालक्रम
Cist	वयिन्
Cist chamber	वयिन्-प्रकोष्ठ
Cist-circle	वयिन्-वृत्त
Civilisation	सभ्यता
Civility	नागरिकता
Clacton	क्लैक्टोन
Clactonian	क्लैक्टोनी
Clay	साधारण मिट्टी
Cleaver	क्लीवर
Climatic terraces	जलवायु-सोपान
Coloured drawing	रंगीन उद्रखेण
Communication	संचार
Composite tool	संग्रथित उपकरण
Concave	नतोदर
Concave scraper	नतोदर स्क्रेपर
Concavo-convex	नतो-उन्नतोदर
Concept	संबोध
Concretionary clay	प्रस्तर-घर्षित मिट्टी
Cone	शंकु
Cone of percussion	संघात का शंकु
Conical	शंक्वाकार
Contemporary primitives	वर्त्तमान आदिम-जातियाँ
Continental	महाद्विपी
Continuity	वारम्बारता
Contribution	योगदान
Controlled flaking	नियंत्रित फ़्लेकीकरण
Convex	उन्नतोदर
Copper hoard	तांब्र-संचय
Cordiform handaxe	हृदयाकार हैण्डैक्स
Core	कोर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Core-biface	द्वितल-कोर
Core-scraper	कोर-स्क्रेपर
Core tool	कोर-उपकरण
Cortex	कार्टेक्स
Cranial capacity	कपालीय समावेश
Crescent	अर्धचन्द्राकार (लघुपाषाण)
Cretaceous	खटी-काल
Cromerian	क्रामेरी
Crude	रूक्ष
Cultural anthropology	सांस्कृतिक नृतत्त्व
Culture	संस्कृति
Curve	वक्र
Cylinder hammer technique	बेलनाकार हथौड़ा प्रविधि
Cylindrical	बेलनाकार

D

Data	न्यास
Datum	न्यास
Daubing	रंग-लेपन
Decoration	अलंकरण (सजावट)
Deer	हरिण
Detrital laterite	पुनरुच्चयित लैटेराइट
Development	विकास
Dicerorhinus merckii	चौड़ी नासिका वाला गैण्डा
Diffusion	प्रसार
Disc	डिस्क
Discoid	डिस्काकार
Distribution of force	बल-वंटन
Divonian	मत्स्य (काल)
Dog bear	जंगली भालू
Dolicocephalic	लघु-कापालिक
Dolmen	डाल्मेन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Delmenoid cist — डाल्मेननुमा वयिन्
Double-ended scraper — द्वयन्त-स्क्रेपर
Double facetted graver — द्विसमक्षेत्री ग्रेवर
Drawing — उद्रेखण
Drill — बरमा
Dry-farming — शुष्क-कृषि

E

Early — आदि, आदियुगीन
Early man — आदि मानव
Early savagery — आदियुगीन वन्यता
Early Sohan — आदि-सोहन
Elephas antiquus — सीधी दाँतवाला विशाल हाथी
Elephas meridionalis — प्रथम वास्तविक हाथी
Elephas meridionalis trogontherii — दक्षिणी महाकुंजर
Elephas primigenius — ऊनावृत्त महाकुंजर
End moraine — अन्त मोरेन
End-scraper — अन्त-स्क्रेपर
Engrave — उत्कीर्ण
Engraved — उत्कीर्ण
Eocene — आद्यनूतन (काल)
Eolian — वायु-संचालित
Eolith — उष:प्रस्तर
Epi-palaeolithic — आदि-पुरापाषाण
Equilateral triangle — समभुज त्रिकोण
Equilibrium — तुल्यभारता
Equus — घोड़ा
Equus callabus — आधुनिक घोड़ा
Equus przewalskii — स्टेपी (जंगली) घोड़ा
Equus stenonis — आदिम घोड़ा
Era — कल्प
Ermine — नेवला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Erosion	कटान
Erosional terrace	कटान-निर्मित सोपान
Ertebolle	एर्तेबोल
European	यूरोपीय
Evaporation	वाष्पीकरण
Ever-widening circles	वृहत्तर वृत्त
Evolution	उद्विकास
Evolutionary	उद्विकास-संबंधी
Evolved	उद्विकसित
Evolved Sohan	उद्विकसित-सोहन
Extra-corporeal	अतिरिक्त-कायिक
Extra-peninsular India	अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत

F

Faceted hoe	गढ़े 'हो'
Fauna	पशुवर्ग
Feline	बिल्ली परिवार के मांसभक्षी
Felis leo antiqua	शेर
Felis leo spelaea	गुफ़ावासी शेर
Felis pardus spelaea	गुफ़ा तेंदुआ
Finger-tip drawing	उंगली की पोर से उद्रेखण
Fish-hook	मत्स्य-अंकुश
Fish-scale	मत्स्य-चोइयाँ
Flaking	फ़्लेकीकरण
Flat-based	सपाट-आधार
Flat-based pebble tool	चपटे आधारवाला पेबुल-उपकरण
Fluctuation	अस्थिरता
Fluting technique	फ़्लूटिंग् प्रविधि
Fluvial	नदी-उच्चयित
Folklore	लोकवार्ता
Font Robert point	फ़ॉण्ट राबर्ट अस्त्राग्र
Food collection	फल-मूल-एकत्रण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Food gathering	खाद्य-एकत्रण
Food-producing barbarism	खाद्योत्पादक ग्राम्यता
Food-producing economy	खाद्योत्पादक अर्थ-व्यवस्था
Food production	खाद्योत्पादन
Force	बल
Fossil	जीवाश्म
Fossilised	जीवाश्मित
Free flaking	निर्बन्ध फ़्लेकीकरण

G

Garden culture	उद्यान-संस्कृति
Gazells	श्याम-नेत्री हरिण
Genealogy	वंशावली
Genera	पशु-परिवार
Geochronology	भूकालक्रमिकी
Geological	भौतात्त्विक
Geological era(s)	भौतात्त्विक कल्प
Geology	भूतत्त्व
Geometric	ज्यामितिक
Giant Beaver	वृहद् ऊद्बिलाव
Glacial	हिमावर्तन
Glacialism	हिमावर्तनवाद
Glaciated	हिमायित
Glaciation	हिमायन
Glacier	हिमनदी
Gouge graver	गोल-रुखानी ग्रेवर
Graphic art	अंकन-कला
Gravel	ग्रैवेल; जल-घर्षित पत्थर
Graver	ग्रेवर
Graver-facet	ग्रेवर-मुख
Gravette	ग्रवेत
Gravettian	ग्रवेतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Great bog of Mullerup	मुल्लेरप के विशाल दलदल
Great Ice Age	महान् हिम युग
Great Interglacial	महाहिमप्रत्यावर्तन
Grind	घिसना
Grooved hammerstone	नालीदार हथौड़ा
Ground moraine	भूमि-मोरेन

H

Hafting	मूंठ आरोपण
Hammerstone	प्रस्तर-हथौड़ा
Hammerstone technique	प्रत्यक्ष-हथौड़ा प्रविधि
Hand-adze	हैण्डैड्ज़
Handaxe	हैण्डैक्स
Handle	बेंट
Harpoon	मत्स्य-बर्छी
Head-hunter	नरमुण्ड आखेटकर्त्ता
Head-hunting	नरमुण्ड-आखेट
Heart-shaped handaxe	हृदयाकार हैण्डैक्स
Heterogeneity	भिन्नांगता
Heterogeneous	भिन्नांग
Hiatus	दरार
High relief	उभरा उद्भृत
Hippopotamus	दरियाई घोड़ा
Hoe-cultivation	'हो'-कृषि
Holocene	आधुनिक (भौतात्त्विक)
Home art	गृह-कला
Homonid	मानव-सम
Homogeneity	समांगता
Homogeneous	समांग
Horizontal	क्षैतिज
Humid	आर्द्र
Hyaena	लकड़बग्घा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Hyaena crocuta	चितकबरा लकड़बग्घा
Hyaena crocuta spelaea	गुफ़ा-लकड़बग्घा
Hyaenarctos	जंगली भालू

I

Ibex Priscus	जंगली बकरा
Ice age	हिम युग
Immigration	अप्रवासन
Imperishable	अनश्वर
Incised-line engraving	खुदी-रेखाओंवाला उत्किरण
Indian Neolithic pattern	भारतीय नवपाषाण प्रतिमान
Indirect percussion technique	अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि
Indo-Gangetic plain	सिंधु-गंगा का मैदान
Inferior	अनुत्तम
Interglacial	हिमप्रत्यावर्तन
Interpluvial	वृष्टिप्रत्यावर्तन
Interstadial	लघुहिमप्रत्यावर्तन
Inward-blow technique	अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि

J

Jackal	सियार
Jurassic	महासरट-काल

K

Keel, keeled	मध्योभार
Kitchen-midden	खाद्यावशिष्ट-अंबार
Knife blade	नाइफ़ ब्लेड

L

Lacustrine	झील-निर्मित
Larne pick	लार्ने कुल्हाड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Larva	कीट-डिम्ब
Late Sohan	अन्त-सोहन
Lateral moraine	पार्श्व-मोरेन
Laterite	लैटेराइट
Law	विधि
Law of superposition	अध्यारोहण विधि
Legged sarcophagus	सपाद कफ़न-बाक्स
Leptobos erectus	प्रथम जंगली गाय-बैल
Lepus timidus L	खरगोश
Lesser Himalayas	लघु हिमालय
Levallois	लेवलायज़
Levalloisian	लेवलायेज़ी
Limestone	चूर्णपाषाण
Linguistics	भाषाविद्या
Long axis	लम्बी धुरी
Low relief	गहरा उद्भृत
Lower Palaeolithic	निम्न पुरापाषाण
Lunate	अर्धचन्द्राकार (लघुपाषाण)

M

Machairodus	कृपाण-दन्ती चीता
Madrasian	मद्रासीय
Magdalenian	मैग्दलेनी
Magle mosian	मैग्लेमूज़
Main Himalayas	मुख्य हिमालय
Mammals	स्तन्य पशु
Mammoth	महाकुंजर
Man the tool-maker	उपकरण-निर्माता मानव
Man-ape	मानव-वानर
Marine invertibrates	समुद्रीय अमेरुदंडी
Mastodon	एशियाई हाथी
Material remains	पादार्थिक अवशेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Meadow	चरागाह
Medial moraine	मध्य मोरेन
Mediterranean Sea	भूमध्यसागर
Megaceros	महामृग
Megalith, megalithic	महापाषाण
Menhir	नड्कल
Merck's rhinoceros	चौड़ी नासिकावाला गैंडा
Mesolithic	मध्यपाषाण
Mesozoic	मध्यकल्प
Micoquian	मिसाक़ी
Micro-burin	लघु-ब्यूरीन
Microlith	लघुपाषाण
Microlithic culture	लघुपाषाण संस्कृति
Middle Palaeolithic	मध्य पुरापाषाण
Miocene	मध्यनूतन (काल)
Mixed farming	मिश्रित खेती
Moisture	आर्द्रता
Monochrome	एकरंगा
Monoglacialism	एकहिमावर्तनवाद
Monuments of the umbrella series	छातानुमा स्मारक
Moose	अमरीकी हिरण
Moraine	मोरेन
Moraine girdle	मोरेन-मेखला
Mould	साँचा
Mousterian	मुस्तीरी
Mousterian point	मुस्तीरी अस्त्राग्र
Mullerupian culture	मुलरेप संस्कृति
Multi-purpose tool	बहुकार्योपयोगी उपकरण
Multiglacialism	बहुहिमावर्तनवाद
Mural art	भित्तिकला
Musk-ox	कस्तूरी वृषभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

N

Natufian(s)	नतूफ़ी
Natural irrigation	प्राकृतिक सिंचाई
Natural striking platform	प्राकृतिक (या अकृत्रिम) आधार-स्थल
Near-man	निकट-मानव
Negative bulb of percussion	संघात का अर्धशंकु
Neolith	नवपाषाण; नवपाषाण उपकरण
Neolithic	नवपाषाण; नवपाषाण-युगीन्
Neolithic barbarism	नवपाषाण ग्राम्यता
Non-geometric	अज्यामितिक
Nose scraper	नासिका स्क्रेपर
Notch	खात
Notched	दंतरित
Notched scraper	दंतुर-स्क्रेपर

O

Oblique angle graver	वक्र कोण-ग्रेवर
Old world	पुरानी दुनियाँ
Oligocene	आदिनूतन (काल)
Opsi-Palaeolithic	अप्योपरांत पुरापाषाण
Ordinary graver	साधारण ग्रेवर
Ordovinian	अवर प्रवालादि काल
Organic evolution	प्रांगिक उद्‌विकास
Origin	उत्पत्ति
Originate	उद्‌भूत
Outer Himalayas	बहिर्-हिमालय
Outward blow technique	बहिर्मुखी संघात प्रविधि
Ovate handaxe	अंडाकार (या ओवेट) हैण्डैक्स
Ovibos moschatus	कस्तूरी-वृषभ

P

Painting	लेपचित्र, लेपचित्रण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Painted pebbles	रंग पेबुल
Palaeoclimatology	पुराजलवायु विद्या
Palaeolithic	पुरापाषाण
Palaeontologist	जीवाश्म वैज्ञानिक
Palaeontology	जीवाश्मविज्ञान
Palaeozoic	पुरा-कल्प
Parabola	अनुवृत्त
Patination	पैटिनेशन
Pattern	प्रतिमान
Pear-shaped handaxe	नोकीला हैंडैक्स
Pebble chopper	पेबुल चॉपर
Pebble scraper	पेबुल स्क्रेपर
Peninsular India	प्रायद्वीपीय भारत
Peninsular plateau	प्रायद्वीपीय पठार
Penultimate	उपांतिम
Percussion	संघात
Perforated stones	छिदे पत्थर
Perforator	छिद्रक
Perigordian	पेरीगार्डी
Period	काल
Permian	गिरिकाल
Petrology	चट्टान विद्या
Physical anthropology	जैविक नृतत्त्व
Physiology	दैहिकी
Pit circle	खाई-वृत्त
Plane	समक्षेत्र
Plano-convex	सपाटोन्नतोदर
Plastic art	अभिघटन कला
Pleistocene	प्रातिनूतन (काल)
Pliocene	अतिनूतन (काल)
Pluvial	वृष्ट्यावर्तन
Point(s)	अस्त्राग्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Point of impact	संपर्क-विन्दु
Polychrome	बहुरंगा
Polycladine deer	बहुश्रृंगी हरिण
Port-hole	प्रवेशन-छिद्र
Port-hole cist	प्रवेशन-छिद्र वयिन्
Portable	वहनीय
Portable art	वहनीय कला
Potwar	पुठवल
Pounder	घर्षक
Pre-Sohan	प्राक्-सोहन
Pre-Solutrean	प्राक्-साल्यूत्री
Prehistoric	प्रागैतिहासिक
Prehistoric archaeology	प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व
Prehistory	प्रागितिहास
Prepared core technique	गढ़ा (निर्मित) कोर प्रविधि
Pressure	निपीड, दबाव
Primary	प्राथमिक
Primary flake	प्राथमिक फ़्लेक
Primary flaking	प्राथमिक फ़्लेकीकरण
Primate(s)	उच्च स्तन्य
Primitive	आदिम
Process	प्रक्रिया
Proterozoic	प्रादि-कल्प
Proto-handaxe	प्रोटो-हैण्डैक्स
Proto-historic	आद्य-ऐतिहासिक
Proto-human	आद्य-मानव
Proto-microlithic	आद्य-लघुपाषाण
Proto-Aeolithic	आद्य-नवपाषाण
Proto-Solutrean	आद्य-साल्यूत्री
Psychic unity of mankind	मानव-मात्र की चिंतन-समता
Punch technique	छेनी प्रविधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Q

Quadrangular adze	चौकोर बसूलानुमा सेल्ट
Qualitative	गुणात्मक
Quantitative	परिमाणात्मक
Quaternary	चतुर्थक, तुरीय

R

Race	प्रजाति
Radiation	प्रकाश-प्रसरण
Radioactivity	रेडियो-सक्रियता
Rangifer tarandus	टुण्ड्रावासी बारहसिंघा
Red ochre	गेरू
Relative	सापेक्ष, सापेक्षिक
Relativity	सापेक्षिता
Remains	अवशेष
Remote past	सुदूर अतीत
Reptiles	सरीसृप
Resistance	रोध
Retouching	पुनर्गढ़न (प्रविधि)
Revolution	क्रान्ति
Rhinoceros	गैण्डा
River-terrace	नदी-सोपान
River-valley	नदी-उपत्यका
Rock-cut cave	तलि-गुफ़ा
Rock-shelter(s)	चट्टान-शरण स्थल
Roe-deer	हरिणी
Rounded	गोलाकार
Rounded axe	गोलाकार कुठार
Rounded-butt axe	गोलाकार-समंत कुठार
Rounded pebble tool	गोलाकार पेबुल उपकरण
Rounded scraper	गोलाकार स्क्रेपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

S

Sabre-tooth tiger	कृपाण-दंती चीता
Saiga antelope	सैगा बारहसिंघा
Sandstone	बालु-पाषाण
Sarcophagus	कफ़न-बाक्स
Savage	वन्य
Savagery	वन्यता
Scientific inference	वैज्ञानिक अनुमान
Screwdriver graver	पेंचकस ग्रेवर
Sculpture	शिल्पकला
Secondary	द्वितीयक
Secondary flaking	द्वितीयक फ्लेकीकरण
Sedimentary rock	जलमल चट्टान
Self-expression	आत्माभिव्यक्ति
Sequence	अनुक्रम
Serrated	दंतरित
Shales	चिकनी मिट्टी
Shatter effect	झटके का प्रभाव
Shouldered blade	स्कंधास्थि
Shouldered hoe	स्कंधीय 'हो'
Shouldered point	स्कंध-अस्त्राग्र
Side-scraper	पार्श्व-स्क्रेपर
Silurian	प्रवालादि (काल)
Single-blow graver	एकाघात ग्रेवर
Single facetted	एक समक्षेत्री
Single shouldered point	एकस्कंध अस्त्राग्र
Siwalik series	शिवालिक श्रृंखला
Skill	कौशल
Slab	शिला-फलक
Smoothing	चिकनाना
Social anthropology	सामाजिक नृतत्त्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Social science(s)	सामाजिक विज्ञान
Social surplus	सामाजिक बचत
Solutrean	साल्यूत्री
Spade-shaped celt	फावड़ानुमा सेल्ट
Special-purpose tool	विशेष कार्योपयोगी उपकरण
Specialisation	विशेषीकरण
Splayed axe	प्रवणित कुठार
Split-base bone lance point	विदारित आधार अस्थि भाला-अग्र
Spotted hyanea	चितकबरा लकड़बग्घा
Spray painting	छिड़काव लेपचित्र
Stag	लाल हिरण
Stage	प्रक्रम
Standard	मानक
Step flaking	सोपानपद फ़्लेकीकरण, संबंध फ़्लेकीकरण
Stone Axe culture	प्रस्तर-कुठार संस्कृति
Stone circle	प्रस्तर वृत्त, कड़किडई
Stone tool	प्रस्तर उपकरण
Straight-tusked elephant	सीधी दांतवाला हाथी
Stratification	स्तरकरण, स्तरीकरण
Stratigraphical geology	स्तरीय भूतत्त्व
Strata	स्तर
Stratum	स्तर
Striking platform	आघात-स्थल
Subarctic	उपध्रुवी
Sub-glacial	लघुहिमावर्तन
Sub-tropical	उष्णाधीन कटिबन्ध, उप-अयनवृत्तीय
Superior	उत्तम
Superposition	अध्यारोहण
Sus arvernenas	जंगली सुअर
Swinging-blow technique	स्थिर-हथौड़ा प्रविधि
Symmetrical	संमितीय
Symmetrical cone	संमितीय शंकु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

T

Tanged axe	पुच्छल कुठार
Tanged point	पुच्छल अस्त्राग्र
Tanged point culture	पुच्छल-अस्त्राग्र संस्कृति
Tardenoisian	ताग्देन्वाय
Tartarica	सैंगा बारहसिंघा
Technique	प्रविधि
Technology	निर्माण-वैशिष्टय
Temperate	समशीतोष्ण
Terrestrial	स्थलीय
Tertiary	तृतीयक
Three dimensions	तीन-परिमाण
Tichorhinus antiquitatis	ऊनावृत्त गैण्डा
Time-scale	समय-मापक
Time-table	समय-सारणी
Tool	उपकरण
Tool family	उपकरण-परिवार
Tool making	उपकरण-निर्माण
Totality	समग्रता
Tortoise core	कछुवा कोर
Tradition	परम्परा
Transcepted port-hole cist	विभक्त प्रवेशन-छिद्र वयिन्
Transport Transportation	परिवहन
Transverse	अनुप्रस्थ
Transverse angle graver	अनुप्रस्थ कोण ग्रेवर
Transverse arrowhead	अनुप्रस्थ तीराग्र
Transverse hafting	अनुप्रस्थ मूंठ-आरोपण
Transverse section	अनुप्रस्थ-छेद
Trapezoid	समलंब चतुर्भुजाकार (लघुपाषाण)
Trapezoidal porthole	समलंब चतुर्भुजाकार प्रवेशन-छिद्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Triassic	रक्ताश्म (काल)
Trogontherium	वृहत् ऊदबिलाव
Trogontherii cuvieri	वृहत् हरिण
Tropical	अयनवृत्तीय
Tropics	उष्णकटिबन्ध
Type	प्रकार
Typical	लाक्षणिक
Typology	प्रकार

U

Umbrella stone	छाता प्रस्तर
Unconformity	व्यवधान
Underground port-hole	भूमिस्थ प्रवेशन-छिद्र
Unfacetted striking platform	अकृतिम (या प्राकृतिक) आघात-स्थल
Unicellular	एक कोषीय
Uniface	एकतल
Upper Palaeolithic	उच्च पुरापाषाण
Upper Palaeolithic art	उच्च पुरापाषाण-कला
Upper Palaeolithic mural art	उच्च पुरापाषाण भित्ति-कला
Ursus arctos	भूरा भालू
Ursus arvenensis	आदिम भालू
Ursus spelaeus	गुफ़ावासी भालू

V

Vertical	उदग्र
Vertical septum	उदग्र शिलाफलक
Volpes lagopus	(ध्रुवी) लोमड़ी

W

Wedge blade	फन्याकार ब्लेड
Wood technique	काष्ठ-प्रविधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Wooden hammer technique	काष्ठ-हथौड़ा प्रविधि
Woolly mammoth	ऊनावृत्त महाकुंजर
Woolly rhinoceros	ऊनावृत्त गैंडा
Working edge	कार्यांग

Z

Zone	मंडल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संक्षिप्त ग्रंथ-सूची

Braidwood, R. J. *Prehistoric Men*, (Revised Edition), Chicago, Natural History Museum, 19.

Burkitt, M. C. *Our Early Ancestors*, Cambridge; Cambridge University Press, 1929.

.... *The Old Stone Age*, (Third edition), London; Bowes and Bowes, 1955.

Clark, J. G. D. *The Mesolithic Settlement of Northern Europe*, Cambridge: At the University Press, 1937.

.... *From Savagery to Civilization*, London; Cobelt Press, 1946.

.... *The Study of Prehistory*, Cambridge; At the University Press, 1954.

Coates, Adrian *Prelude to History*, London; Methuen and Co. Ltd., 1951.

Childe, V. Gordon, *Man Makes Himself*, London : Watts & Co. (Thinkers' Library), 1951.

.... *What Happened in History*, Penguin Books, 1952.

.... *'Old World Prehistory: Neolithic' in Anthropology Today*. A.L. Krober (ed) Chicago: The University of Chicago Press, 1952.

De Terra, H. "*Geology and Climate as Factors of Human Evolution in Asia*" in W.W. Howells (ed), *Studies in Physical Anthropology* no. 1: *Early Man in the Far*, pp 7-15, Detroit, American Association of Physical Anthropologists, 1949.

De Terra, H. and Paterson, T.T.: *Studies on the Ice Age in India and Associated Human Cultures*. Washington; Carnegie Institute of Washington, 1937.

Flint R. F., *Glacial Geology and the Pleistocene Epoch*, New York. John Willey and Sons, 1947.

Seakey, L.S.B., *Adam's Ancestors*, (Fourth edition), London, Methuen and Co. Ltd., 1958.

Kroeber, A.L.: *Anthropology*, (New revised edition), New York, Harcourt Brace & Co., 1948.

Movius Jr. H.L. *The Lower Palaeolithic Cultures of Southern and Eastern Asia*, Frans. Am. Philosophical Society, Vol 38, no. 4, Washington, 1948.

.... "Old World Prehistory: Palaeolithic" in *Anthropology Today*. A.L. Kroeber(ed) Chicago; The University of Chicago Press, 1952.

.... "The Old Stone Age" in *Man, Culture and Society*. H.L. Shapiro (ed), New York: Oxford University Press, 1960.

Oakley, K.P. *Man the Tool-maker*, (Third edition), London, British Museum of Natural History, 1950.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Wadia, D.N.: *Geology of India*, London, Macmillan and Co. Ltd., 1949.
Zeuner, F.E.: *The Pleistocene Period*, London, Ray Society, 1945.
.... *Dating the Past*, London, Methuen and Co. Ltd., 1950.

टिप्पणी : यह सूची पूर्ण नहीं है, पुस्तक में उचित स्थानों पर उन लेखों और पुस्तकों के संबंध में सूचना प्राप्त की जा सकती है जो उपर्युक्त सूची में नहीं हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशना

अतिनूतन-प्रातिनूतन विभाजक सीमा-रेखा, १८, १९, २०
अतिरिक्त-कायिक अवयव, ९१
अर्धचन्द्राकार प्रदेश, २१७
अर्धशंकु का चिह्न, २८,३४,४९
अध्यारोहण विधि, ३, १५, ५८, ८०, १५०, १५१, १५२
अपिपुरापाषाण, ९४
अलय, ११६, १२१
अस्त्राग्र, ४५, ४६, ६९, ७०, ७८, ९९, १००, १०६, २०४; अनुप्रस्थ (तीर-अग्र), १००, १०१, १८३, १८८; असंमितीय, १८८; ऑदी, ७५; एकस्कंध, ४६, ४८, ७८, १०१; (फ़ाट राबर्ट) द्विस्कंध, ४६, ७६, १०४; लॉरेल लीफ़, ४७, ७७, ७८, ९३; विदारित-आधार-अस्थि-भाला-अग्र, ७७; विलो लीफ़, ४७, ४८, ७७ साल्यूत्री एकस्कंध, ७८
आघात-(या संघात) स्थल, २६, २८, ३३, ४२, ६७, १५४, १५७, १५९, १६१, १८८; अकृत्रिम (या प्राकृतिक), २८, ६०, ६५, १५९; कृत्रिम, २८, ६६, ६७, १५५, १५७
आदियुगीन वन्यता, ८७-९३
आदि-मानव, २५; की कथा, ४; भारत में, १४४-४९
आज्ञादंड ७९, ८१, ८५
ऑरिग्नेशी, ४४, ४६, ५८, ७४-७७, ७८, १०१, १०८; ऑरिग्नेशी-पेरीगार्डी, ७७
ऑस्बर्न, एच० एफ़०, ६, १७-१८, २१
ओक्ली, के० पी०, ३२, ४७, ६२, ६५, ६६, ७०.
उच्च-स्तन्य, ८८; शिवालिक, १४४
उच्च पुरापाषाण कला, ८०-८७; अभिघटनकला, ८०, ८४, ८५; अंकनकला, ८०, ८१, ८४; उत्किरण, ८१, ८३, ८४, ८५, ८६; उत्किरण, खुदी रेखाओंवाला, ८१, ८२; उद्रेखण, ८०, ८२, ९२; उद्भृत, ८४, उभरा उद्भृत, ८४, ८५; गहरा उद्भृत, ८४, ८५; उंगली की पोर से उद्रेखण, ८०, ८५;-का उद्देश्य ८६-८७; गुफ़ाकला, ८५; गृहकला, ८५; तक्षण, ८५; भित्तिकला, ८५, ८६; मिट्टी के नमूने बनाना, ८०, ८४, रंगलेपन, ८३; लेपचित्रण, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ९२; लेपचित्रण, छिड़काव, ८३; वहनीयकला, ८५; वाह्याकृतियाँ, ८५
उद्यान-संस्कृति, ९१
उद्विकास, ९३; एकमार्गी, ८७; जैविक, ४; तीव्र उद्विकास स्थिति, १४५, १४८; प्रक्रिया, १३०; प्रांगिक, १६, ५७, ८८, ११०, १३०; मानव-संस्कृति का, ३; सांस्कृतिक, ४
उष:प्रस्तर, ४१, ५८, ६०

एकतल, ३९, ४०, ४१; पेबुल उपकरण, १५६
एकत्रण, खाद्य, ९७, ११३; फलमूल, ९६
एकहिमावर्तनवाद, ८
एज़ीली, ९९-१००, १०१; एज़ीली-ताग़देन्वाय, १०१, १०३
एबेवीली (शेलीय), ३६, ३७, ५८, ६०, ६२, ६३, ६५, १६३, १६६, १७३, १७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एश्यूली, ३६, ३७, ३८, ५८, ६२-६४, ६६, ७०, ९८, ११५, १५६, १६३, १६६, १७१, १७३, १७४; अंत-एश्यूली, ७०, १७१

एस्तूरी, १०१-१०२

कछुवाकोर, ३०, ३१, ६७, ६८, ६९, १५७

कल्प, ६; भौतात्त्विक, ४-५

करेवा, झील, १३८-४२, १४४; निम्न, १३५, १४३; प्राक्, १४३; शृंखला, १३८-४२

कर्नूल (उद्योग), १७४-७५, १७९

क्यूतियर, लियाँ, २८, ३१

क्लार्क, ग्रैहेम, १०३, १०५, १०७, १०८

क्लैक्टोन फ़्लेक, ३०, ४२, ६१, १५७, १७१, १७३, १८३

क्लैक्टोनी (उद्योग), ६१, ६२, ६४-६७, ६९

काल, भौतात्त्विक, ४-५

कालक्रम, २; भौतात्त्विक, ५; सापेक्षिक, १५; कालक्रमिक, २

कांडिव्ली, १७०-७२, १७८, १७९

कांस्ययुग, १०४, ११६-२२; विशेषीकरण, १२२

काँटे, बर्छियों कें, १०६; मछली फँसाने के, १०६

क्रांति, प्रथम नवपाषाणयुगीन, ४; द्वितीय कांस्ययुगीन, ४

कुठार, १०६, १०७, १०८, १९९; पुच्छल, २०९, २१२; प्रस्तर, १९९, २०१, २०२, २१७, २१९, २२०

कौप्सियन, १०८

कैम्पिग्नी, १०२-१०३; कुठार, १०२

कोट्स, एड्रियन, १००

क्रोबर, ए० एल०, १०९, ११०

क्रोमेरी, ६०, ६१

कृष्णस्वामी, वी० डी०, १५२, १५८ १७१, १७६, १७७, १८२, २०६, २०८, २१०, २१३, २१७, २१८, २१९, २२७

खगोल विद्या, ५

खाद्यावशिष्ट-अंबार (एर्तें बोल), ९७, ९८, १०५, १०६-१०८

गुजरात (पुरापाषाण उद्योग), १६८-७०; मध्यपाषाण (उद्योग), १८४-८५

गैरॉड, डी० ए० ई०, ७४

(उच्च) गोदावरी उद्योग, १७१-७२

गोंडवाना लैंड, १२६, १२७

ग्रेवर (ब्यूरीन), ९९, १७१, १७३, १७४, १७५, १७८, १७९, १९५, १९६, २०२; अनुप्रस्थ कोण, ४८; एक-आघात, ४९; एकसमक्षेत्री, ४८; कोण, ४८; गोल रुखानी, ४९; ग्रेवर-मुख, ४८; चंच्वाकार, ४३, ४८, ४९, ७६, ७९, १८१; द्विसमक्षेत्री, ४८; नतोदर, ८४; पेंचकस, ४९; बहुकोण, ७६; मुख, ४९; वक्रकोण, ४८; साधारण, ४८

चाइल्ड, वी० जी०, ३, ४, ११०, १११, ११३, ११६, ११७, १२१, २२१, २२२, २२३

चार्डिन, टिल्हर्ड डी०, २०, १३४, १३५

चॉपर-चॉपिंगुपकरण, ३९, ४०, ४१, ६६, १६३, १६४, १७५, १७६, १९३

छिद्रक, ७६, ९९, १०२, १०३, १७३, १७९, १९५, १९६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जलहाल्लि आखेट प्रकार, १६०
ज्वाएनर, एफ़० ई०,६, ११, १५, १७-१८, १६, २१, १४८, १५१, १५२, १५३, १६६, १७०, १७२, १७६, १८४, १८५, १८६, १८८, १६०, १६१, १६२, १६४,
जीवाश्म, २०, ८६, ६६, १०६, १२६, १३१, १३८, १४८, १७२; जीवाश्मित, ८

झटके का प्रभाव, २७

टेथिस सागर, १२५, १२६, १२७, १२८, १२६

डार्विन, चार्ल्स, ५७
डिस्क, ३८, ७०; डिस्काकार, १५८, १५६, १७२, १७३
डीटेरा, एच०, १३०, १३४, १३६, १३७, १३६, १४२, १४३, १४५, १४८, १५०, १५१, १५६, १६५, १६६, १६७, १६८, १७०, १७५, १७८, १८३, १८४, १६७, १६८

ताग़देन्वाय, ६६, १००-१०१, १०२, १०४, १०५, १०७, १०८
ताम्रयुग, ११६, २२२
तिन्नेवली (मध्यपाषाण-लघुपाषाण) उद्योग, १६०-६४
तुलनात्मक अध्ययन, ८७

थापड़, बी० के०, २०१, २०२, २०४

दैनिली, १३६, १४२
दैहिकी ३, ६२
द्वयंकुश, ७६
द्वितल-(कोर), ३६, ३७, ४०, ६१, ६२, ६३, ६६, १६२, १६३, १६४, १६७, १७४, १७५
द्विहिमावर्तनवाद, ८

नतूफ़ी, ६६, १८१
नदी-सोपान, १२, १४, १३६, १४०, १५६, १६०, १६१, १८३, १६४; उच्चयन-निर्मित, १५, १६, १३७, १५६; कटान-निर्मित, १५, १३६, १३७, १४४
नरभक्षी (नरमुंड आखेटकर्त्ता), ७२, ६१
नर्मदा पशुवर्ग, १३५, १५०
नवपाषाण, ५७, ६४, ६५, ६८, १०२, १०४, १०५, १०७, १०६, ११०; आद्य, ६४, १७७, १८४, १६७, २०६, २०७; आत्म-संपूर्ण खाद्योत्पादक अर्थ-व्यवस्था, ११०,११८, १२२; आर्थिक, ११०; उत्पत्ति की समस्या, २१७-२०; उत्तर, १८४; उपकरण प्रकार, २१०-१६; क्रान्ति, १११, ११३, ११६; धातुयुगीन, २०२, २०६, २०८, २१८; निर्माण-वैशिष्ट्य-संबंधी प्रमाण, ११०; प्राक्, ११३; प्राकृतिक सिंचाई, ११२; भारतीय नवपाषाण प्रतिमान, १६८-२२०; भौतात्त्विक प्रमाण, ११०; मिश्रित खेती, ११२; शुष्क कृषि, ११२; सामाजिक बचत, ११३; 'हो' कृषि, ११२
नस्ल, १००
नागरिक (द्वितीय) क्रांति, ११६-२२
नासिक (नवपाषाण) उद्योग, २०४
निर्माण-वैशिष्ट्य, ३, ६६, ११०, १११, १७७, १६८, २०८, २१६, २२०
नियंडर्थल मानव (प्रजाति), ७१, ७२, ७४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नेवासा, मध्यपाषाण उद्योग, १७२-७३; 'नवपाषाण', २०३
नृतत्त्व, के प्रमुख अंग, १; की समन्वितता, १; जैविक, १; सामाजिक-सांस्कृतिक, १

पिलिग्रम, डॉ०, १२८
पुठवल, पठार, १३०, १४४, १४६-४७; शिवालिक, १३०, १३५, १३८
पुराजलवायुविद्या, ३
पुरापाषाण, ५७, ५८
पेबुल-उपकरण, ३६-४१, ६१, १३८; गोलाकार, १५५, १५६, १५८; चापिंगुपकरण, १५६, १६१; चिपटे आधार वाले, १५५, १५६, १५८; 'पश्चिमी' परंपरा, १६३, १६४; 'पूर्वी' परंपरा, ३६, ४१, १६३, १६४; पेबुल चॉपर, ३६, १५६, १५८ १६१, १७५; पेबुल स्क्रेपर, ३६, १५६, १५८; प्रोटो-हैण्डैक्स, ४०, ४१; हैण्डैड्ज़, ४०, ४१
पेरीगार्डी, ७५, ७६, ७८
पेंक और ब्रक्नर, ६
पैटर्सन, टी० टी०, ४०, १३४, १३६, १४२, १५२, १५५, १५६, १५८, १६०, १६५, १७८, १९७
पैंटिनेशन (रासायनिक रंगाई), १६१, १८०, १९७, २००
प्रकार, ३
प्रविधि, अप्रत्यक्ष संघात (या निपीड), ३४, ३५, ४६, ४७, ४८, ७८, १८३, १९३; अंतर्मुखी संघात (या निर्बन्ध फ़्लेकीकरण या मत्स्य चोइयाँ या सबंध या सोपानपद), ३३, ३५, ३७ ४३, ४६; काष्ठ हथौड़ा (या काष्ठ, या नियंत्रित फ़्लेकीकरण या बेलनाकार हथौड़ा), ३१, ३५, ६३, ६७, १५६; क्लैक्टोन, ३०, ३५; छेनी (या ब्लेड), ३२, ३५; डिस्काकार कोर (या मुस्तीरी फ़्लेकीकरण), ६६; द्विध्रुवी, ३०, ३५; पुनर्गढ़न, २६, ३२, ३४, ४२, ४६, १५५, १५७, १६१, १८३, २०१; प्रस्तर-उपकरण निर्माण, २५, ३५; प्रस्तर हथौड़ा, ३१, ३३, ३५, ६२, ६३; प्राथमिक ३३; फ़्लूटिंग्, ३४, ३५, ४३, ४६, ७६, ६८, १८८, २०६, २०७; ब्लेड-फ़्लेक, ३२, ३५; लेवलॉयेज़ (या गढ़ा अथवा निर्मित कोर), ३०, ३२, ३५; स्थिर हथौड़ा (या निहाई), ३० ३५, ६२, ६५
प्राक्-एबेवीली (शेलीय), ६०-६१
प्रागक्षर, २२१, २२३
प्रागितिहास, अध्ययन क्षेत्र और पद्धति, १, १३०; को आर्थिक मोड़, ३; नृतत्त्व का अंग, १, ४, ८७; मानव-इतिहास की पृष्ठभूमि, ५७; शोध, ५८
प्रातिनूतन, ६४, ६५, १०३, १०८, १०६, १३५, १३६, १४४, १५०, १६१, १६५; अस्थिरता, ८; का आरंभ, १६, २०; काल, ६, १२, ८६; कालीन पशु, १६, १७-१८, २२-२४, १००; की परिभाषा, २०; बुद्धि, उद्योग और कला का उष:काल, ६
प्रायद्वीपीय भारत, १२५, १२६, १२७, १२८; अतिरिक्त, १२५

फ़ांट रॉबर्ट प्रक्रम, ७४, ७५; ग्रैवेती-फ़ांट रॉबर्ट, ७६
फ़्यूरर-हैमेण्डार्फ़, सी० फ़ान, २२५, २२६
फ़्लिण्ट, १६
फ़्लेकचिह्न, ३३, ३४, ३७, ३८, ४०, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ४६, ६२, ६८, १५८, १५६, १८३, १८८
फ़्लेकीकरण, एकान्वेक, १५६, १५६, १६०; द्वितीयक, २६, ३२, ३५, ४६,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४७, ४८, ६५, १५६; नियंत्रित, ३१, १५८, २०२; निर्बन्ध (सोपानपद), ३३, ३४, १६०, १६८; प्राथमिक, २६, ३५, ४०, ४२, १५५, १५८, १५६, १६१, १८५; मत्स्य चोइयाँ, ३४, १५५, १६८, १७३

बर्किट, एम० सी०, १५, ३२, ४३, ४५, ६०, ६६, ७१, ७५, ७७, ७८, ८५, १०१, १०२, १०६, ११०, १५१, १५२, १७४, १७८
बसु, निर्मल कुमार, १७५
बसूला-फावड़ा, १०५, १०६, १०७, १०८
बहुकार्योपयोगी उपकरण, ७०, ७१
बहुहिमावर्तनवाद, ८, ६
बीरभानपुर लघुपाषाण उद्योग, १६४-६६
बुर्ज़हाम ('नवपाषाण') उद्योग, १६६
बूशर द पर्थे, ५७
बूल, मार्सेलिन, ५६
बोल्डर (या घर्षित-विशाल-प्रस्तर) पिंड, १३५, १३७, १४३, १४४, १५०, १५२, १५४, १५५, १५८, १६१, १६५, १६६, १७५
ब्लेड, अंतब्यूरीन, १०६; नाइफ़, ४४, ४५, ७५, ७६; पार्श्व-पुनर्गढ़ित, ४४, ४५, ७५, ६६, १००, १०६, १७३, १७८, २०२, २०३, २०४, २०५; फन्न्याकार, २०६; ब्लेड और ब्यूरीन, ७३; भुथरा पृष्ठ, ४४, १८२, १८३; रिबन-फ़्लेक, २१७, २१८
ब्रह्मगिरि, १८८, १८६-६०, १६६; नवपाषाण, १६६, २००-२०१, २०७, २१७; महापाषाण, २२४, २२५, २२६, २२७-२६, २३२
ब्रीयुल, एबे, २६, ५८, ५६, ६०, ६१, ७४, ७५,
ब्रैडवुड, रॉबर्ट जे०, ३६, ३८, ४७, ४८, १२२

भूकालक्रमिकी, ३
भूतत्त्व, चट्टानविद्या, ४; जीवाश्मविद्या, ४; भौतात्त्विक समय, ५; स्तरीय, ४

मत्स्य-अंकुश, ७६; -बर्छी, ७६, ६७, ६६, १००, १०६, १०७
मद्रासीय (एबेवीली-एश्यूली) उद्योग, १३६, १५६, १५७, १५८-६५, १७६
मध्यपाषाण, ६१, ६४-१०८, ११४, १७४; कुठार संस्कृति, ६५, १०३-१०४, १०५, १७७; पुच्छल-अस्त्राग्र संस्कृति, ६५, १०३, १०८, १७७; भारतीय मध्यपाषाण - लघुपाषाण, १७७-६७; मुल्लरेप संस्कृति, १०५; मैग्लेमूज़ संस्कृति, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८; लघुपाषाण संस्कृति, ६५, १०३-१०४, १०८, १७७; लिंबी संस्कृति, १०४, १०५
मयूरभंज (उद्योग), १७५
महापाषाण, १८१, १८६, २२१; का आनुष्ठानिक उद्देश्य, २२२, २२३; कुदईकल्लु, २३३, २३४; खाईवृत्त, २२८, २२६; चिंगलपत, २३०-३३; छातानुमा-स्मारक, २३३, २३४; छाताप्रस्तर, २३४; टोपीकल्लु, २३३, २३४, २३५; डाल्मेन, २२३, २२४, २३१, २३४; डाल्मेननुमा वयिन, २२४, २३०, २३१, २३२; तडि-गुफ़ा, २३३, २३४; नडुकल, २२५, २३३; नडुकल-पंक्ति, २३३; निड़ई-कल-तेड्डि (प्रस्तर संग्रहवृत्त), २३०, २३१, २३२; पूदूकोताई, २२६-३०; प्रवेशन छिद्र, २२३, २२४, २२८, २३०, २३२, २३५, भूमिस्थ, २३५; प्रवेशनछिद्र वयिन, २२५, २३५; प्रस्तर वृत्त (कड़किडई), २२५, २३१, २३५; प्रस्तर संग्रह, २३०, २३१; भारतीय, २२१-३५; मिट्टीका टीला, २३२; मृतक भांड, २१७,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२२४, २२७, २३२, २३३; लौह-युगीन, २२६; वयिन, २२४, २२७, २२८, २३०, २३१, २३३, प्रकोष्ठ, २३५; वयिन वृत्त, २२७, २२८, २२९, २३२; विभक्त-प्रवेशनछिद्र वयिन, २३०; शव-सामग्रियाँ, २३१; शिलाफलक, २२९, २३०, २३१, २३३, २३५; शीर्षप्रस्तर, २२८, २३१, २३२, २३४, बहुसंख्यक, २३४; सपादकफन-बाक्स, २३०, २३१, २३२; संस्कृति, २०२, २२७

मार्तिले, गैब्रिअल द, ५७, ७४

मानव, आदि, ९०-९१, आद्य, ८९; निकट, ८९; पेकिन, ३०; प्रस्तर उपकरण निर्माता, २०, २५, ८९; प्रागैतिहासिक, २९, ३४; मानवमात्र की चिन्तन-समता, ८७; मानव-सम प्रकार, ६; मानव-संस्कृति की उत्पत्ति और उद्विकास, ३

मार्गन, एल० एह०, ८७, ८८

मास्की (नवपाषाण) उद्योग, २०१-२०३, २१७

मॉएर, जे० रीड, ४१, ५९

मिसाकी, ९२

मुस्तीरी, ३७, ४३, ४६, ५८, ६६, ६७, ६८, ६९, ७१; आदि या 'गर्म', ७०, ७१; लाक्षणिक, ६९, ७०

'मूल भारत', १२५, १२६, १२७

मूठ आरोपण, अनुप्रस्थ, ९८

मैग्दलेनी, ७०-८०, ८१, ८३, ९०, १०१, १०४, १७८

मोरेन, १३, १६, १४३; अंत मोरेन मेखला, १३, १४४; आधारभूमि, १३; पार्श्व, १३; मध्य, १३

मोलस्क, ६

मोविअस्, हेलेम एल०, ३९, ४०, ४१, ६२, ६५, ६६, ६९, ७७, ७८, १३८, १५६, १६३, १६४

मोहन जो-दड़ो और हड़प्पा, १९७

रंगे पेबुल, ९९, १००

रेडियो-सक्रियता, ५

रोस्ट्रो-कैरिनेट, ४१, ५९, ६०

लघुपाषाण, ९६, ९७, ९८, १०१, १०४, १७५, १८०, २१८; अज्यामितिक, १८२, १८४, १९६; आद्यलघु-पाषाण १७९; अर्धचन्द्राकार, १००, १०६, १७९, १८१, १८२, १८३, १८५, १८७, १८८, १८९, १९६, २००, २०२, २०४, २०५, २०६; अनु-प्रस्थ तीर-अग्र, १००, १०१, १०७; ज्यामितिक, १०१, १७९, १८३, १८४; लौहयुग, १८१; विषमभुज त्रिकोण, १०६; समलम्ब चतुर्भुजा-कार, १००, १०७, १८१, २०१, २०२, २०४, २०५, २०६; त्रिकोण, १००, १८१

लघुब्यूरीन, ९४, ९७, १००, १०१, १८१

लघुहिमप्रत्यावर्तन, ९, १०, ९२

लघुहिमावर्तन, ९, १०

लंघनाज, १८४, १८५-८८, १९९

लाल, बी० बी०, १९४, २२७

लार्ने, १०३; कुल्हाड़ी, १०३

लीकी, एल० एस० बी०, १२, १९, २८, ३२, ३७, ३९, ४१, ६०, ६१, ६२, ६३, ६५, ६६, ७०, ७३, ७५, ८२

लुबाक, सर जॉन (लार्ड एवेबरी), ५७, ९४, १०९

लेवलॉयेज फ्लेक, ३०, ४२, १७४, १७६; आद्यलेवलॉयेज, १५५, १७६; लेव-लॉयेज़ी, ६१, ६६, ६७-७२, १७८

लैटेराइट, १४९-५३, १५८, १६५, १६९, १७०, १७१; पुनरुद्ययित, १५२, १५९, १७५

लोकवार्ता, १२१

वन्यता, ८८, ९६, ११४; आदियुगीन,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

९१, ९२, ९३
वाडिया, डी० एन०, १२९
वानर, ६; पुरुषाभ, ६, २५, ८८, १३०, १३१, १३४
विलाफ्रेंञ्चिअन, १९, २०; पशुवर्ग, ६०, १३४, १३५
विशेष कार्योपयोगी उपकरण, ७०, ७१
वोर्मन, यूगिन् सी०, ११०, १९९, २१३, २१६, २१९, २२०; का वर्गीकरण, २१३-१६
व्यवधान, ५
ह्वीलर, सर मार्टिर, १८८, १८९, १९८, २२५, २२७, २२८
वृष्ट्यावर्तन, ११, १२, १५१, १६९, १७०, १९५
वृष्टिप्रत्यावर्तन, ११, १२, १५१, १६९, १७०

शारीर, ३; कार्यात्मक प्रत्यक्ष, ८८, ९२
शिवालिक, १३५, १३८, १४३, १६१, १७५; अवधि, १२९; नदी, १२८, १२९, १३०; पशुवर्ग, १३०, १४५, १४८; पुठवल, १३०, १३५, १३६, १३८, १५२, १५४, १६१, १६२, १६३, १६७; वानर, १४४, १४५, १४८; स्तरशृंखला, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२-३३, १३४, १३५, १४१, १४५
शैटेल्पेरान्, ४५; शैटेल्पेरानी, ७४, ७५, ७६, ७७

सभ्यता (नागरिकता), १२२; कांस्य-युगीन, ११६-१७; नदी उपत्यका, ११६, ११८, १२१
समानांतर परंपरा संबोध, ६१
सरीसृप, ६
संकालिया, एच० डी०, १५४, १६८, १६९, १७०, १७२, १७३, १८४, १८५, २०३, २०६
संगनकल्लू, १८०, १८९, १९९-२००, २०७, २१७
संग्रथित उपकरण, ४५, ९७, १००
संघात, २६; का अर्धशंकु, २८, ३०, ४२, १५४; का गड्ढा, २८; का शंकु, २७, २८, ३०; फ़्लेकीकरण, ७८
संपर्क-विन्दु, २६, २७, ३०, ३३
साल्यूट्र (साल्यूत्री), ३२, ४६, ४७, ५८, ७७-७८, १०१; आद्यसाल्यूत्री, ७८; प्राक्, ७७; लाक्षणिक, ७८
सिंगरौली क्षेत्र (उद्योग), १७५-७६; मध्यपाषाण-लघुपाषाण, १८२-८४
सिंधु-गंगा का मैदान, १२५, १२६, १२८, १२९, १४८
सीमा-पार (पेरीग्लेशियल), १४, १५, १६
सुब्बाराव, बी०, २०६
सुंदरराजन, के०बी०, १८२, २२७, २३२
सेन, धारणी, १५२, १६२, १६३, १६४, १६५, १७५
सेल्ट, ९४, १०२, ११०, १९८, २०८, २१२, २१३, २१४-१६, २१७, २२०
सोहन, १३६, १९७; अंतिम, १३७, १३८; उद्विकास, १३७, १३८, १५८, १६४, १७८; नदी, १३६, १३७, १५४; प्राक्, १३६, १३७, १५५-५६, १५७, १६१, १६३, १७५
सोहन परंपरा, १५५-५८, १६१, १६२, १६४, १६५, १६८, १७६; अंत-सोहन, १५६-५७, १५८, १६८; आदि-सोहन, A→B→C, १५५-५६, १६३, १६८; चौंतरा, १५७
स्क्रेपर, ४१, ९९, १०२, १०३, १७१, १७४, १७८, १९६, २०२; अंत, ४४, ७५, ७८, १८१; उभय-अंत, ७९; कोर, ३८, १८१; गोलाकार, ४४, १००, १०३; डिस्क, १८१; द्वयंत, ४४; दंतरित, ४३, १६१;

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नतोदर, ४३, ६५, १०३, १९३; नासिका, ४४; पार्श्व, ४२, ७०, १७३, १८१; मध्योभार, ४३, ७६, १०६; मुस्तीरी, ४३

ह्यॉग, १९
हिमनदी, १०, १२, १३, १४
हिम प्रत्यावर्तन, ८, ९, १०, ११, १२, १५, १७, २१, ६०, ६३, ६५, ६७, ६९, ७०, ७३, ९३, १०९, १३५, १३७, १३९, १४०, १४१, १४४, १५४, १६१, १६२, १६३, १७०
हिम-युग, ८, ७८, ८०; कश्मीर में, १४२-४४, १४६-४७, १६१; महान्, ८
हिमायन (हिमायित), १०, १९
हिमालय, तल-प्रादेशिक, १३०; मुख्य, १२७, १२८, १२९, १३०; लघु, १२८, १२९, १३०, १३८; वहिर, १३०, १४४, १४५
हिमावर्तन, ८, १०, ११, १२, १५, २१, ६२, ६३, ६७, ७०, ७३, ८९, १०९, १३७, १४०, १४३, १५४, १७०; आल्पीय, ९
हैण्डैक्स, ३६-३८, ७५, ८४, ९०, १५८, १७६; (ओवेट) अंडाकार, ३७, ४१, ६३, १६९, १७४; 'एस्' या 'ज़ेड्'-ऐंठन वाले, ३७, ६४; क्लीवर, ३७, ३८, १६०, १६२, १६८, १६९, १७१, १७२, १७३, १७४, १७६; द्वितल-कोर, ४०; दंतुर, ७१; परंपरा का चर्मोत्कर्ष, ६३; 'पश्चिमी' (हैण्डैक्स) परंपरा, ३९, ४१; बादामाकार, ३६, ३७, ३८, १७३; महान् हैण्डैक्स संश्लेषण, ६१; मिसाक़ी, ६४, ६७; संस्कृति, ६१; हृदयाकार, ३७, ६४, ६९, १८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी में प्रागितिहास जैसे विषय पर मौलिक ग्रन्थ-लेखन का यह प्रयास प्रथम है। यह विषय नृतत्त्व का ही एक अंग है। नृतत्त्व का विषय-क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। इसमें मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर उसके अब तक के शारीरिक और मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। इसमें मनुष्य के सामूहिक कार्य-कलाप का अध्ययन भी सम्मिलित है, अर्थात् इसके अन्तर्गत मानव-समाज के उद्भव और विकास का भी अध्ययन किया जाता है। प्रागितिहास में मनुष्य के इतिहास-पूर्व काल के कार्य-कलाप का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में पहले प्रागितिहास की सामान्य विषय-वस्तु को यथेष्ट विस्तार के साथ बताने का प्रयास किया गया है। इसके दूसरे और तीसरे खण्ड में क्रमशः यूरोपीय और भारतीय प्रागितिहास की विवेचना बड़ी ही सुगम रीति से की गई है। सामान्य पाठकों के साथ ही भारतीय विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के उद्देश्य से लिखे जाने के कारण इसमें भारतीय प्रागितिहास को प्रमुखता देने का प्रयत्न किया गया है।

भारतीय प्रागितिहास का अध्ययन अभी अपूर्ण अवस्था में ही है। भारतीय सर्वकार और विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग के अन्तर्गत इस दिशा में अच्छा काम हो रहा है और नये-नये उत्खननों द्वारा नया उद्घाटन भी हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में लेखक ने समस्त उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग किया है, जिससे कि यह ग्रन्थ अधिकाधिक उपयोगी हो सके।

●

ग्रन्थकार प्रोफेसर धीरेन्द्र नाथ मजुमदार (स्वर्गीय) विश्वविख्यात भारतीय नृतत्त्ववेत्ता थे। अपनी विचक्षण प्रतिभा के कारण आपने न केवल सुनाम और सम्मान अर्जित किया प्रत्युत 'दि ईस्टर्न एन्थ्रोपॉलॉजिस्ट' जैसी पत्रिका का सम्पादन और अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों का प्रणयन कर आप हमें अपना स्थायी स्मृति-चिह्न दे गये हैं। आप लखनऊ विश्वविद्यालय में नृविज्ञान के अध्यापक थे। अपनी अपूर्व गवेषणोन्मुख प्रतिभा के कारण आपने अनेक पदक और प्रतिष्ठा अर्जित की थी। आप केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पी-एच० डी० थे। देश-विदेश के अनेक सोसायटियों और एसोसिएशनों के आप सदस्य और फेलो थे। इस प्रकार लखनऊ विश्वविद्यालय की आर्ट्‌स फैकल्टी के डीन और नृविज्ञान विभाग के अध्यक्ष के पदों का कार्य-भार सँभालते हुए गत ३१ मई, १९६० को अकस्मात् आपका देहान्त हो गया।

और सहलेखक श्री गोपाल शरण लखनऊ विश्वविद्यालय एवं स्वर्गीय प्रोफेसर मजुमदार के सुयोग्य छात्र ही नहीं हैं अपितु उक्त विश्वविद्यालय के ही नृतत्त्व विभाग के प्राध्यापक के पद पर आसीन हैं। इस समय अपने पद-भार से अध्ययनावकाश लेकर अमरीका गये हुए हैं जहाँ हारवर्ड विश्वविद्यालय में आप गवेषणात्मक कार्य में लगे हुए हैं और उच्चतर अध्ययन की प्रस्तुति कर रहे हैं।

12.00